समालोचक

मासिक पत्र

नीरक्षीरविवेके हंसाऽऽलस्यं त्वमेव तनुषे चेत् ।
विश्वस्मिन्नधुनाऽन्यः कुलव्रतं पालयिष्यति कः ॥
(भामिनीविलास)

भाग २   अगस्त १९०३   अङ्क १

लेख — पृष्ठ

प्रोप्राइटर और प्रकाशक
श्रीयुत मि० जैनवैद्य जौहरी बाज़ार जयपुर
Vedic Press Ajmer

नियमावली ।

१—" समालोचक " हर अङ्गरेज़ी महीने के अन्तिम सप्ताह में निकला करता है ॥

२—दाम इसका सालाना १॥) है, साल भर से कम का कोई ग्राहक न हो सकेगा न =) का टिकट भेजे विना नमूना पा सकेगा ॥

३—" समालोचक " में जो विज्ञापन छपेंगे उनमें कुछ भी झूठा व अतिरञ्जित होगा तो उसकी समालोचना करके सर्व साधारण को धोखे से बचाने की चेष्टा की जायगी; कोई विज्ञापन विना पूरी जाँच किये नहीं छापा जायगा ॥

४—आई हुई वस्तुओं की वारी२ से समालोचना होगी, किसी की व्यक्तिगत विरोध से भरी वा असभ्य शब्द पूरित समालोचना नहीं छापी जायगी, जो समालोचना न्यायपूर्ण और पक्षपातशून्य होगी वही छापी जायगी ॥

५—जो पुस्तक व पोथी जघन्य अथवा महानिन्दित और सर्व साधारण के लिये अहितकर होगी उसका प्रचार और प्रकाश बन्द करने के लिये उचित उद्योग किया जायगा । जो उत्तम, उपकारी और सर्व साधारण में प्रचारयोग्य होगी उस के प्रचार का उचित प्रयत्न किया जायगा । इन पुस्तकों के सुलेखकों को प्रशंसापत्र व पुरस्कार प्रदानादि से भी उत्साहित किया जायगा ॥

समालोचक में विज्ञापन की दर

पहली वार प्रतिपङ्क्ति	=)
छ' वार के लिए ,,	-)
छपे विज्ञापन की बटाई	४)
वर्ष भर के लिए एक पेज	१२)

६—समालोचक के लिये लेख, समाचारपत्र, पुस्तक, मूल्यादि, ग्राहक होने की चिट्ठी, पता बदलने के पत्र, विज्ञापन के मामले की चिट्ठी, पत्री, सब समालोचक के मैनेजर मिस्टर जैनवैद्य (जोहरी बाज़ार जयपुर) के पत्ते पर भेजनी चाहिये ॥ **मैनेजर**
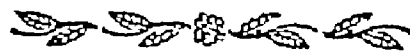
* समालोचक । *

भाग २] जयपुर अगस्त १९०३ [संख्या १

टिप्पणियाँ ।

आज 'समालोचक' अपने जीवन के प्रथम वर्ष को पूरा करके द्वितीय वर्ष मे पग धरता है। जगदीश्वर के धन्यवाद के उत्तर उन सहायक और हितैषियों का भी धन्यवाद है जिनने अपना कर्त्तव्य पालन किया। भगवान् हमें भविष्यत् में अपने कर्त्तव्य के योग्य काम करने की शक्ति दे।

गतवर्ष हिन्दी भाषा के लिए अच्छा नहीं बीता। दो प्रेसों के स्वामी, दो पत्रो के सम्पादक और दो पत्र अनन्त काल में लीन हुए। समालोचक के ग्राहकों की संख्या भी अच्छी कहानी नही कहती। कई पत्र तथा कास सिसक रहे है तथापि 'हितवार्त्ता' का जन्म शुभ लक्षण है। हिन्दी प्रेमी ध्यान रक्खें कि उन्हे कितनी कडी मंजिल तै करना है।

बङ्गला में उपेन्द्र किशोरराय चौधरी बी. ए ने प्राचीन काल के अद्भुत और अब अप्राप्य जन्तुओं का बहुत अच्छा सचित्र वर्णन लिखा है उसका अनुवाद हिन्दी में भी होना चाहिए। क्या कोई हिन्दी प्रेमी यत्न करेगा ?

प्रयाग का बङ्गाली सहयोगी "प्रवासी" सरस्वती से एक वर्ष पीछे निकला था, किन्तु उसकी आशातीत उन्नति और सरस्वती का रूप कहलाता है कि—

" सहैव दशभिः पुत्रैर्भारं वहति गर्दभी ।
एकेनापि सुपुत्रेण सिंही स्वपिति निर्भया ॥ "

चित्रों से प्रकाशन में यह पत्र अद्वितीय है । हिन्दी प्रेमियो ! जरा इसके लेखकों की सूची में एम. ए., बी. ए; प्रभृति के नाम देख कर डरिये और मुंह तो छिपाइए । इसने रविवर्मा, धुरन्धर, छात्र, अवनीन्द्रनाथ प्रभृति के चित्र छापकर खूब नाम पाया है । देशों के ऐतिहासिक विवरण भी इसमें बहुत अच्छे निकलते हैं ।

चैत्र के 'प्रवासी' में डाक्टर सतीशचन्द्र ने प्रवासी बङ्गालियों के कर्त्तव्य पर एक लेख लिखा है, उस में कहा है कि युक्तप्रदेश के वासियों की अपने ज्ञानदाता, पूज्य बङ्गालियों पर से श्रद्धा हटती जाती है किन्तु जहां तक हम जानते हैं यह बङ्गालियों का ही दोष है । वे गर्व में आकर अपने को यहां वालों से अलग मसाले का बना मान बैठते हैं और कभी कभी पक्षपात से योग्य देशियों को भी पददलित करना चाहते हैं । बङ्गालियों को जानना चाहिए कि अधिक शिक्षित होने के कारण जातीयता उत्पन्न करने का बोझा उन्हीं पर है और सङ्कीर्णता से अन्य प्रान्त वालों का दिल खट्टा करना बुरा ही है ।

आषाढ़ के "प्रवासी" में रविवर्माकृत 'अजविलाप' का चित्र तीन रङ्गों मे बहुत सुन्दर है । अजविलाप का रघुवंश के अष्टमसर्ग के छन्द में ही हिन्दी अनुवाद पण्डित सरयूप्रसाद ने भी किया था ।

'सरस्वती' के साथ जन्म लेने वाले "सुदर्शन" ने जैसे कैसे अपना वर्ष ३ का अङ्क २ (वैशाख १९६०) अब दिखाया

है। ऐसी उच्च कोटि का पत्र क्या हिन्दी में बिना सांस घुटे निकल ही नहीं सकता? क्या इसके सुयोग्य सम्पादक अपनी बीमारी और बहुकारिता के आगे इसे सम्हाल ही नहीं सकते?

इसही वैशाख की संख्या में "उपन्यास और समालोचक" नामक लेख यद्यपि लेखक की 'नमकहलाली' दिखाता है तथापि सन्देह होता है कि किसी ने सरलहृदय पं० माधवप्रसाद को अपना 'शिखण्डी' बनाया है। कोई भाषा उपन्यासो के भरोसे नहीं जीसकी। चिन्तितचित्त को शान्ति देने के लिए इनका उतना ही उपयोग है जितना भोजन में चटनी का; किन्तु क्या हम चटनी से अपना पेट भर सकते है? अधिक मिर्चो वाली चटनी चटनी का काम देभीदेगी, किन्तु भोजन का काम 'चन्द्रकान्ता' मे एक असम्भव बात को सम्भव मानकर क्या क्या बिलल्ली बातें बन सकती हैं उनका अच्छा नमूना है, किन्तु उसकी कैसी कैसी भद्दी नक़लें हो रही है? चन्द्रकान्ता सन्तति' में तो बाबू देवकीनन्दन ने स्वयं तिलिस्म लिखने की अरुचि प्रकट की है। ऐसे उपन्यासोंके नायक और नायिका खाली बदमाशो के हाथ की गुड़िया हैं; न उनमें जान है, न शक्ति। सभ्यसमाजनिराकृत रेनेल्ड के नाविलों की दुहाई देतीबेर लेखक ने यह नहीं सोचा कि असम्भव घटना प्रभावशालिनी लेखिनी ने चरित्राङ्कन करने की बहादुरी ली है, उसकी तुलना में हमारे लेखकम्मन्य कीड़े नहीं तो क्या है? हा! जिन रेनेल्ड के नाविलों के लिए हम उर्दू को दुदकारते थे, उन्ही के भरोसे हिन्दी उपन्यासों की हिमायत की जाती है!! विलायत मे सैंकड़ों सम्भव और

समाजोपकारक और सत्य उपन्यास हैं उनकी ओर तो देखा भी नहीं जाता और पुराने सड़े रोमान्सेज़ (Romances) की नकल की जाती है। यह योरोप की बीमारी के दिनों के ग्रन्थ हैं और हमें भी बीमार करने से कसर न करेंगे। तिलिस्म उतना ही असम्भव है जितना "हुमा" वा "सात मुख का घोड़ा" उसपर एक आध अच्छा उपन्यास भी बन सकता है, किन्तु काशी का सा तूफान! वाह!!

उपन्यास मात्र पर कोई छुरी नहीं फेरता; यह भी भाषा की सत्ता में अपना पार्ट सेट रहे हैं। वेङ्कटेश्वर समाचार ने इस विषय में लिखा ही है और आवश्यकता होगी तो हम भी क़लम उठावेंगे।

आजकल हिन्दी में क्षत्रियों की निन्दा करने वाले उपन्यासों पर भी राजपूत महासभा और कुछ पत्र सन्त्रस्त हैं। किन्तु उन के कोप का निशाना भारतजीवन के माननीय सम्पादक ही हैं। ठीक है "दैवो दुर्बलघातकः"। काशी के एक सड़े उपन्यास "जादूगर" में एक राजपूत बाला के माता पिता और चाचा उसके भड़ुए बनाए गए हैं और मुसलमान बादशाह से उसे ब्याहने का षड्यन्त्र कर रहे हैं। यह रेनल्ड के वैसे ही घिनौने उपन्यासों में से एक का अनुवाद है जिन को 'सुदर्शन' ने उदाहरण रूप गण्य किया है। किन्तु यों नाम बदलकर विदेशी बहने की मन्दिर की झारी बनाने की क्या ज़रूरत थी? क्या उधर किसी का ध्यान नहीं गया *? बङ्ग भाषा में ऐसे करोड़ों उपन्यास

---

*इस उपन्यास की समालोचना समालोचक में निकलेगी।

बिकते हैं किन्तु क्षत्रियों का कुठार अपने साहित्य पर ही चलता है। नहीं नहीं, बङ्गला उपन्यासोंपर सहयोगी भारत-मित्र के लेखों का सिलसिला जल्दही शुरू होगा। सीधी बात तो यह है कि यदि राजपूत सच्चे ही कुछ काम करना चाहते हैं तो उन्हें उचित है कि पुराने लेख पढ़े और अपने (Archives) गुप्त–कोशों से इस कलङ्क कथा को झूंठ सिद्ध करदें, नहीं तो उपन्यासों के गङ्गाप्रवाह और दाह होने परभी फारसी और अंग्रेजी इतिहासों में यह बात काली स्याही से लिखी ही रहेगी।

मेघों के प्यारे पं० बदरीनारायणजी की मेघमय आनन्द कादम्बिनी निकलती तो है किन्तु संवत ५७ की कादम्बिनी की तरह !! दो तीन अङ्क ही साथ निकलते हैं। ऐसे आधे आकार से यदि यह पत्र न निकले तो 'सोने में सुगन्ध' है। भाषा भाव आदि की क्या स्तुति की जाय? इस नाकदरी के उपन्यासमय जमाने में भी "चौधरी जी" और "हिन्दी प्रदीप" के प०बालकृष्णजी भट्ट हिन्दी को नहीं भूले है यह उनका स्तुत्य महत्व है। "प्रेमघन जी" अपने सब काव्यों की एक सूची भी प्रकाशित करदें तो हिन्दी पाठकों को सुभीता हो।

आजकल एक और भी ऐसा विषय है जिस पर हिन्दी प्रेमी टकटकी लगाए हैं। वह युक्तप्रदेश की सरकार का हिन्दी–उर्दू की खिचड़ी बनाने का उद्योग है। शासन-कर्त्ताओं के हाथ में भाषा बनाना इस ही देश मे है। हम इस बात के पक्षपाती नहीं है कि व्यर्थ संस्कृत शब्दों की भरती की जाय, किन्तु संस्कृत, आवश्यकता पर हिन्दी की (top–root) प्रधानजड़ का काम दे, इस में क्या आपत्ति है? सरकार के इन यत्नों के सामने सच्चे हिन्दी के प्रेमी याद

रक्खें कि 'नार्मन' समय में अङ्गरेजी भाषा में "फरासीसी" शब्द बलात्कार से घुसेड़े गए थे किन्तु समय पाकर वे सब निकलगए और अब 'सैक्सन' ही की प्रधानता है।

इस वर्ष काशी नागरी—प्रचारिणी सभा का काम कुछ ढीला ही दिखाई देता है। काशी के कई सज्जन सभा के कार्य को संशयित कहते हैं, भगवान् करें यह झूंठ हो, किन्तु यदि सत्य हो तो हम सब को बड़ी लज्जा की बात है। आशा है कि इस वर्ष की रिपोर्ट इन चिन्ताओं को मिटा देगी, किन्तु सभा के नाक के नीचे रामनगर राज्य उर्दू का अड्डा बना हुआ है, यह कैसी लज्जा की बात है?

बम्बई के मासिक पत्र "भारतधर्म" ने मराठी, गुजराती और हिन्दी तीन भाषाओं से अपना कलेवर भूषित किया है। राष्ट्रभाषा के प्रचार का यह बहुत अच्छा उपाय है। क्या कई उत्साही बङ्गाली, गुजराती तथा मराठी पत्र अपने को हिन्दी से द्वैभाषिक करके सार्वजनिक भाषा प्रचार नहीं आरम्भ करेंगे?

बड़े हर्ष की बात है कि कुछ दिनों से "राजस्थान समाचार" ने उन्नति आरम्भ की है। बरसों की घिस घिस के बाद आज उस में 'मूलधन' और 'पुराण' दो लेख अच्छे लिखे गए हैं। समर्थदानजी को उचित है कि वीरता से अपने पत्र की उन्नति करके उसे उच्च कोटि के मराठी पत्रों की तुलना पर ले जाय। 'भारतमित्र' का पंजाबी तथा 'वेंकटेश्वर' का मराठी, गुजराती सहयोगी उचित

आदर करते हैं। बङ्गालियों तथा गुजरातियों में हिन्दी की सत्ता जानने के लिए उचित है कि—

"हिन्दी वार्त्ता" और "राजस्थानसमाचार" सन्नद्ध होजांय, जिस से हिन्दी सब भाषाओं तथा उन के भाषकों से स्पर्श करती रहै।

* *
*

अब तक हम यही जानते थे कि पवित्र दम्पति प्रेम के उन चित्रों को, जिन का पर्दा लज्जा के मारे, पवित्रता के ख्याल से कोई मनुष्य वा लेखिनी नहीं उघाड़ सकती, सरे बाजार रखने मे प० किशोरीलाल गोस्वामी revel करते हैं, मजे लूटते हैं, किन्तु अब मालूम हुआ कि बलात्कार, पाशविक दुराचार, हत्याकाण्ड, विदूषण प्रभृति के उद्वेगजनक चित्रो में भी वह अधिक रुचि से wallow करते हैं!! लीलावती, लाडली और तारा की लज्जा यों उघाड़ी जाकर सही भी जा सकती थी, क्योंकि उस का उघाड़ना पवित्रता से मुवासिल था, किन्तु देखते हैं, गोस्वामी जी को गन्दे चित्र उघाड़ने में भी मजा आता है। कलावती की गन्दी अठखेलियां खाली लीलावती के मुकाबिले के लिये ही नहीं बताई गई, किन्तु उन में लेखक की रुचि झलकती है। जहानआरा और रोशनआरा का कल्पित व्यभिचार इस लिये नहीं लिखा गया कि उस से तारा के पवित्र चरित्र पर छाया पड़े, किन्तु इसलिये कि लेखक को इन वर्णनो में मज़ा आता है!! यों ही चपला को नष्ट करने की कोई dramatic necessity न थी, कि उस के बिना नाटक

ही अधूरा रह जाता । चपला की चाल बराबर बनाकर गोस्वामी जी रेनाल्ड की उस घृणित चतुराई की नकल (भद्दी नकल) कर रहे है जिस ने Mary Price को कई दफ़ा पूरे सर्वनाश से बचा दिया । सम्भव है कि गोस्वामी जी इसी राह पर चलते Rosa Lambert की नक़ल करने की बहादुरी लूटकर हिन्दी साहित्य को गन्दा करें और लीलावती की बहन का हाल देने की उनने प्रतिज्ञा भी की है । एक धर्माचार्य की लेखिनी से–उस लेखिनी से जो जुबिली का अभिनन्दन देती बेर किसी वैष्णव समाज के प्रेसीडेन्ट की कलम बन जाती है–एसी घटनाएं निकलना हिन्दुओं के लिये, हिन्दी के लिये और साहित्यमात्र के लिये लज्जा की बात है । जिन दिनों आज कल की ऐयारी की तरह Knight-hood का खब्त यूरोप को बरबाद कर रहा था, पादरी लोग उस स्रोत को रोकने के लिये उस के विरुद्ध धर्मात्माओ के चरित्राङ्कन करते थे ! क्या हमारे गोस्वामी जी पवित्र चरित्र लिख ही नहीं सकते ? क्या हिन्दी ऐसे कायरों की भाषा हो गई है जो मरे बादशाहों की बालाओं पर सच्चे झूठे कलङ्क मढने और अबलाओं के कुछ कम धर्मनाश की कहानियां ही सुना करे ? हमारा स्वर नक्कारखाने मे तूती की आवाज़ की तरह भले ही सुना न जाय, किन्तु हम अपना कर्तव्य समझते है कि हिन्दी पाठकोंको इन प्रपञ्चो के विरुद्ध अपील करें । इन के पक्षपाती कह सकते है कि अन्त मे सच्चे का बोलबाला दिखाकर हम उपदेश करते है, किन्तु इस में बड़ी भूल है , पुस्तके आज

कल जो काम कर रहीं हैं वह बड़ा भारी है। जगद्गुरु गद्दी के स्वामी का जितना बल नहीं है उस से अधिक बल से पुस्तकें उपदेश कर सकती हैं। उदाहरण का फल भी बड़ा सक्रामक है। सौ पीछे ९७ पाठकों के जी पर तो घटना पढ़ते ही वज्र लेप हो जाती है और वे परिणाम को नहीं देखते। मनुष्य की पापप्रवण प्रकृति परिणाम से शिक्षा न लेकर यह कहती है—"अमुक पापी का पराजय अमुक चूक से हुआ हमें उससे बचना चाहिये" अन्त की दो पङ्क्तियों में दौड़े दौड़े पापी को मारने और बीच के अध्यायों में पाप कथा लिखने का फल कब अच्छा होगा? बीमारी का हाल जानना ही रोग है, बीमार ही रोग के वर्णन मे रीझते हैं। पाप के मार्गों का जानना ही बुरा है, उन रहस्यों से परिचय होना ही पाप है। "मुख्यस्तूपाय एतेषां निदानं परिवर्जनम्" इलाज से रोकना अच्छा है। पोप कवि ने खूब कहा है:—

दुष्कर्म हैं एक महापिशाच,
कुरूप है ताकहं सर्व गात।
निहारते मात्र घृणा अवश्य,
अत्यन्त तें ही करते मनुष्य।
देखें जु ताको हम वारवारा,
तद्रूपसे है परिचै हमारा।
सहन करें तत्स्थिति को दया से।
सप्रेम आलिङ्गन दें हिया से।

Pope's Essay on Mars

गोस्वामीजी के ग्रन्थ सभ्यसमाज में कदापि अमर नहीं हो सकते, यदि वे इस रीति का यों ही अनुसरण करतेरहें।

" तारा " उपन्यास में स्थूल भूलें ही बहुत हैं। नायिका तारा विचारी अबोध बालिका है जो बात बात में रम्भा के हाथ की गुडियां बनी है। रंभा के प्रौढ़ छलों में जिस भोले पन से वह मिल गई है वही असम्भव और सन्देहजनक है। इस "आओ बैल मुझे मारो" ढग से स्वच्छों में कूदना नई बात है। और फिर इस भोली कन्या से रसीले कवि ने वह पक्की चिट्ठी लिखाई है कि वाह!

" हिन्दी कालिदास की समालोचना " पृष्ठ ८६ में पं० महावीर प्रसाद द्विवेदी लिख चुके हैं:—

———

कररुहपदैर्मुच्यमानः अर्थात् नखों के चिह्न जिसपर मिट गए है इसका अनुवाद किया गया है:—

"जह सुकुमार हेत होत नहं दाग"

अनुवाद की विलक्षणता का विचार छोड़ " नह" शब्द की ग्राम्यता को तो देखिए! हमारी ओर के देहाती बोलते हैं:—

"इन बातन मा नहं तै लैकै झोटई तक दाँह बरि उठति है"

जो नह यहां आया है वही मेघदूत के अनुवाद में भी आया है।

सरस्वती वर्ष ४, पृष्ठ २९१ में " गर्भ के आकार और परिमाण" में सम्पादक लिखते है:—

"नहं भी रूली भांति बन जाते हैं इत्यादि"

इस बात में हमे विशेष ध्यान की कोई आवश्यकता न थी, किन्तु हमारेसे दर्शनशास्त्र के रसिक को यह देखकर बड़ा हर्ष हुआ कि यूरोप ने १६ वीं शताब्दी में " मैलीब्राङ्क "

नामक दार्शनिक ने जो क्षणिकसृष्टि का सिद्धान्त किया था उसका आज २० वीं शताब्दी में सरस्वती के सम्पादक के रूप में हमें समर्थन मिल गया। मैलीब्राङ्क का मत है प्रति क्षण में भिन्न भिन्न सृष्टि होती है, अर्थात् जो सत्ता एक क्षण पहले थी, वह अब नई तरह सिरजी गई है इस लिए वह नहीं है। " हिन्दी कालिदास के समालोचक " और "गर्भसञ्चार के लेखक" एक व्यक्ति नहीं है क्योंकि पहला "हमारी तरफ के देहातियों" को हिकारत से देखता है और दूसरा उनके रजिष्टरी किए मुहाविरे को प्रयोग करता है !!

***

सरस्वती में शूरवीर समालोचक का चित्र अब बिलकुल बेमौक़े है क्योंकि पं० महावीर प्रसाद ने समालोचना की कलम ही तोड़दी—

"कलकत्ता रिव्यू" नामी प्रभाव शाली पत्र में मौजा कांगड़ा जिला सारन के वर्नाक्यूलर स्कूल के गुरु का एक पत्र छपा है। उसके विषय से हमें कोई सम्बन्ध नहीं, तो भी हम उसे नकल करते हैं—

"जिस अवरत् को किसी वजह से लड़का नहीं होता है वह किसी वोझा या वरमूह् के कहने से दो रास्ता के बीच में अस्नान् करति है। अवर वहा अपने बराबर सुत् वो तरह् घरके उसी पर नहाति है इसके वारे अकीन् उन्को होता है कि जो इसको पहले लघेगा उसिको इह दोख जिसमे हसको लड़का नहीं होता है वह लागेगा"

आराकी नागरी प्रचारिणीसभा को उचित है कि संस्कृत की छात्रवृत्तियों के लिए दौड़ने के पहले इन अपने देशियों को हिन्दी लिखना सिखावे !!!

समालोचक के बदले में जो सहयोगी दर्शन देते रहे हैं, उन्हें सम्पादक और प्रकाशक हृदय से धन्यवाद देते हैं। सच तो यह है कि इनकी कृपा के विना हम अपना कर्तव्य नहीं कर सकते और सहयोगियों से भी निवेदन है कि समालोचक को अपने बदले में स्वीकार कर उसका गौरव बढ़ाएं।

***

कई मित्रों की राय है कि समालोचक में केवल समालोचना ही न निकला करें किन्तु साहित्य के भिन्न भिन्न लेख भी छपा करें। गए ४। ५ महीनों से समालोचक तो वैसा ही निकलता है और यह संख्या भी वैसी ही प्रकाशित की जाती है। इस विषय में हम सहयोगियों, पाठकों तथा हिन्दी के प्रेमियों की सम्मति चाहते हैं, यदि वह चाहें तो समालोचना ही समालोचना लिखी जाय; यदि वे चाहें तो साधारण उच्च कोटि के मासिकपत्र का क्रम लिया जाय। अवश्यही समालोचना की प्रधानता (अति भी) रहा करेगी।

डाक्तर राजेन्द्रलाल मित्र।

(सुसमालोचक)

किसी प्राचीन संस्कृत कवि ने कहा है कि व्यसन हो तो विद्याभ्यास किं वा परमेश्वर भक्ति का हो, अर्थात् ये दोनों व्यसन बहुत उत्तम हैं बुरे किसी प्रकार नहीं है। देश और काल के अनुसार हमारे इन राष्ट्रीय मनुष्यों को अपने जीवन को सार्थक करने के लिये और निज जन्मभूमि का उद्धार करने के लिये उक्त दोनों व्यसन अटल हैं। इस

प्रकार के अनेक मनुष्य होगये हैं जिन्हो ने उक्त व्यसनों में ही लगकर अपना जीवन बिता दिया है। डाक्तर मित्र भी इसी तरह के मनुष्य थे। इन का जीवन केवल विद्याव्यवसाय मे ही व्यतीत हुआ है। इस व्यवसाय से डाक्तर मित्र की इतनी उन्नति हुई कि इनके समय में उतनी किसी बङ्गाली की नही हुई। भारतवर्ष और विलायत के पठित समाज में ऐसा कोई स्थान नहीं है जहा डाक्तर मित्र का नाम परिचित न हो। यह सब इन के विद्यागौरव से ही हुआ है। भारतवर्षीय ऐतिहासिक व्यक्तियों में इन का प्रथम नाम था। इन के अनन्तर बङ्गदेश में क्या भारतवर्ष भर में कोई भारतवर्षीय पुरातत्ववेत्ता नही हुआ। जो दो चार हैं वे इन के समकालीन ही हैं और अब निज २ गृहों में वास करते हैं। मित्र की जीवनी बहुत बडी है उस का लिखना इस समय नही होसकता, तौभी सक्षेप से कुछ वृत्त लिखते हैं:—

डाक्तर मित्र का जन्म कलकत्ता में सन् १८२४ ईसवी मे हुआ था। बालकाल में बाबू क्षेमघोष की पाठशाला में और गोविन्द् विशाक की पाठशाला में अध्ययन करना प्रारम्भ किया। इन के साथी दुर्गाचरण ला थे। कुछ दिनों बाद डाक्तर मित्र पढ़ने में बहुत तेज निकले और खूब चित्त लगाकर पाठशालीय गुरु की सब विद्या हरली। गुरुजी तथा और लोग डाक्तर मित्र को कहने लगे कि यह बालक अवश्य कोई स्वनामधन्य पुरुष होगा। ईश्वर ने सब वाक्यो को सफल किया, अन्त मे डाक्तर मित्र वैसे ही हुए।

जब अवस्था के सोलह वर्ष हो चुके तब डाक्टर मित्र ने डाक्टरी पढ़ना प्रारम्भ किया । उस मे भी अच्छी योग्यता प्राप्त की और पाठशाला की तरफ से बहुत कुछ पारितोषिक मिला । विलायत जाकर पाश्चात्य शिक्षा यथार्थ होने पर शायद डाक्टर मित्र धन्वन्तरि होजायेंगे इस विचार से बाबू द्वारकानाथ टागोर ने डाक्टर मित्र से विलायत जाने के लिये कहा और वह स्वयं भी चलने को तैयार हुवे । इस दीक्षा से डाक्टर मित्र के मन में विलायत जाना स्थिर होगया परन्तु डाक्टर मित्र के पिता ने जब इन का विचार सुना तो उन्हों ने इधर उधर की कई बाते कही और धर्मच्युत तथा जातिच्युत होजाने की भी भीतियां दीं, तब डाक्टर मित्र का उत्साह हत होगया । यद्यपि उस यात्रा के न होने से डाक्टर मित्र की भविष्यत में तथा सांमत में भी बहुत हानि हुई तौभी वह ईश्वर की कृपा से उत्तम वैद्य होगये और डाक्टरी पढ़ना समाप्त किया । इस के अनन्तर क़ानून पढ़ने लगे, वह भी थोड़े ही दिनों में समाप्त किया । यों डाक्टर मित्र को अब पूर्ण वैद्य तथा वकील मानना चाहिये । इतना पढ़ने पर भी डाक्टर मित्र को सन्तोष नहीं हुआ और मन मे विचारा कि अनेक भाषाओं को सीखना और उन का आनन्द लेना उचित है, तब उन्होने अतिपरिश्रम से संस्कृत, फारसी, इङ्गलिश, जर्मन, फ्रेञ्च, लिटिन भाषाओं में अभ्यास किया । उस के बाद अनेक ग्रन्थो के देखने में प्रवृत्त हुवे और उन से कई एक प्राचीन तत्वों का अनुसन्धान किया और नामी ऐतिहासिक होगये । और एसियाटिक सोसाइटी बंगाल के जर्नलो मे कई लेख देने लगे, यहां

तक कि सालों तक नियम से इन के लेख प्राचीन तत्त्वानुसन्धान के निकला करते थे ।

डाक्टर मित्र २३ वर्ष की अवस्था में एसियाटिक सोसायटी के पुस्तकालय के असिस्टेण्ट लाइब्रेरियन हुये । यह स्थान् बहुत प्रतिष्ठित था पर इन को सहज ही में प्राप्त हुआ । अब इसीसे डाक्टर मित्र की योग्यता का परिचय मिलता है । सन् १८५५ ईसवी में बङ्गाल गवर्नमेण्ट ने राजवाड़ो के तथा ज़मीदारों के छोटे लड़को के लिये एक पाठशाला स्थापित की, उस विद्यालय के डाक्टर मित्र डाइरेक्टर नियत हुये और वहाँ बड़ी योग्यता से कार्य किया, उस पाठशाला से जितने राजपुत्र निकले वे सब योग्य तथा निज कार्यों में प्रवीण हुवे ।

कलकत्ता म्युनिसिपल कार्पोरेशन स्थापित होने के बाद थोड़े दिन डाक्टर मित्र उस के सभासद् नियत रहे । ऐसे ही कितने ही श्रेष्ठपदों को इन्होंने भूषित किया था जिस का लिखना कठिन है ।

डाक्टर मित्र अंग्रेजी बहुत उत्तम लिखते थे यह उन के शत्रु भी स्वीकार करते थे । इन्हो ने एसियाटिक सोसायटी बङ्गाल के द्वारा बहुत ग्रन्थ शुद्धकर के प्रकाशित किये हैं । हर एक ग्रन्थ के आरम्भ मे अतिविस्तृत भूमिका *Introduction* लिखते थे । उस मे ग्रन्थ की बहुत सी उपयोगी बातें तथा ऐतिहासिक खोज अति उत्तमता से रहा करती थी । यदि डाक्टर मित्र ने जितने ग्रन्थ संस्कृत के प्रकाशित किये और अंग्रेजी अनुवाद किये उन का तथा फुटकर लेखों का संकलन कियाजाय तो दो हज़ार निबन्ध संख्या होती है।

इस के सिवाय डाक्तर मित्र के निम्ननिर्मित ग्रन्थ ये हैं–
"Indo-Aryans" "Buddha Gaya" "Antiquities of Orissa" "Notices of Sanskrit Manuscipts" "Nepalese Buddhisth Literature" यह सब महा ग्रन्थ हैं इन को देखने से डाक्तर मित्र के अगाध ज्ञान का परिचय भली भांति मिलता है। ये सब ग्रन्थ बहुत मान्य हैं जितने ऐतिहासिक अंग्रेज हैं वे सब इन ग्रन्थों का अपने निबन्धों में बहुत प्रमाण देते हैं। यहां तक कि ऐसा कोई ऐतिहासिक निबन्ध न होगा जिस में डाक्तर मित्र का नाम धन्य वाद के साथ न हो।

स्वनामधन्य डाक्तर मित्र, लण्डन, अमेरिका, जर्मन आदि देशों की सभाओं के आनरेरी मेम्बर थे। और भी कई सभाओं के मेम्बर थे जिनका सकलन करना कठिन है।

ईसवी सन् १८९५ में कलकत्ता युनिवर्सिटी ने डाक्तर मित्र को "डाक्तर आफ़ लाज" की पदवी दी। और गवर्नमेण्ट से (C I E) और "रायबहादुर" की पदवी मिली। जब "रायबहादुर" की पदवी मिली उस समय बङ्गाल के लफ्टिनेन्ट गवर्नर ने डाक्तर मित्र की बड़ी स्तुति की और धन्यवादों से व्याकुल कर दिया।

डाक्तर राजेन्द्रलाल मित्र समालोचना के सिद्धान्तो के बड़े पक्के थे। उन की दृष्टि में इस देश के वासियो में जो भूलें थीं, उन को प्राचीन मानने में जो आपत्तिया थी, उनका उन्होंने विना पक्षपात के स्वीकार करके खण्डन किया है। और किसी मनुष्य को यदि ऐसा गुरु कार्य सौंपा जाता तो वह स्वदेशियो के पक्षपात प्रभृति से अपने विचारो को शुद्ध न रख सकता।

डाक्टर मित्र ऐसियाटिक सोसाइटी बङ्गाल के सभापति भी रहे थे। यह प्रतिष्ठा किसी भारतवासी के भाग्य से न थी।

सन् १८९१ की जुलाई में मित्र के से सत्समालोचक का स्वर्गवास होगया!!! (गिरजा)

सोऽहम्।

(All Rights Reserved)

"सोऽहम्" वह मैं हूं—यह बात भारतवर्ष के हिन्दू के सिवाय और कोई नहीं कहता। इसी बात के कहने से हिन्दू, हिन्दू है, इसी से हिन्दू का हिन्दूत्व है, हिन्दू का हिन्दू-धर्म है। 'सोऽहम्' हिन्दू का लक्षण है, हिन्दूत्व का लक्षण है, हिन्दूधर्म का लक्षण है।

बात क्या है? सो समझ लेनी चाहिए।

ब्रह्म और ब्रह्माण्ड, सृष्टिकर्त्ता और सृष्टि इन दोनों में क्या भेद है? क्या सम्बन्ध है? इस विषय में प्रधानतः दो ही मत हैं। एक मत तो यह है कि ब्रह्माण्ड और ब्रह्म, सृष्टि-कर्त्ता और सृष्टि एक ही पदार्थ हैं अर्थात् ब्रह्म ही ब्रह्माण्ड का उपादान है, सृष्टिकर्त्ता ही सृष्टि का उपादान है। उपादान किसे कहते हैं? जिसके द्वारा कोई वस्तु निर्मित हो वही उस वस्तु का उपादान है। जैसे मृत्तिका घट का उपादान। अत एव इस मत के अनुसार ब्रह्म जो पदार्थ है, ब्रह्माण्ड भी उसी पदार्थ से बना है। ब्रह्माण्ड ब्रह्म से पृथक् नहीं है। इस मत के बारे में यही प्रधान बात है; इस प्रबन्ध में जो और अवान्तर बातें कहना आवश्यक होंगी आगे कही जावें-गी। दूसरा मत यह है कि ब्रह्म ब्रह्माण्ड से, सृष्टिकर्त्ता सृ-

ष्टि से बिलकुल पृथक् है। सृष्टि के पहले सृष्टि का उपादान कुछ भी न था। सृष्टिकाल में सृष्टिकर्त्ता ने अपनी असीम शक्ति से न मालूम कैसे जगत् बना दिया। सृष्टिकर्त्ता स्वयं जो वस्तु है, सृष्ट जगत् वह वस्तु नहीं है; उस वस्तु से बिलकुल पृथक् और भिन्न प्रकृति की चीज़ है। इन दोनों मतों में प्रथम मत हिन्दुओं का है, दूसरा कृस्तान प्रभृति का। यह नहीं कि प्रथम मत भारत से बाहर और कहीं प्रचारित ही नहीं हुआ। बात यह है कि जैसे यह भारत में प्रबल है वैसे और कहीं नहीं। इसी लिए यह "भारत वर्ष के हिन्दुओं का मत" इस नाम से प्रसिद्ध है।

दोनों मतों में कौन सत्य है? कौन ग्रहणयोग्य है? इस मत की दो प्रकार से मीमांसा हो सकती है और दोनों ही तरह से हिन्दू का मत ही पक्का मालूम होता है।

पहली बात यह है कि जगत् यदि जगदीश्वर से पृथक् है तो फिर जगदीश्वर असीम नहीं हो सकता, उसे ससीम होना पड़ेगा। जहां दो वस्तु हों वहां कोई भी असीम नहीं हो सकती दोनों ही पदार्थ ससीम होगए। कृस्तान प्रभृति अपरधर्मावलम्बी यह कहते है कि जगदीश्वर जगत से पृथक् होकर भी जगत् में विराजमान है अतएव ससीम नहीं है। किन्तु जगत् में सर्वत्र विद्यमान होना और जगत् होना—यह दोनों एक बात नहीं हैं। अत एव जगदीश्वर यदि जगत् मे केवल विद्यमान ही है, जगत् नहीं है तो जगत् में जगदीश्वर को छोड़कर कुछ और भी है और उस के होने ही से जगदीश्वर को ससीम होना पड़ा। जहां दो वा उससे अधिक वस्तु हों, वहां सीमाधान अपरिहार्य है।

दूसरी बात यह है कि सृष्टि का कोई उपादान नहीं था, इस बात की हम भावना नहीं कर सकते। कोई वस्तु एक बेर कुछ भी नहीं रही हो यह कल्पना मनुष्य की शक्ति के बाहर है, मनुष्य मन के लिए असाध्य है। मनुष्य इसे सोच नहीं सकता, इसकी धारणा नहीं कर सकता, तो जो कुछ नहीं था, वह अचानक हो पड़ा, यह बात कैसे मन में आवै?। जो इस मत के पक्षपाती हैं वह कहते हैं कि जगदीश्वर की शक्ति असीम है, उसे कुछ भी असाध्य नहीं है; मनुष्य जिस बात को समझ भी नहीं सकता, उसे वह अनायास कर सकता है। अतएव जिस बात की मनुष्य धारणा नहीं कर सकता वह असम्भव वा असत्य हो यह कोई बात नहीं। यह है तो ठीक किन्तु जगदीश्वर के सब कुछ साध्यायत्त है, यो मानकर सब कुछ उसने किया यह कहना कोई बात नहीं। विचार करते ही जो वह सब कुछ कर सकता है यही उसका प्रकृत असीमत्व और अनन्तत्व है। किन्तु असीम और अनन्त मानते हुए उसने सब कुछ किया यह माननेकी कोई आवश्यकता नहीं। अतएव जिस प्रणाली की सृष्टि को मनुष्य बूझ नहीं सकते उस प्रणाली से जगदीश्वर ने सृष्टि नहीं की—यह कहना जगदीश्वर की असीमशक्ति और उस के अनन्तत्व का अस्वीकार करना नहीं है। यहा विचार्य विषय यह है कि जिस मत के अनुसार सृष्टिक्रिया मनुष्य के लिये दुर्बोध्य है उस मत के अवलम्बन की आवश्यकता है कि नहीं। प्रत्युत्तर में सब ही यो कहते हैं कि सृष्ट जगत् स्रष्टा जगदीश्वर से इतना अधम और निकृष्ट है कि जगत् जगदीश्वर को एक पदार्थ मानने से जगदीश्वर

को नितान्त ही अपमानना करनी होती है उसे नि-
तान्त ही अधम मानना पड़ता है। किन्तु जगदीश्वर
अधम पदार्थ का सृष्टिकर्त्ता है—यो कहने से जगदीश्वर
की क्या उतनी ही अपमानना नहीं की गई, उसे उतना ही
अधम नहीं दिखाया गया? क्या केवल अधम पदार्थ होने
ही से अधम होना होता है, अधम कार्य करने अथवा
अधम पदार्थ प्रस्तुत करने से क्या अधम नहीं होना हो-
ता? लोक में राजा दुश्चरित्र होने ही से अधम होता है?
सच्चरित्र होकर भी यदि दुर्नीतिपूर्ण पुस्तक लिखें तो क्या
अधम नहीं हुए? तो जगत् को अपकृष्ट पदार्थ कहकर इ-
से जगदीश्वर का रूप, विकाश वा विवर्त्त न कहने से, इसे
सृष्ट पदार्थ ही कहने से क्या ईश्वर के मान वा गौरव की
रक्षा होगई? जो यह कहते हैं उन की बात हम नहीं स-
मझ सकते; उनका नीतिशास्त्र कैसा है सो वही जानें, उन-
का मानमर्यादा विषयक संस्कार कैसा है सो वही कह स-
कते हैं। इस विषय में और जो वक्तव्य है सो आगे चलकर
कहेंगे।

परन्तु दोनों मतों में कौन सा अच्छा है इस की मी-
मांसा करने का एक और अच्छा उपाय है। जरा ध्यान ल-
गाकर देखने से जाना जासकता है कि दोनों मतो से विशे-
ष पार्थक्य नहीं है। जगत् जगदीश्वर का रूप विकाश वा वि-
वर्त्त है, यो कहने का जो अर्थ है जगत् जगदीश्वर की सृष्टि
है यों कहने का भी अर्थ प्रायः वही है। सृष्टि और सृष्टि-
कर्त्ता के बीच में क्या सम्बन्ध है यह एक पार्थिव दृष्टान्त
द्वारा बहुत कुछ समझा जा सकता है। शेक्सपियर अथवा

शेक्सपियरत्व एक पदार्थ है। शेक्सपियर रचित हैमलेट का चरित्राङ्कन और ही पदार्थ है। इससे कोई सन्देह नही कि हैमलेट शेक्सपियर से पृथक् पदार्थ है। हैमलेट का चरित्र जिन सब उपकरणों से बना है, मालूम होता है कि स्वयं शेक्सपीयर के चरित्र मे वह सब उपकरण नहीं थे। इस अर्थ में शेक्सपीयर और हैमलेट दो भिन्न पदार्थ है। किन्तु और एक अर्थ में दोनों में बडी विभिन्नता नहीं है-अर्थात शेक्सपीयर जो है, हैमलेट भी वही है। हैमलेट के शेक्सपीयर से भिन्न होने पर भी हैमलेट मे कुछ ऐसी चीज है जो शेक्सपीयर मे ही पाई जाती है और किसी व्यक्तिमें नहीं पाई जाती। उस "कुछ चीज" का नाम शेक्सपीयरत्व, शेक्सपीयर का सार शेक्सपीयर की अस्थिमज्जा वा शेक्सपीयर का शेक्सपीयर—जो शेक्सपीयर का कोई एक भाव वा कार्यविशेष नहीं है जो शेक्सपीयर के सकलभाव और सकलकार्यों मे है, जिसके गुण से शेक्सपीयर के भाव शेक्सपीयर के भाव है, और किसी के या और किसी तरह के भाव नही है, शेक्सपीयर के कार्य शेक्सपीयर के ही कार्य है और किसी के या और किसी तरह के कार्य नहीं हैं, वह "कुछ चीज" अर्थात् वह शेक्सपीयरत्व शेक्सपीयर का सार, शेक्सपीयर की अस्थिमज्जा वा शेक्सपीयर का शेक्सपीयर खाली हैमलेट में ही नहीं है, शेक्सपीयर रचित छोटे बड़े भले बुरे सब चरित्रों मे है—लीयर मे, गिरयडा मे, फालष्टाफ़ में, ओवेरन में, मैकबेथ, मैकडफ, शाइलाक सब चरित्रों मे है। मिल्टन रचित किसी चरित्र में वह शेक्सपीयरत्व नहीं और शेक्सपीयर रचित किसी चरित्र मे मिल्टनत्व नहीं।

(क्रमशः)

जातीय-साहित्यालोचना की आवश्यकता।

(अनुवाद)

कुछ लोगों को साहित्य पद का अर्थ सुपरिचित होने पर भी उस का लक्षण बताने के लिये हमें कुछ थोड़ा बहुत परिश्रम स्वीकार करना पड़ता है। इस उठाए हुए विषय की आलोचना में सुभीता हो, इस लिए वर्त्तमान काल के एक प्रधान लेखक का मत सक्षेप में विवरण करते है। स्टोपफोर्ड ब्रुक साहब के "साहित्य में धर्म" और "जीवन में धर्म" नामक दो व्याख्यान पुस्तकाकार प्रकाशित हुए हैं इन में से पहले में वे कहते हे—लिखित वस्तु मात्र ही साहित्य नही है। नाम के लेख में कुछ विशेष गुण रहना आवश्यक है। पहले प्रतिपाद्य विषय का उच्च-भावात्मक होना और उसमें वर्णनाच्छल से जिन जिन विषयो की अवतारना की जाय वे उन सब का उच्च भाव और उच्चचिन्ता से पूर्ण होना। दूसरे वर्णन का भी अन्य भावा वा अश्लीलता से वर्जित होना, संयत और लालित्य पूर्ण होना आवश्यक है। मूल विषय के चारों तरफ उसके सभी भाग ऐसे सुसम्बद्ध और पल्लवित होकर उठाए जाने चाहिए कि पढ़ते प्रमाण ही पाठको के मन मे स्वभावसुन्दर वस्तु के देखने के से आनन्द का सञ्चार हो जाय।

शब्द और अलङ्कारों का विन्यास, और रसों का समावेश करके विषय को ऐसा सरस और स्पष्ट करना होता है

कि उसे पढ़के पाठक यही समझै कि लेखक ने आत्मानन्द में डूब कर विषय गौरव मे मत्त होकर लिखा है। सब से बडी बात तो यह है कि साहित्य कहलाने के लिए उस में कल्पना शक्ति की लीला खूब खेलती हुई होनी चाहिये। इस कल्पना शक्ति का कार्य दो प्रकार का है। जिस ग्रन्थ कौशल की छोटाई बड़ाई से एकही विषय भिन्न २ लेखकों के हाथ से सरस वा नीरस हो जाता है, उसका मूल यही कल्पना शक्ति है। भाव के विलासोंको, कम ज्यादा अपने मस्तिष्कमें हम सब ही अनुभव करते हैं, किन्तु उसे सुशृङ्खल और सुललित भाषा में व्यक्त करना कितने आदमी जानते हैं? कल्पना शक्ति का अभाव ही इसका कारण है। जीव शरीर में जैसे रक्तसञ्चालन होता है, चिन्ता और भावराशि भी वैसे ही कल्पना शक्ति के द्वारा उत्पन्न और अनुप्राणित होते हैं। यह कल्पना शक्ति ही साहित्य का प्राण है। किन्तु इसका एक और प्रधान कार्य है—इसके बलसे ही लेखक आदर्श पदार्थ की सृष्टि करता है। इस सृष्टि का अर्थ किसी नए पदार्थ का बनाना नहीं है। दृश्यमान वस्तुओं के संक्षेप से ही यह सृष्टि क्रिया सिद्ध होती है। जब कल्पना लेखक के हृदय में आविर्भूत होती है, तो वह हसता है, रोता है, क्रोध से अभिभूत होता है। प्रेमावेश से विह्वल होता है, भय से कांप उठता है, जहां जिस भाव का प्रयोजन होता है, उसे ही उसकी लेखिनी निकाल देती है. भाव के गुरु होने से लेखकका प्राण स्वर्गीय आनन्दका उपभोग करता है कल्पना यदि विकृत मस्तक का आश्रय न करे. तो

उसकी क्रिया स्वाभाविक नियम से ही होती है इससे सृष्टि वस्तु भी सत्य होती है। लेखक भाव में शराबोर होकर, आनन्द में मतवाला होकर जो लिखता है, वह सुन्दर ही होता है, क्योंकि सौन्दर्य अन्तर्निहित प्रेम और आनन्द का बहिर्विकाशमात्र है। इस सौन्दर्य से जीवनस्रोत सदा बहता रहता है, यहां तक कि जो इससे स्पर्श करते है उनके प्राणो में भी सजीवता और सरसता संचारित होजाती है। यों सृष्ट वायु का ध्वंस नही होता वह सदाही नवीन रहती है। युग युग में यह मानव प्राण में उद्दीपना और उत्तेजना का संचार करती है। युग युग में यह मानव प्राणों पर सान्त्वना और शान्ति की धारा सींचती है।

कहना फजूल है उच्च अङ्ग के काव्य में ही यह सब गुण मिलते हैं। इसीसे ब्रुक साहब ने काव्य को ही उच्चतम साहित्यके स्थान में प्रतिष्ठित किया है। वह लिखते हैं—यह गुण यदि सब न हों तो साहित्य में कुछ तो होने ही चाहिए। जिस लेख में इन में से एक भी नही वह सामाजिक या व्यावहारिक दृष्टिसे उपकारी वा आमोदजनक हो सकता है, किन्तु उसे साहित्य नाम नही दिया जा सकता। ऐसे निम्नश्रेणी के लेख और ऊपर कहे हुए उच्च अङ्ग के काव्य में साहित्य के कई भेद दिखाई देते हैं।

साहित्य के इन लक्षणो से प्रतीत होता है कि मानव-चरित्र, मानवसमाज और तत्संसृष्ट जगत् को लेकर ही वह

(क्रमशः)

विज्ञापन

पं० महावीरप्रसाद द्विवेदी को कौन नहीं जानता ? वह हिन्दी के बड़े भारी कवि हैं । उनकी कविता में जो शब्द का, अलङ्कार का वा भाव का निभाव होता है वह और जगह मिलना मुश्किल है । उनके कोई ३० काव्यों का संग्रह हमने "काव्यसञ्जूषा" नाम से छपाया है । टाइप, कागज, सब कुछ बहुत बढ़िया है । कविता के प्रेमियों को ऐसा मौक़ा बहुत बिरला मिलता है जब वे अच्छे कवि की अच्छी कविता का अच्छा संग्रह पा सकें । अब उनको मौक़ा है, उन्हें अपनी२ रुचि के अनुसार बहुत बढ़िया कविताएं मिल सकती हैं । उन्हें चूकना नहीं चाहिए और झटपट ।|) भेजकर एक प्रति खरीद लेनी चाहिए ।

पुस्तक मिलने का पता—

मेसर्स जैन वैद्य एण्ड को

जौहरी बाज़ार जयपुर

———o———

समालोचक का प्रथम भाग, अर्थात् प्रथम वर्ष की फ़ाइल बहुत बढिया लेखों से सजी प्रायः ३०० पृष्ठों की है । मूल्य १।|) जल्दी मंगाइए, कापियां बहुत थोड़ी रह गई हैं ।

मैनेजर

———o———

समालोचक के लिए अच्छे और स्वीकृत लेखों के लिए समालोचकविना मूल्य भेंट दिया जायगा । लेख चाहिएं !!

मैनेजर

जयपुर एजेन्सी ।

यदि आपको जयपुर की प्रसिद्ध दस्तकारी की चीज़ें मंगानी हों तो उचित है कि और जगह व्यर्थ अधिक व्यय न करके हमारे यहां से अच्छी चीजें मंगवाले। दाम उचित लगेगा, चीज ऐसी मिलेगी कि जिस से जयपुर की कारीगरी का नमूना जाना जाय। सांगानेरी छींटें, पत्थर मकराने और पीतल की मूर्त्तियां और बरतन, लकड़ी का काम, सोने की मीनाकारी प्रभृति सब चीज़े उचित मूल्य पर भेजी जा सकती हैं। यदि आप यहा से मंगवायेंगे तो हम विश्वास दिला सकते हैं कि आप धोखा न खायेंगे और सदा के लिए गाहक हो जायेंगे। जयपुर के सुन्दर दृश्यों के सुन्दर चित्र अलभ्य और ऐतिहासिक चित्र और फोटो, हाथ की बनाई बढ़िया तसवीरें, आपकी आज्ञानुसार भेजी जा सकती हैं। एक बार मगाइए तो। हमारे यहां के चित्र प्राय इङ्गलैण्ड भी जाया करते है और सुप्रसिद्ध सचित्र पत्रो ने उनकी अच्छी क़दर की है॥

मेसर्स जैन वैद्य एण्ड को
जौहरी बाज़ार जयपुर

इधर देखिये !

आप को हिन्दी का सच्चाप्रेमी समझकर हमने आप की सेवा में यह समालोचक का दूसरे वर्ष का पहला अङ्क, भिजवाया है, आशा है आप जैसे उदार और हिन्दीहितैषी स्वीकार कर इस लघुपत्र का गौरव बढ़ावेंगे, और साथ ही स्वीकार पत्र वा अति अल्प मूल्य १॥) भेजने की कृपा करेंगे।

मैनेजर

प्रार्थना

जिन सज्जन हिन्दी प्रेमियों ने अपना हिसाब साफ़ कर प्रथम वर्ष का मूल्य भिजवा दिया है उन को धन्यवाद है। अब हम उन महाशयो से प्रार्थना करते हैं, जो बराबर पत्र लेते रहे और वी. पी. आने पर लौटा दिया, मूल्य भेजने की कृपा करें या हमारे पत्र वापिस भेजदेवें।

मैनेजर

Registered No.T 25

समालोचक

मासिक पत्र

नीरक्षीरविवेके हंसाऽऽलस्यं त्वमेव तनुषे चेत् ।
विश्वस्मिन्नधुनाऽन्य कुलव्रतं पालयिष्यति कः ॥

(भामिनीविलास)

भाग २	सितम्बर १९०३	अङ्क १४

लेख	पृष्ठ

प्रोप्राइटर और प्रकाशक
श्रीयुत मि० जैनवैद्य जौहरी बाजार जयपुर

[illegible]

नियमावली ।

१—"समालोचक" हर अंग्रेजी महीने के अन्तिम सप्ताह में निकला करता है ॥

२—दाम इसका सालाना १॥) है, साल भर से कम का कोई ग्राहक न हो सकेगा न =) का टिकट भेजे विना नमूना पा सकेगा ॥

३—"समालोचक" में जो विज्ञापन छपेंगे उनमे कुछ भी झूठा व अतिरञ्जित होगा तो उसकी समालोचना करके सर्व साधारण को धोखे से बचाने की चेष्टा की जायगी ; कोई विज्ञापन विना पूरी जाँच किये नहीं छापा जायगा ॥

४—आई हुई वस्तुओ की बारीर से समालोचना होगी, किसी की व्यक्तिगत विरोध से भरी वा असभ्य शब्द पूरित समालोचना नहीं छापी जायगी, जो समालोचना न्यायपूर्ण और पक्षपातशून्य होगी वही छापी जायगी । प्रेरित पत्रों के मतामत के उत्तरदाता संपादक नहीं हैं ॥

५—जो पुस्तक व पोथी जघन्य अथवा महानिन्दित और सर्व साधारण के लिये अहितकर होगी उसका प्रचार और प्रकाश बन्द करने के लिये उचित उद्योग किया जायगा । जो उत्तम, उपकारी और सर्व साधारण मे प्रचारयोग्य होगी उस के प्रचार का उचित प्रयत्न किया जायगा । इन पुस्तकों के सुलेखकों को प्रशंसापत्र व पुरस्कार प्रदानादि से भी उत्साहित किया जायगा ॥

समालोचक में विज्ञापन की दर

पहली बार प्रतिपंक्ति	=)
छः बार के लिये	-)
छपे विज्ञापन की बटाई	४)
वर्ष भर के लिये एक पेज	१२)

६—समालोचक के लिये लेख, समाचारपत्र, पुस्तक, पुस्तकादि, ग्राहक होने की चिट्ठी, पता बदलने के पत्र, विज्ञापन के मामले की चिट्ठी, पत्री, सब समालोचक के मैनेजर मिस्टर जैनवैद्य (जौहरी बाज़ार जयपुर) के पते पर भेजनी चाहिये ॥

मैनेजर

✻ समालोचक । ✻

भाग २]   सितम्बर १९०३   [संख्या १४

सम्पादकीय टिप्पणियां

समालोचक होना सहज कथा नहीं है। जोन्सन साहब की कुर्सी पर बैठना कठिन कार्य है। समालोचक का चित्त उदार और माथा विद्या बुद्धि का आगार चाहिये।

बिहारबन्धु १५।८।०३

गत वार पं० किशोरी लाल गोस्वामी जी के उपन्यासों पर जो नोट लिखा गया था उसमें एक भूल रहगई है। चपला की लज्जा नहीं लेली गई है, किन्तु उसकी बहन सौदामिनी और कामिनी का सतीत्व गन्दी तरह खतरे में लाया गया है। अब हम चपला के प्रकाशित दो भागों के चरित्रों की समीक्षा में कुछ लिखने में समर्थ हैं।

प्रथम तो यही पूछना है कि उपन्यास का नाम चपला क्यों रक्खा गया? चपला के विवाह की रात को उसका वर लापता होगया और जब उस कुटुम्ब पर आपत्ति आई तो कोई चपला को उड़ा लेगया! बस, इसके सिवाय चपला का उपन्यास के साथ कोई सम्बन्ध नहीं। दो भागों तक प्रधान नायिका back g ound नेपथ्य में पड़ी रही है। आगे भी हमें यह आशा नहीं होती कि दो भागों में गोस्वामी जी उसी २ की बात कहेंगे। और भी तो कई [illegible]

झाने हैं। हां, उपन्यासों की नायिकाओं के लिये गोस्वा-
मी जी ने नये नियम बनाये हों तो क्या कहना।

अब, दुर्भाग्य के मारे शङ्करप्रसाद और योगमाया को
छोड़ कर बाकी चरित्रों को तो ज़रा तोल देखिये।

हरप्रसाद—शङ्करप्रसाद का ज्येष्ठ पुत्र। भला और योग्य,
भाई की नौकरी लगवाता है, किन्तु उस पर
नोट चुराने का कलङ्क वा सन्देह होता है। बड़ा
ही गम्भीर है, कर्ज़दारों को नहीं गिनता, किन्तु
घरपर आपत्ति का पहाड़ टूटतेही सती-स्त्री (जिस
से वह कई बातें छिपारहा था) और अनाथ
बहनों को छोड़ भागता है। कैसा असम्बद्ध चरि
त्र है! -

शिवप्रसाद—भाई की भक्ति से, उसपर नोट की चोरी का
सन्देह होने पर भी, स्वयं आपत्ति ओढ़ता है,
और इस निःस्वार्थता के कारण जेल जाता है!!

मालती— हरिप्रसाद की स्त्री आदर्श हिन्दूरमणी, पति
को देवता मानकर विश्वास करने वाली।
अपना गहना कौल कौल बेच देती है, अनाथ
ननदों को संभालती है, किन्तु पति का वि-
श्वास नही पाती और क्षय रोग से पीडित
होती है।

* सौदामिनी—बालविधवा ननद शोहदों के द्वारा छेड़ी
जाती है, चाचा के द्वारा बेइज्ज़त होती २
बचती है, सर्त्यानाश करने वाले श्रीनाथ
और कमलकिशोरको चकमा देकर भागती है।

* कामिनी—राक्षसी कन्या होने के कारण कुमारी।

हरिनाथ के अङ्गप्रत्यङ्गचुम्बन को सहन करती है और श्रीनाथ कमलकिशोर के द्वारा नङ्गी की जाकर दैवी कलाही से हरिनाथ के द्वारा बचाई जाती है !

हरिनाथ—एक good for nothing निखट्टू सिड़ी धनी आदमी, जिनके हृदय में दया है, किन्तु असभ्य देह में छिपी हुई। सन्देह होता है, उनकी दया स्वाभाविक न थी, किन्तु कामिनी के अङ्गप्रत्यङ्गचुम्बन के खरीदने का उपाय था क्योंकि वे एक ब्राह्मण को लत्ताप्रहार कर चुके हैं। वे बड़ी पैरवी करते हैं अनाथ कुटुम्ब के ईश्वर हैं, किन्तु सिड़ी की तरह विलायत भागते हैं। कामिनी को पाशविक अत्याचार से बचाते हैं।

श्रीनाथ— दुराचारी, लम्पट, नरपशु।

नवलकिशोर—नरपिशाच, उसका मित्र, तथैव च।

रमानाथ—शराबी, भ्रष्ट।

गुलाब— रमानाथ की स्त्री, रमानाथ के व्यभिचार का बदला लेने के लिये नौकर कमीने संभू से फसती है। (सब से गंदा अंश)

* चमेली—गुलाब की ननद। दुराचारिणी, नैहर में रहकर बिगडी हुई, पति का स्पर्श उसे कांटे सा मालूम होता है। योग्य पति को छोड़, औरस पुत्र को फैंक, एक शोहदे के साथ उड़ जाती है, जो उस का रेल ही मे सर्वनाश कर देता है।

मदनमोहन—चमेली के पति। योग्य दयावान् किन्तु उनको गृहस्थ सुख नहीं है, घर छोड़ कर भागते हैं।

(उनकी बहन उनको चाहती है ! ! ! !)

ललिता— मदनमोहन की सम्बन्ध में बहन, किन्तु उसको अपना हृदय अर्पण कर चुकी है ।

बुधिया की मा—स्वामिभक्त किन्तु वाचाल ।

अब हम सब से पूछते है कि उन चरित्रों में क्या कोई एक भी ऐसा है जिससे हमारे हृदय को आमोद मिले, जिससे मन प्राण जग उठे, जिनको दिखाकर गोस्वामी जी अपने कर्तव्य के अनुसार हमारे से मोरी के रेंगते कीडो को उन्नत करे ? कोई भी नहीं, हां दो तो रह ही गए—

कादम्बिनी—भोली भाली, शायद हत्यारे को प्रेम करती है ।

व्रजकिशोर—उदार राजा का पुत्र, किन्तु शायद नरहत्या करने वाला ।

हरप्रसाद एकान्तवासी होता है, मदनमोहन पिशाचिनी स्त्री से जोड़े जाकर भागते हैं, सती मालती मरी जाती है, विधवा सौदामिनी को दो दफा ईश्वर बचाता है । यह क्या लीला है? यह क्या ग्रन्थकार का कर्त्तव्य पालन है ? एक भी चरित्र ऐसा नहीं जिसपर हमारी नजर टिके, जिसके सुवास में हम मोरीधि प्रभृति की दुर्गन्ध से अपना पिण्ड छुड़ावें ।

गुलाब का लम्प बुझाकर सभू को अपने पास लिटाना, बटुक प्रसाद का छकना, चमेली का रेल में सर्वनाश, कामिनी का नङ्गा किया जाना यह चित्र बड़े ही गन्दे है । इन से कौनसा inspiration होता है ?

हां, क्या गोस्वामी जी यो चलते चलते चारों बहनों को बचादेंगे, वा Reqtoted की तरह एक को किसी की खानगी बनाकर मानेंगे ।

गोसाईं जी ने एक टन्टा और छेडा है, ललिता का

अपने भाई से प्रेम ! यहां वह सब broken heart वगैर बातहैं आजाएंगी ।

एक और मजा देखिए—संसार का सब से बड़ा जो रहस्य है, जिस तत्व पर ही ईश्वरवाद की जड़ है, उस "यतो वाचो निवर्त्तन्ते" विषयपर, अर्थात् पापपुण्य का बदला यहां क्यों नहीं मिलता इसपर गोस्वामी जी एक जगह कहकहा लगाते है ।

किन्तु हा ! अजब संसार की रीति है ! जिन लोगों का धर्म और ईश्वर पर इतना अचल विश्वास है वे क्यों इतना दुःख उठाते हैं, इसका मर्म कुछ समझमें नही आता (चपला, भाग २ पृष्ठ ४५) चपला के अभी दो भाग और निकलने है, और हमे उनके बारे में और असम्बद्ध चरित्रों के बारे में बहुत कुछ कहना पड़ेगा क्योंकि भारतेन्दु के "नाटक" की तरह गोस्वामी जी एक उपन्यास का ग्रन्थ लिखने वाले हैं ! !

गोस्वामी जी महाराज से हमारा निवेदन है कि वे बुरा न मानें । हम जो कहते हैं सो उनके ग्रन्थपर, उनके लिए हमें आदर है । जब वह गम्भीर लेख लिखते है तो वैसा लिखने वाले बहुत थोड़े मिलते है । किन्तु पाठको ! जिस क़लम से लका, कलिंगराज्य और गगावतरण निकले थे, उसी कलम से यह सब निकलता देखकर हम कहते हैं भली सूरत को छिपाते हो, बुरा करते हो !

--*

नागरी प्रचारणी सभा की रिपोर्ट आई है अच्छी आई है और अच्छे मौके पर आई है । सभा मे ४५८ मेम्बर है, १७ कार्यकर्त्ता है, २७७७ पुस्तके है । सभा ने ३४२

पुस्तकों की खोज की है, जिन में एक १८०७ का किया हुआ श्रीमद्भागवत का अनुवाद है (चलो, बोपदेव की बात तो उड़ी) पत्रिका तथा ग्रन्थमाला छपती रही, रामायण प्रकाशित हुआ ही चाहता है, देहाती स्कूलों की परीक्षा और इनाम बांटे गये, देश के इतिहास का प्रथम भाग बनगया, वैज्ञानिक कोश ता० २१ सितम्बर से दोहराया जायगा, रासा के ग्राहक बहुत कम है तथापि वह छप रहा है, मनोविज्ञान के लेख के लिये पण्डित गणपत दुबे को पदक और अपने नगर के इतिहास के लिये लखनऊ के एक विद्यार्थी को एक मोहर दिए गए। सरकार और टेक्स्ट बुक कमेटी के हिन्दी के वास्तव रूप को बिगाड़ने के विचार के विरुद्ध सभा कमर कस कर लड़ रही है। काशी की कचहरी मे अपने व्यय से सभा ने एक अर्जीनवीस रक्खा है।

***

जब प्रान्तिक सरकार ने भाषा के जटिल प्रश्न पर राय पूछी तो पण्डित लक्ष्मीशंकर मिश्र फिसल गए और उर्दू मिश्र हिन्दी के पक्षपाती होकर सभापति पने से इस्तीफा दे बैठे। यह बात उस समय ट्रिब्यून में छपी थी और हम हिन्दी पत्रों और सभा को धन्यवाद देते है कि उन्होने इस छिपाने लायक लज्जा की बात का हल्ला न मचाया। अभी हमारे देश में ऐसे कर्मवीर बहुत कम हैं जो सरकार के पूछने वा किसी सम्बन्धी के स्वार्थ के आगे अपने सिद्धान्त पर खड़े रहे। इसी सम्बन्ध में हिन्दी का लिदास, लाला सीताराम बी० ए० ने जो सभा को विद्या सम्बन्धी उत्कर्ष का आदर्श नहीं माना है, वहां हम भी सहस्त्रजिह्व होकर कहते हैं कि डिपुटी साहब का यह

कहना असम्बद्ध, अनावश्यक और असत्य है। इस घराऊ लड़ाई और बाहरी उपेक्षा के रहते भी सभा ने जो कुछ किया है वह स्तुत्य है।

※ ※ ※

समालोचक, भला या बुरा, हिन्दी साहित्य में नई चीज़ है। सभा को उचित था कि उस पर सलाह देती, दोषों को सुधारती और (यदि कुछ गुण हैं तो) उन का उल्लेख करती। किन्तु, शायद भूल से समालोचक के विषय में एक शब्द भी नहीं लिखा गया है। यहां तक कि इस का और आनन्दकादम्बिनी का (जिस का फिर निकलना हिन्दी के गौरव की बात है) प्राप्ति स्वीकार भी नहीं किया गया!! क्या यह पत्र सभा को नहीं मिलते थे?

※ ※ ※

एक विदेशी पादरी की सहायता से हिन्दी भाषियों की रायल सोसाइटी नागरीप्रचारिणी सभा का भवन काशी के बीच में बन रहा है। किन्तु अभी उस में प्रायः १००० रुपये की ज़रूरत है। यदि सभाभवन का काम यहां रुक जाय, तो हमारी आरम्भशूरता और कृतघ्नता का काला बिन्दा काशीजी पर खूब लगेगा। समालोचक के ग्राहक यदि इस में कुछ यत्न करें तो हम चिरकृतज्ञ होंगे। यदि १०० आदमी स्वयं १०) दें या अपने मित्रों से दिलवावें तो १०००० रुपया बात की बात में हो सकता है। और एक आदमी को १०० रुपया इकट्ठा करना मुश्किल नहीं है।

※ ※ ※

यदि प्रयाग समाचार की छापी सभा की रिपोर्ट के एक वाक्य का कुछ अर्थ हो सकता है तो वह यह है कि

सभा राजस्थान (Todd?) का अनुवाद अपनी ग्रन्थमाला में छापेगी। यानी महाराष्ट्र की आप, से, प्रतिवर्ष ४ संख्या के अन्तर्गत प्रकाशन से ३२ विराट् पत्रों में इस ग्रन्थ के प्रकाशन की विराट सम्भावना होगी। सभा ने क्या राजस्थान का अनुवाद किया है? कब? छपाने की भी ऐसी जल्दी? तो इस क्रम से कै दशाब्दियों में हिन्दी वाले पूरा राजस्थान पावेंगे? क्या हम सभा की सहायता कर के उस की ग्रन्थमाला को नाशक नहीं करा सकते? राजस्थान के समर्थवान जो बहुत दिनों से टाड छापने को उत्सुक है, सभा यदि उनसे बातचीत करे तो वह ग्रन्थ को छापेंगे भी और सम्पादकीय व्यय भी दे सकेंगे। हम इस बात को समझे नहीं।

* * *

राजस्थान में बाबू मन्नूलाल ने हिन्दीभाषा पर एक अच्छा लेख लिखा है। रैडियन पर हिन्दी बंगवासी भी पढ़ने लायक है।

* * *

श्री भारतधर्ममहामण्डल के धार्मिक उद्देश्यों से तो समालोचक का कुछ सम्बन्ध नहीं है, तथापि इस खयाल से कि महामण्डल का कार्य हिन्दी में आरम्भ हुआ था, और हिन्दी में हो रहा है और अब भी महामण्डल हिन्दी की हिमायत की शपथ करता है (१) हम समझते हैं कि हमें कुछ कहने का अधिकार है। हम देखते हैं कि महामण्डल की मछली ने हिन्दी अखबारनवीसी के तालाब को गन्दा कर रक्खा है। हिन्दी के सम्पादक ही डाले और निकलते थे, कि इतने बैठे एक शगूफा हाथ आगया। यहां

(1) to spread the study of Hindi, which the Mahamandal aims at making the *lingua franca* of India.

तक कि तिलक केन और नागरीप्रचारिणी सभा की रिपोर्ट पर लिखने को स्थान नहीं और मण्डल के सच्चे झूठे पचड़े पर बार बार कालम ! ! जो हो, प्रयाग समाचार, भारत धर्म प्रभृति में केशव स्वामी प्रभृति के नाम से, वा सम्पादकीय ढंग से जो लेख निकाले जाते हैं वह हमें बहुत बुरे मालूम दिए हैं और उनसे हिन्दी अखबारनवीसी में बट्टा लगता है। मान लीजिए कि एक बङ्गाली ने ब्रजमण्डल में रहक॰ लोगो को धोखा दिया तो बङ्गाली मात्र को चीनड़ और ब्रजवासी मात्र को कुवाच्य कहने का कौन मौका है ? जैसे यदि कोई कोई काशी के पण्डित दूर दूर व्यवस्थाओं की नोटिस देकर गाहक जुटाते हैं (हमें इस बातकी सत्यता की चिट्ठियां मिली है) वा एक रुपया लेकर स्वार्थान्धप्रकाशिका पर सम्मति कर देते हैं, तो काशी के पण्डित मात्र को व्यवस्था और धर्म का बेचने वाला कौन कह सकता है ? केशवस्वामी और निरपेक्ष की इस क्षुद्र बहस ने एक क्षत्रिय के द्वारा उन मान्य पण्डित की उपाधियो पर चर्चा उठादी है जिनके कि केशवस्वामी प्राइवेट सेक्रेटरी बनते है। शायद कलियुग के भय से सारा धर्म हिन्दी अखबारो ही के शरण आगया है और भाषाओं के पत्रो पर धर्म की कृपा नही है।

***

निगमागमचन्द्रिका के अष्टम भाग के नं० १, २ (चैत्र वैशाख) अब निकले हैं। जब तिहाई दर्जन पत्रो के सम्पादक इसरो ज्वाइन्ट बने है तो हम आशा करते है कि इसमे शुष्क विवाद और हिसाब की भरती ही न रहा करेगी। पण्डित चक्रवर्ती शायद अंग्रेजी के दार्शनिक और धार्मिक

आसिक पुस्तकों से परिचित होंगे, उन्हें उचित है कि उनकी चाल पकड़ें महामण्डल के प्रबन्ध में, पहले और अब, यही अन्तर है कि पहले महामण्डल के कर्त्ता स्वतन्त्र थे और सरे बाजार एक और स्वतन्त्र बने हुए थे, वर्त्तमान प्रबन्धक भी एक है, किन्तु टट्टी की ओट से लग म पकड़ना चाहते हैं। स्वामी जी की सम्मति पर जोर क्यों ? वही गिने गिने नरपतिगण क्यों ? इत्यादि कई प्रश्न प्रत्येक निष्पक्षपाती को सूझते हैं। और वही कई रूपों में पूछे जा रहे हैं। प्रायः आठ पृष्ठ की स्वर्ण जिह्व वकालत के बाद सम्पादक चक्रवर्ती ने जो सिद्ध किया है और जो महामण्डल की वर्त्तमान पालिसी दिखाई देती है, वह यह है—

"जब ऐसे पुरुष रत्न की अधीनता में भारतधर्ममहामण्डल स्वामी जी की सम्मति के अनुसार प्रबन्ध से (क्यों? क्यों ? क्यों ?) परिचालित होने लगेगा, तो भारत में हिन्दूजीवन के लिए मानो एक बार ही नवीन युग उपस्थित होगा (जैसा कि मधुसूदनसंहिता के प्रचार से होता होता रह गया)

***

अंग्रेजी परिशिष्ट की भाषा शब्दमय होने पर भी दुर्बल और अपक्व है।

यहां पर हमें आर्यसमाजियों से भी एक निवेदन करना है। आर्यसमाज के प्रचारक एक बड़े दूरदर्शी पुरुष थे, जिन्होंने अपने शिष्यों की वृद्धि और गौरव के लिए हिन्दी का आश्रय लिया। इस बात को कट्टर से कट्टर आर्यसमाजी भी मानेगा कि यदि स्वामी दयानन्द हिन्दी को अपनी धर्मभाषा न मानते तो उनका यह-जलवा न होता। किन्तु वही आर्यसमाज अब हिन्दी से

फिसला जाता है। आर्यसमाजियोंके आर्गन उर्दू में, नियम उर्दू में, सन्ध्या भी उर्दू में !! उन्हें अपने स्वामी जी के नाम पर पंजाब में एक हिन्दी पत्र निकाल कर यह ऋण पूरा करना चाहिए। क्या उनको शर्म नहीं आती कि उनके बेटों को "गायत्री" भी उर्दू में पढना पड़ती है, और रावी में सिसकते हुए आर्यावर्त को छोड़ उनके अड्डे पंजाब में (जहां उनका कालिज इस हतभाग्यदेश की कर्मशीलता का नमूना है) एक भी हिन्दी का पत्र नहीं !! अभी सुधरने का समय है। इसी प्रसंग में दो बातें कहना है—

(१) लाहौर दयानन्दएंग्लोवैदिक कालिज में हिन्दी पढ़ना आवश्यक है यह बहुत अच्छा लक्षण है। (२) वहीं से निरुक्त का एक भाषानुवाद निकलने वाला था, वह क्या हुआ? यदि निकलने वाला हो तो हमारी सूचना है कि उस का अनुवाद स्वतन्त्र हो, साम्प्रदायिक संकीर्णता से बिगड़ने न पाए। हां, समाजीय नोट टिप्पणी मे दिए जाय तो कोई हानि नहीं।

* * *

भारतधर्ममहामण्डल के संस्थापक पण्डित दीनदयालु के ओजस्वी और सुधामधुर व्याख्यान मद्रास में हुए। वह दिन हिन्दी के इतिहासमे स्वर्णाक्षरो से लिखनेयोग्य है जिस दिन फ्रेंच आफ इण्डिया के वक्ता पण्डित जी को मद्रास मे, दाक्षिणात्यो के बीच में, आनरेब्ल ला० गोविन्ददास ने एड्रेस दिया। यदि स्वामी दयानन्द की इस लिये स्तुति की जाय कि उन्हों ने हिन्दी को अपनी धर्मभाषा बनाकर उसके साहित्य की पुष्टि कराई, की, तो पण्डित दीनदयालु को भी अटक से कटक तक और कश्मीर से कन्याकुमारी तक हिन्दी

को राष्ट्रभाषा बनाने के अन्यतम प्रधान उपाय व्याख्यान में वर्तने के लिये धन्यवाद देने चाहिये। जब उक्त पण्डितजी अमृतसर पिंजरापोल के लिये लाख रुपया इकट्ठा कर सकते हैं, तो क्या वह उदार महात्मा अपने पांच सात व्याख्यान नागरीप्रचारिणी सभा को नहीं दे सकते जिससे सभा का सारा दारिद्र्य मिट जाय और हिन्दी की सर्वांग पुष्टि की नींव दृढ़ हो जाय?

* * *

सहयोगी वेङ्कटेश्वर, भारतमित्र और प्रयागसमाचार को उनकी उदार समालोचना के लिये धन्यवाद है। प्रयाग समाचार से निवेदन है कि १ सम्पादक नया है यह रहस्य तो नहीं छिप सकता तथापि उनका पता पूछने में आपने भूल की है, "हमारी ओर वो देहाती" यह पद सम्पादक द्विवेदी के हैं, हमारे नहीं (२) प्रकाशक सम्पादकीय person-ality व्यक्तिगत बातों में हाथ नहीं डाल सकते (३) डरने और मुंह छिपाने वाली बात को आप समझ कर भी न समझे (४) परिवर्तन की जरूरत कई मित्रों ने बताई है मुबल्लिगान के लिये।

* * *

बङ्गला उपन्यासों से पात्रियों के चरित्र पर अपने टेरे का सिलसिला बहुत जल्द ([illegible]) शुरू करने की भारतमित्र की प्रतिज्ञा कब पूरी होगी? शायद बंगला का नशा अब बङ्गालियों की हिन्दी पर जब निकलता है। खैर, जल्द तो रही और "न.,"न, के दीसके की तरह "जल्द" पूरा करने में २ वर्ष तो नहीं लगे।

* * *

बिना मंगाये वी. पी. भेजने का जो जघन्य उपाय पं॰ द्विवेदी ने टेक्स्टबुक में लिखा है, समालोचक के प्रकाशक भी उसके भुक्तभोगी victim हैं। यद्यपि उन्हों ने उदारता से वी पी. नहीं लौटाये तथापि यदि यह सिलसिला रहा तो उन्हें डाक की अधिकारियों को सूचना देनी होगी और समालोचक में उन उपन्यास समुद्रों का नाम प्रकाश करना पड़ेगा। यह कलङ्क हिन्दी ही में क्यों ?

* * *

जो लोग फूल का नाम लेकर जन्मभर की बात कहने वाले ज्योतिषियों से ठगाए गए हों, वह यदि समालोचक में प्रबल प्रमाण भेजें तो बड़ी कृपा हो। हमें ऐसे कई प्रमाण मिले हैं किन्तु हम नहीं जानते कि इस विषय में हम क्या कर सकते हैं। एक ही जगह से ऐसे ४। ५ विज्ञापन निकलते हैं। ऐसे दैवज्ञों का विराजना देशके अहोभाग्य से ही होता है!!!

* * *

हम भारतेन्दु के "कहां करुणानिधि केशव सोए" पद को गुनगुनाते हुए यहां पहुंचे थे कि:—

प्रलय काल सम जौन सुदर्शन असुर प्राण संहारी।
ताकी धार भई अब कुंठित हमरी बेर मुरारी॥

इतने ही में ज्येष्ठ का सुदर्शन मिला। खैर, अब हिन्दी मासिक पुस्तकों की यह दशा समझिये।

सितम्बर १९०३—आश्विन १९६०

सरस्वती (सितम्बर १९०३) सुदर्शन (ज्येष्ठ १९६०) हिन्दी प्रदीप (मार्च अप्रेल १९०३) जासूस (सितम्बर) उपन्यास (अगस्त) आनन्दकादम्बिनी (फाल्गुन १९५९)

मिथिलामिहिरचन्द्रिका (चैत्र—वैशाख १९६०)

* * *

सुदर्शन में अब के हाफटोन चित्र के बजाय एक लेथो का कार्टून है जिसमें दरभङ्गा नरेश को मधुसूदनसंहिता के बारे में "रामाय स्वस्ति ,रावणाय स्वस्ति,, का पार्ट दिया गया है। कार्टून अच्छा है। हिन्दी बङ्गवासी के मण्डल के बिगड़ जाने से हिन्दी में उपहास साहित्य का अभाव सा होगया है जिसे सरस्वती के "साहित्य समाचार" बर्षसर से मिटा रहे है । भारतमित्र के लेख भी इस अङ्क में कुछ काम करते है। सुदर्शन भी चले ॥

ज्येष्ठके सुदर्शन में बहुत कुछ पाठ्य और उपादेय है। पण्डित मिश्र जो कुछ लिखते हैं वह शुद्ध हृदयका उद्गार होता है दम्भ का नहीं। सारे लेखो मे उनकी व्यक्ति सत्ता की एक तार है जो कहीं कहीं दूषण होने पर भी भूषण ही है। प्रार्थना का भाव उच्च है तोभी "संसार सेती तरें" खटकता है।

* * *

मारवाड़ी विशुद्धानन्द विद्यालय की रिपोर्ट पर (जो कि सम्पादक मिश्र के आन्दोलन का फल है) सुदर्शन प्रा-रम्भणों की उपेक्षा, कुछ रुपयों की गड़बड़, संस्कृत शिक्षाकी ओर उदासीनता, मारवाड़ियो की जातीयता का नष्ट होना प्रभृति दोष दिखाकर सलाहें देता है । हमभी कहते हैं कि विद्यासागर एवं हेमि की तरह यहां भी स्मर्तव्य विशु-द्धानन्द जी की रुचि का प्रतिफलि होनी चाहिए, और मा-रवाड़ियों को संस्कृत और हिन्दी शिक्षापर ज़ोर देना चा हिए। रामचन्द्र वेदान्ती के संन्यासग्रहण का भावपूर्ण य

र्णन इस लिए असन्तोषदायक है कि वेदान्तीजी के स्वर्गवास के इतने दिनों बाद निकलने पर भी उसमें अभी उन के संन्यास का ही वर्णन है।

* * *

स्वयं आदर्श के लेख में सुदर्शन कहता है कि कुए में भांग पड़ी है किन्तु हम उसके "चिराग तले अंधेरा" और "अम किसका है" लेखों को पढ़कर कहते हैं कि कुए में भांग छानी गई है और सुदर्शन भी उसके भक्त हैं। मालूम होता है हिन्दी वालों को अपने साहित्य का अजीर्ण होगया है। अभी तुम्हारे यहां है ही क्या, जो तुम यों ग्रन्थों को जलाने बहाने पर उतारू हुए हो? हो तो बाय मजा ही—सुदर्शन सारे नागरी प्रचारणी के लेख, मधुसूदनसंहिता और सनातन धर्म विरुद्ध सब लेखों को मिटा दे, नागरी प्रचारिणी सभा अश्लील किताबों को जला दे, आर्यसमाज पुराणों को फिकवा दे, आरा की सभा उपन्यासों की होली करदे, राजपूतमहासभा वेद के अश्वमेध प्रकरण से लेकर ऐतिहासिक (!) उपन्यासों तक को गङ्गामग्न करदे, पण्डित महावीर-प्रसाद सीताराम बी० ए० के काव्यों को कटिङ् मैशीन में देदें—बस, न रहेगा बांस न बजेगी बांसरी, हम भी समालोचक को रद्दी के भाव बेचकर बैठजांय। टण्टा मिटे। हिन्दी! तेरे सपूतों ने तेरी चरम पूजा करदी है, अब तेरे विसर्जन की देर है; सो गङ्गासागर में वा ज्ञानवापी में वा बूलानाले में होजाता है। आज दो महीने से जलाने बहाने की धूम है—प्रयागसमाचार क्षत्रियों को गाली देता है, स्वार्थान्ध-प्रकाशिका ने ब्राह्मणों को बुरा कहा है, भारतमित्र वैश्य और शूद्रों को गाली दे डाले और हम अपने ही को गाली

ऐसे ऐसे अपोगोण्ड साले यादवों की तरह अपना साहित्य संहार कर डालें।

* * *

भला कोई बात है? उपन्यासों की हिमायत होने लगी तो कहती कि चन्द्रकान्ता ही सब कुछ; और समालोचक समिति का पचड़ा छिड़ा तो ऐसा कि सब कुछ; बुरे उप-न्यास चलाए जाने लगें तो बाबू रामकृष्ण ही पहले अप-राधी; और सुदर्शन ने उनकी हिमायत की तो बन गये बुरों में और अब (इसलिये कि वेङ्कटेश्वर ने पण्डित मा-धवप्रसाद की थियोर—वाल्मिकी का समर्थन कहा) वेङ्कटे-श्वर प्रेस में सुदर्शन के मत के विरुद्ध ग्रंथ कैसे छपजायं। "किमाग आसीत जल्प उपेहं यत्स्तोतारं जिघांससि सखा-यम्"?

* * *

पण्डित मिश्रमें एक यह स्वाभाविक गुण है कि वे बहुत जल्दी motives attribute करते हैं, उद्देश्यान्तर दिखलाते हैं। सम्पा कृष्ण मेहता ने चन्द्रकान्ता के लिखने को छिछला कहा और स्वयं विचित्र स्त्री चरित्र नामक अद्भुत घटना का अनुवाद किया इस से पण्डित मिश्र फरमाते हैं—"गोरी चमड़ीवाले जो लिखें वो सब उत्तम है और बिचारे कृष्णकाय लिखें तो सब असभ्य ?,, यह एक ऐसी लम्बी छलांग है जिसे लम्बे से लम्बा आदमी भी नहीं भर सकता। नैयायिक मिश्र ही कहें कि यह अनुमान सत्प्रतिपक्ष (दोनों तरफ) है या नहीं?

* * *

सहयोगी वेङ्कटेश्वर से हमारा निवेदन है कि यह हम

पीछे को उठाते। पण्डित मिश्र बिना किसी excitement अ-भिनिवेश के लिख नहीं सकते और यदि हमें उनके लेख पाने हैं तो सदा एक न एक टंटा उनसे छेड़ ही रक्खा करें। अब के चपला ने हमारा बहुत स्थान लेलिया है खैर आगामी बार इस विषय को हम कुछ समझेंगे तब तक दोनों पक्षों से कुछ और भी बहुत चर्चा होही जायगी। प्रयागवनाचार इस विषय पर लिख ही रहा है।

※ ※ ※

समुद्र का मन्थन करने से विष निकलता है और रा-जपूत की उपन्यास माथ की चर्चा ने एक आतर्क विष नि-काला है जो "राजपूत की नेक सलाह" के नाम से सुदर्श-न में एक साहित्यसेवी ने दिया है। राजपूत की राजपूत आंखें भी उस लेख के सयुक्तिक तर्कवाद और गम्भीर काकु को देखकर झेंपे बिना नहीं रह सकती। हमने गतबार जो कहा था उसे हम यहां फिर उद्धृत करते हैं—

"सीधी बात तो यह है कि यदि राजपूत सचे ही कुछ काम करना चाहते हैं तो उन्हे उचित है कि पुराने लेख पढ़ें और अपने archives से इस कलङ्ककथा को झूंठ सिद्ध करदें नहीं तो उपन्यासों के गङ्गाप्रवाह और दाह होने पर भी फ़ारसी और अंग्रेजी इतिहासों में यह बात काली स्याही से लिखी ही रहेगी „

एक बात और है। हम लोग काम करना नहीं जानते। क्रौंबेल नामक स्वार्थ त्यागी देशभक्त के चरित्र को अंग्रेज लोग प्रायः दोसौ वर्ष तक नहीं समझ सके उसकी हड्डियां क़ब्र से से निकाल कर फांसीपर लटकाई गई, उसके सदु-द्देश्य से सन्देह रहा। कार्लाइल ने उस धर्मात्मा सत्पुरुष

से चरित्र की विवेचना करके उसे यह आसन दिलाया जो बड़े बड़े राजाओं को नहीं मिला है। राजपूतों को चाहिए कि अपने में कार्लाइल उत्पन्न करें। प्रकृति में survival of the Fittest उत्तमों के अवशेष का नियम बड़ा प्रबल है, वही साहित्य में चलता है। यदि राजपूत राजपूतों के उदात्त चरित्र पर ५० जीवनचरित और ५० निर्दोष उपन्यास बनादें तो हम कह सकते हैं कि १० वर्ष में भद्दे उपन्यास सब भाग जाएंगे। राजपूतों को उचित है कि ऐतिहासिक चित्रों पर सच्चा और नया रङ्ग चढ़ावें। यों तो अभी हमारे एक मित्रने लिख कर पूछा है कि राजपूतों ने हिन्दी के लिए किया ही क्या है जो उसके ग्रन्थों का नाश कराते हैं? किन्तु हम जानते हैं कि राजपूत हिन्दी की बहुत कुछ सहायता कर सकते हैं और वह सहायता केवल ग्रन्थों के नाश से नहीं होगी। यद्यपि हिन्दी के लेखक फारसी आदि के मूल ग्रन्थों पर सारा इलज़ाम थोपकर पृथक् नहीं हो सकते, क्योंकि पाप का अनुसरण का अनुकरण भी तो पाप ही है और की हिमायत कृत्रिम ही है तथापि देखना चाहिये कि और भाषाओं वाले 'राजपूत' से कैसे पेश आते हैं। हिन्दी वालों को तो बाबू रत्नचन्द्र कीसी उदारता वा कायरपन (वकील सुदर्शन के) दिखाना ही चाहिये।

* * *

सुदर्शन ने पाछे प्रभुदयाल का जो मर्सिया लिखा है वह बड़ा भावपूर्ण है और उसकी टीको (!) कार के योग्य है। अब के सुदर्शन में देवव्रत के प्रति जाह्नवी का टुकड़ा नहीं आया, अस्तु "पुनर्दर्शनमस्तु वः,,

* * *

भारतमित्र में पं० दुर्गाप्रसाद मिश्र के अनुज ने कुछ अमित्राक्षर पयार छन्दों का नमूना दिया है। यह छन्द हिन्दी में नया नहीं है, भारतेन्दु और राधाचरण गोस्वामी इसे प्रयोग कर चुके हैं। सम्भव है कि इन को कविता सुनना न आता हो, किन्तु हमारी दृष्टि में उचित है कि होनहार नवकवि वासुदेव कोई और छन्द चुनें। पयार, बङ्गालियो की तरह बिना हिलते २ पढ़ने और 'अ, को 'ओ, बोलने के, सीधी चाल से पढ़ने से अच्छा नही मालूम देता।

※ ※ ※

सितम्बर की सरस्वती में पं० बापूदेव जी का जीवनचरित्र अच्छा है। सार्वदेशिक भाषाका प्रस्ताव भी (हमारे सिस्टर फड्के के लेख के आधार पर) अच्छा उठाया गया है। कविता अच्छी है। बिहारी विज्ञान पुस्तको की आलोचना सम्पादक द्विवेदी को ही करना पड़ी, बिहारी क्या कान में तेल डालकर सो रहे हैं। आरा की सभा तो दिल्ली से हिन्दी की कान्फरेंस करती थी न ? काशी की सभा के निवेदन पर बङ्गाल के डाइरेक्टर ने उन रीडरों का दोहराना तो विचारा है।

* ※ *

ता० ११ सितम्बर के पायनियर में कांगड़ा (पंजाब) से एक अंग्रेज की चिट्ठी छपी है। उसमे लिखा है कि यद्यपि कांगड़े के आदमी बुद्धिमान्, विद्यारसिक, गुणी और योग्य होते हैं, तथापि उनकी शिक्षा का कुछ प्रबन्ध नहीं है। एन्ट्रेन्स की परीक्षा देने भी उन्हें १५० कोस अमृतसर जाना होता है और वहां जाकर वे दुराचार के एन्ट्रेन्स में तो पास हो ही जाते हैं। उक्त साहब ने कांगड़े में परीक्षा का केन्द्र कायम करने के लिए पंजाब यूनिवर्सिटी को दो बार लि-

था, कलक्टर साहब ने परीक्षा के हाल के लिए अपना द-फ़्तर तक भी देना कहा, किन्तु अंग्रेज मेम्बरों की सम्मति होने पर भी पञ्जाबी मेंबरों के विरोध से यह बात स्वीकृत न हुई। माने पञ्जाबी (यदि साहब ठीक कहते हैं तो) अपने देशी भाइयों को उच्च अधिकारों को नहीं देना चाहते जो उन का उचित स्वत्व है।

"स्वजनं हि कथं हत्वा सुखिनः स्याम माधव।"

* * *

इङ्गलैण्ड में यूनीवर्सिटियां परीक्षा लेकर ही कृतकार्य नहीं होती अपनी ओर से पढ़ाती हैं, ग्रन्थ छपाती हैं और पुस्तकालय खोलती हैं। १२ आगस्त को यूनीवर्सिटी विस्तार सभा के वार्षिकोत्सव में लार्ड औड्सेल ने सभापति के आसन से जो भाषण दिया वह बहुत अच्छा था। उन्होंने कहा कि कई पुस्तकालयों में सैकड़े प्रति ८० उपन्यास पढ़े जाते हैं, किन्तु सप्ताह में दो उपन्यास पढ़ने के स्थान एक इतिहास या जीवनचरित पढ़ना अधिक लाभकारी है। पुस्तकालयों का बड़ा उपयोग works of reference प्रमाणग्रन्थों के देने में है इससे पुस्तकालयों में प्रमाणग्रन्थ बढ़ाए जायं, और सब पुस्तकालय और विश्वविद्यालय एक मन से काम करें"। भारत में यूनिवर्सिटियों में कलकत्ते की लाइब्रेरी कुछ है, और सब की नाम मात्र है। एशियाटिक सोसाइटी बङ्गाल अपनी तरह में २।३ व्याख्यान सर्वसाधारण को दिलवाएगी। क्या यूनिवर्सिटी कमीशन की प्रेरणा से यूनिवर्सिटियां भी अध्यापन कर्म पकड़ेंगी या परीक्षा मात्र में सन्तुष्ट रहेंगी?

आरा—प्रणातृ—समालोक—सभा से स्वीकृत चन्द्रावली की समालोचना ।

(१) इस पुस्तक के लेखक कोई हिपुतरगढ़ के लालजी सिंह गहरवार हैं । पुस्तक अच्छे टाइप में छपी हुई है जिससे पढ़ने में सुगमता होती है । उपन्यासदर्पण औफिस के अध्यक्ष बाबू विशेश्वरप्रसाद (काशी)के निकट ग्राहकों को चिट्ठी और मूल्य भेजना चाहिये ।

(२) थोड़ा प्रसाद गुण इसमें आगया है । इसके पाठक किसी प्रकार इससे शिक्षा भीप्राप्तकरसकते हैं। आजकलकेउपन्यास लेखक बहुधा अश्लील बातों से पुस्तक भर दिया करते हैं । हर्ष की बात है कि इसके लेखक ने अपने को इस दोष से बचालिया है । उपन्यास लिखने का ढर्रे ऐसा चलाहुआ है कि जिसको देखिये वह इसी धार में बहा चला जाता है । जिसको लिखनेकी अभिरुचि हुई उसने उपन्यास ही लिखने के हेतु लेखनी उठाई । इसीसे उपन्यास लिखने वाले प्रायः ऐसेही ऐरेगैरे हुआ करते हैं। जिन्होंने व्याकरण को हाथ से छुआ तक नहीं और साहित्य की एक पुस्तक भी नहीं देखी और वे न जानते ही हैं कि शुद्ध और अशुद्ध हिन्दी कौन है, पर अपने को दिग्गज लिख्खाड़ समझकर कागज और स्याही का नाश करने तथा उपन्यासों में दोष भरने पर उतारू हो गये । इन्हीं कारणों से जोही चाहता है वही उपन्यास में दोष दिखला देता है । नहींतो क्या उपन्यास ऐसा दूषण पात्र होता ? कदापि नहीं ।

(३)इस पुस्तकमें बहुतसी अशुद्धियां है उनमेंसे थोड़ीसी लिखता हूं—

पृष्ठ ८—"खजुर के कोठरी ने"

" १७—"यही सौंदली मुझे रातदिन व्यथित किये रहती है"
" १७—"बहू के दुःख यातना का वर्णन करसकू"
" १८—"द्रौपदी के चीर खेंचने की दशा"
" १९—"उसने घात लगाया"
" २१—"नीन्द के फरांटे चलने लगी"

पाठक स्वयं देखलें कि उपर्युक्त वाक्यों के रेखाङ्कितस्थलों में लिङ्ग की कैसी अशुद्धियां हैं। वचन और पुरुष की अशुद्धियां भी कम नहीं हैं। उनका उल्लेख भी नीचे कर देता हूं। रेखाङ्कित शब्दों पर ध्यान दीजिये।

पृष्ठ ८—"मैने बड़ी भारी मूर्खता की जो स्त्री के भुलावे में आगये"
" १४—"थोड़े दिन हुआ"
" १५—"आप खूब कहती हो"
" १९—"आप धर्म की माता हो"

'न' का प्रयोग जैसी अयोग्य रीतिसे हुआ है वह निम्न-लिखित वाक्यके अवलोकन मात्रसे निर्धारित होजायगा—

पृष्ठ ५—"उपाय भी न लग सकता था"

अपूर्णभूत में 'न' का प्रयोग होना नहीं चाहिये।

मैं लोगों के मुंह से बहुधा सुनाकरताथा कि बिहार के लोग 'ने' का प्रयोग ठीक नहीं करते हैं किन्तु अब तो इसमें परिवर्तन देखता हूं। बिहार वालों ने इस भूल को क्रमशः सुधारलिया और दूसरे प्रान्त वाले भूलते जाते हैं। इस पुस्तक के बहुतेरे वाक्य तो 'ने' के अभाव से भ्रष्ट होगये हैं। उदाहरण के लिये कुछ वाक्य नीचे उद्धृत करता हूं—

पृष्ठ ७—"भगवती प्रसाद उठकर बहू का हाथ पकड़ कर

कोठरी में बन्द करदिये।" 'ने' ही के नहीं रहने से इसकी क्रियाभी अशुद्ध होगई है। शुद्धरूपयों होगा। "भगवतीप्रसाद ने उठकर... ... ..बन्द करदिया"

" ११-"बहू का काम वाण उनको संसार के सब कार्यों से वञ्चित करदिया है" इसका शुद्ध उल्लेख यों होगा। बहू के काम बाण ने . ... दिया है"

" १२-"बाबू जी बड़े चाव के साथ शीघ्र बुलाया है"

" १३-"बाबू साहेब देखते ही बड़े सन्मान से अपने पास बैठाया"

" २३-" पुत्र उन्हें पाप का फल दिखाने के हेतु, जिलाधीश के समक्ष नालिश की"

उपर्युक्त तीनों वाक्योंमे 'ने' नहीं है।

पाठक! यदि और कुछ देखने की इच्छा हो तो कुछ इधर ध्यान दीजिये और विचारिये कि कैसी विलक्षण रचना है—

पृष्ठ १२-"बाबूजी मुझे रंज होने लगेंगे" यहां 'मुझ से रंज होने लगेंगे' चाहिये।

" १६-"यह क्या मेरे से बाहर है" 'मेरे से' की जगह 'मुझसे' होना चाहिये।

" १८-"धीर खेंचने की दशा से पटतर देऊं" 'पटतर' शब्द ठीक नहीं है। इसे ग्रामीण स्त्रियां बोलती हैं। 'देऊं' शब्द भी अशुद्ध है। 'दूं' लिखना चाहिये।

पृष्ठ ९—"करामात देख अवाक़ हो गये" मैं नहीं जानता कि 'अवाक़' कहां का शब्द है? कदाच 'अवाक्य' का अपभ्रंश हो।

" ८-" पुरोहितजी और बहू क्या कर रहे हैं" क्रिया 'कर

रही हैं' चाहिये, क्योंकि क्रिया का लिङ्ग पिछले कर्ता के अनुसार होता है।

,, ९—"पसार हुआ रहा है" यह क्रिया तो विचित्र ही है। "पसार होरहा है" का बिगाड़ जान पड़ता है।

,, ,,—"ढेर सत्यानाश जाय" 'सत्यानाश' ब्रजभाषा का शब्द है यदि हिन्दी में लिखना भी था तो 'सत्यानाश हो जाय' लिखना उचित था।

,, १६—"अपनी मजदूरी लेलो फिर जाय,, "दो रुपये ले लो फिर जाय" इन दोनों वाक्यों में 'लेकर फिर जाय, लिखना अच्छा होता।

,, ,,—"तुम को मेरे साथ कहां तक चलने को कहा है या अर्थमाने ही ले?" पाठक! देखिये ऐसे अपूर्ण वाक्य भी लिखे जाते हैं!

,, १४—"मूर्खता बदनामी दोनों ही" 'मूर्खता' के आगे 'और' शब्द का होना चाहता था।

,, १५—"चाप इच्छा की सिद्ध हेतु उपाय सोचने लगे"

,, ,,—"बाजार में आ कहारों को बयाना दे घर लाये" इन वाक्यों में विभक्तियों का लोप करना युक्ति संगत नहीं है।

अप्रयुक्तता दोष तो इस ग्रन्थ में ऐसे भरे हुये हैं कि यदि सब का उल्लेख किया जाय तो व्यर्थ लेख बढ़ जायगा इस का उदाहरण भी थोड़ा देदेता हूं—

पृष्ठ १४—"व्याही रही" पृ० १७–१८ "जाता रहा"

"१९—"सठाइ करी

,, ४—"मन पानीपानी हो रहा है" यह मुहावरा ठीक नहीं है।

पृ०१५—" डबडबाई हुई रश्मियाणायों को " 'डबडबाने' का मुहावरा 'आंख' के साथ होता है 'रश्मि' के साथ नहीं।

,, १२—" जूता ठरठराते" 'जूता चटखाना' मुहावरा है।

,, ,,—"शीघ्र पगड़ी दे" नहीं मालूम पुरोहित पगड़ी मांगते हैं अथवा किसी को देते हैं? यदि पगड़ी बान्धने से अभिप्राय हो तो यह मुहावरा अशुद्ध है।

,, २१—"नीन्द के फरोटे" नीन्द का 'खर्राटा' होता है 'फर्रा टा' नहीं।

इस पुस्तक की वाक्ययोजना भी विचित्र ढंग की है। बहुत स्थलों में आशय ही नहीं प्रकट होता। उदाहरण के लिये दो एक वाक्य भी उद्धृत करता हूं।

पृ०६—"आंसू बहते देख मुझे बड़ा दुःख हुआ और रात भर मुझे नीन्द नहीं आई है" उपर्युक्त वाक्यों में पहली क्रिया सामान्यभूत होनी चाहिये और दूसरी आसन्न भूत। क्योंकि पहले दुःख हुआ तदनन्तर नीन्द नहीं आई।

,, १४—" खुशी से बहू फूले नहीं समाती थी अपनी तय्यारी चलने की कर रही थी बीच बीच में यह सोचकर मग्न हो जाती है कि चल कर माता पिता आदि से मिल कर अपनी छाती ठंडी करूं।"

इस एक वाक्य में कितने काल इकट्ठे हुये हैं। कवियों की रीति है कि परोक्ष से वर्णन करते २ ऐसा लिखते हैं मानो प्रत्यक्ष देख रहे हों और यह उन में एक भूषण समझा जाता है। परन्तु यहां तो भूषण के बदले दूषण हो गया है।

पृष्ठ ८—"पुरोहितजी और बहू क्या कर रहे हैं बहू श्वशुर के कोठरी में बन्द करने और पुरोहित की पाप इच्छा

जान अपने धर्म रक्षा के हेतु सिवाय परमेश्वर के किसी को न देखा ”

यह वाक्य योजना कैसी निराली है । इस को मैं पाठकों ही के लिये छोड़ देता हूं कि वे भी विचार करें और समझें कि इस का आशय क्या है ?

(४)जो पाठक किसी प्रकार उपन्यास पढ़े बिना नहीं रह सकते वे इस को क्रय कर सकते हैं ।

आरा चौक कृष्णजी सहाय
२६—८—०३ मन्त्री प्रबन्धकारिणीसभा

प्रेरित पत्र ।

खुली चिट्ठी—राजपूत महासभा और राजपूतपत्र के नाम अखण्डैश्वर्य भूयात्—

यद्यपि हम ब्राह्मणों को स्वार्थी कहने में संसार की सब जातियां कम्पिटीशन कर रही हैं, तथापि आप लोग जानते हैं कि हमारी सी निःस्वार्थ, नहीं नही, स्वार्थद्विट् जाति ससार में कोई नहीं है । और जगह तो aristocracy of talent विद्वानों की रईसी स्थापन करके पण्डित लोग सब से अधिक शक्ति और आराम के हकदार बनते हैं, किन्तु हमारा वेद जानना और महत्व इसी में समाप्त होता है कि संन्यासी हो जाय वा घासपात खांय, किन्तु जगत् को अपने ज्ञानभाण्डार का वारिस बनाए । श्राद्ध में सब लोग पितरों से मांगते हैं कि हम किसी से भीख न मागें, किन्तु हमने वह घृणित पेशा उदारता से अपने ऊपर ओढ़ लिया है । स्वार्थ से नहीं, किन्तु इस बुद्धि से कि ससार

से कम से कम वेतन लेकर उसे अधिक से अधिक माल दें। जगत् में जो कुछ ज्ञानभाण्डार है वह हमारा ही दिया है। अब भी इस बुझी हुई ब्राह्मणाग्नि में से वह चिनगारियां निकल कर देशोपकार कर रही है जो और जातियों से सात जन्म में भी न हो।

किन्तु हमारा यह महत्व क्षत्रियों के भरोसे है। समझ है कि खूटे के बल बछड़ा नाचे। हमारी छोटी बेटी रोटी लंगोटी के बचाने वाले आप हैं, और हमारा आप का सदा से सद्भाव रहा है। आप के राजर्षि जनक को हमने तारतम्य से जात बाहर नहीं किया किन्तु उन से ज्ञानोपदेश लिया। आप के भीष्म को हमने पितामह माना और आप के बड़ों को हमने अवतार मान कर पूजा और पुजाया। आपने भी धर्मसङ्कट से हमारी सहायता की है। आपके अर्जुन ने दीन ब्राह्मण की कुटी की रक्षाके लिए १२ वर्ष का वनवास सहा और भगवान् रामचन्द्र ब्राह्मण कुमार की अकाल मृत्यु के बचाने के लिये स्वयं तपस्वी को मार आये थे। आप के कोदण्ड के भरोसे हमारा वैणव दण्ड है, आप के तरकस के भरोसे हमारे वेद हैं, और आप के अभय के भरोसे हमारी वाकसिद्धि है। "विद्या ह वै ब्राह्मणमाजगाम गोपाय मा शेवधिष्टेहमस्मि" किन्तु हमने वह प्रसाद सब को बांट दिया है। यद्यपि आप में से कई सज्जन धर्मभ्रष्ट हो गए हैं तथापि हम उन अन्नदाताओं को देखकर भी यही कहते हैं कि—

यही आस अटक्यो रहै अलि गुलाब के मूल।
ह्वैहै बहुरि बसन्त पुनि इन डारन के फूल ॥

किन्तु धर्मावतार! स्वार्थान्धप्रकाशिका नामक भ्रष्ट

पुस्तक ने हमें बेतहाशा गालियां दी है, और आप के गुरुओं को हजारों पदों से भूषित किया है। कुछ लोग कहते है कि यह ग्रन्थ राजपूत महासभा ने बटवाया है, एक राजा ने छपवाया है। क्यों? क्या आप मरों को मारने की बहादुरी लेते है? अपनी गौवोंपर ※※※? स्मरण रहे, ब्राह्मणों को जो आपने दिया है, वह अति तुच्छ है, उसे ब्राह्मण तैत्तिरीय महिला की भांति आज ही फेंक सकते है, किन्तु ब्राह्मणों ने आप को जो दिया है उसी केवल आप आप है, और उस से आप अलग नही हो सकते जब तक कि आप (मनुष्य जाति) मनुष्यत्व से इस्तीफा न दें। आप का जनेऊ, आप की वर्णमाला, आप के वेद सब हमारे दिये हैं। हमारी बपौती का हिस्सा तो ले चुके हैं, और अब हमें गालियां दिवाते है?

किन्तु नहीं, धर्मावतार! यह सब झूंठ है। आप का उस ग्रन्थ से सम्बन्ध नही है। हमारी जाति तो ऐसी आत्मविस्मृत हो गई है कि एक रुपये के लिए उसी पुस्तक पर संमति करती है और गालियां और धक्के खाती है। किन्तु इतने क्षत्रियों के जीते जागते उन के गुरु ब्राह्मण यों गालियां खाय, यह क्या आप की मूछों को शोभा देता है। आप का कुठार आज कल हिन्दी साहित्य पर चल रहा है, आप अपने कई बड़े आदमियों की निन्दा के ग्रन्थ उलवा चुके हैं, कृपा करके अपने गुरुओं के, अपने गुरुपुत्रों के इस निन्दा ग्रन्थ को भी जलवादे, बहा दें, मिटा दे। संसार जाने तो कि क्षत्रिय अब भी गो ब्राह्मण की रक्षा के लिए जीभ हिला सकते हैं, अब भी उन में पुराना क्षत्रियत्व शेष है। इस कलङ्क कथा का नाश करना क्षत्रियों

का मर्म है वही इस ग्रंथ पर जो उचित समझें सो करें नहीं तो, हम ब्राह्मणों का तो कौल ही है "कज्जो नौ छिरय पतन्तु विपद्स्ताता कृत स्वागतम्" जय श्रीकृष्ण !

आशीर्वादक—

एक बी. ए. ब्राह्मण

कृपा करके सब समाचार पत्र इस ब्राह्मणों की गुहार की नकल करें।

सोऽहम् ।

(गताङ्क १ पृष्ठ २३ से आगे

यों ही सकल मानव सृष्टिकर्त्ता के सम्बन्ध में यह बात कही जा सकती है । एवं इस कथा का अर्थ यह है कि जो कौनसी सृष्टि वा रचना करता है उसमें उसका निज कुछ या कुछ निजत्व रहता ही रहता है । जिस परिमाण में यह निज का कुछ या कुछ निजत्व है, कम से कम उसी परिमाण में मानवसृष्टा और मानवसृष्टि के विषय में कहा जा सकता है कि दोनों एक ही पदार्थ हैं; और मानवसृष्टि वा मानवसृष्टपदार्थ मानवसृष्टा को लक्ष्य करके कह सकते हैं कि सोऽहम् । शेक्सपीयर का हैमलेट यदि काल्पनिक सृष्टि न होकर हमारा तुम्हारा या सजीव वा सचेतन सृष्टि होता तो तुम हम जैसे ब्रह्म को लक्ष्य करके कह सकते हैं—"सोऽहम्" । वैसे वह भी शेक्सपीयर को लक्ष्य करके कह सकता था—सोऽहम् । कार्य से कारण भिन्न होने पर भी कार्य कारण में रहेगा ही । कृष्टानधर्मावलम्बी यूरोपीय दार्शनिकों ने भी इस बात को स्वीकार किया है । अतएव सृष्टि में सृष्टिकर्त्ता अवश्य है—सृष्टि से सृष्टिकर्त्ता सम्पूर्णरू-

पेग पृथक् हो नहीं सकता । सृष्टिकर्त्ता को कम से कम सृष्टि-का आंशिक उपादान तो करना ही होगा । अन्ततः उसी अंश के सम्बन्ध से सृष्ट पदार्थ सृष्टिकर्त्ता को लक्ष्य करके कह सकता है—सोऽहम् । कहने मे कोई दोष नहीं, कहना ही कर्त्तव्य है । न कहने से सृष्टिकर्त्ता के अस्तित्व का अस्वीकार करना हुआ । एवं सृष्टिकर्त्ता के अस्तित्व के अस्वीकार ही का नाम नास्तिकता है । अतएव कृस्तान प्रभृति द्वैतवादियों के मतानुसार भी ब्रह्म से ब्रह्माण्ड पृथक् नहीं है । सृष्टिकर्त्ता से सृष्टि पृथक् नहीं है । इस मतके अनुसार भी अस्तित्व एकही है, दो नहीं, वस्तु एकही है, दो नहीं । दार्शनिकश्रेष्ठ फेरियर ने कहा है * The only absolute existence is an eternal mind in permanent synthesis with matter अर्थात् जड़ प्रकृति के साथ अच्छेद्यभाव से संयुक्त एक ही अनन्त चैतन्य की वास्तव सत्ता है और कुछ भी नहीं है । अतएव सृष्टि से सृष्टिकर्त्ता को भिन्न कहने पर भी, और भिन्न कहकर विवेचना करके युक्ति सिद्ध होने पर यह अवश्य स्वीकार करते हैं कि सृष्टि में जो कुछ है सो सृष्टिकर्त्ता की ओर लक्ष्य करके कह सकता है—सोऽहम् । अतएव विकाशवाद और सृष्टिवाद-दोनो ही पक्षों में सृष्टि और सृष्टिकर्त्ता का एकत्व निश्चित हुआ ।

यहां एक गुरुतर मीमांसा आवश्यक होती है । जो कृस्तान प्रभृति की तरह द्वैतवादी हैं वे कह सकते हैं कि ब्रह्माण्ड मे जो भले बुरे नानाविध द्रव्य देखे जाते हैं तो कैसे सब ब्रह्माण्ड को ब्रह्म कहें, कैसे तिक्त और मधुर को एक कहें, सुगन्ध और दुर्गन्ध को एक कहें, दया और निर्दयता को एक कहें ? (क्रमशः)

* फेरियर—"इन्स्टिट्यूट आफ मेटाफिजिक" नामक ग्रन्थ देखो ।

जातीय-साहित्यालोचना की आवश्यकता।

गताङ्क पृष्ठ २६ से आगे

विरचित होता है। समाज का वद्धन और आकांक्षा, प्रवृत्ति और निवृत्ति, आशा और प्रेम, नीति और प्रेम यह सब ही साहित्य का उपादान है। साहित्य के उक्त सर्वव्यापी सार्वभौमिक लक्षण न्यारे २ देश और समाज मे स्वतन्त्र आकार मे प्रकटित होते है। उन्हीं से जातीय साहित्य का उद्भव होता है। शब्दो का अभाव, अलङ्कारो का प्रभेद, पुरातत्व का वैषम्य, प्रवाद आदि में एकता न होने से भिन्न २ देश की रचना प्रणाली मे बड़ा ही पार्थक्य देखा जाता है। कल्पना का विकाश भी भिन्न भिन्न देशो में भिन्न भिन्न प्रकार से होता है। हमारा देश यूरोप नही है, हमारे देश के जल वायु और ऋतुओ का वैचित्र्य होना, हमारे लतापता, गिरिपर्वत, नदनदी, हमारे पशुपक्षी, हमारे कीटपतङ्ग, सर्वोपरि हमारे बालकबालिका, हमारे युवकयुवति, हमारे वृद्धवृद्धा, हमारा घरबाहर, आहारविहार, आचारनीति, धर्म कुछ भी तो विलायत का सा नही है। और यही सब कल्पना की लीलाभूमि है, इन सब अवलम्बनो पर ही कल्पना की स्फूर्त्ति है। जो सब गुण साहित्य मे रहते है, उन के विकाश का क्षेत्र ज्योंही भिन्न होगा, त्योंही साहित्य का आकार भी जातिभेद से भिन्न होगा॥

जातीयसाहित्य की इस प्रकृति को भूल कर हम अंग्रेजी और संस्कृत साहित्य के अतुल विभव को देख कर सोचते है, ज्ञानरत्नो के इन सकल महासमुद्रों के रहते बङ्गला के बङ्गोपसागर में वा मराठी के अरब समुद्र मे गोता

मारना ठीक भी है, किन्तु हिन्दी साहित्य की तलैया में कैसे गोता मारा जाय? किन्तु हम को जानना उचित है कि जगत् में नाना प्रकार के खाद्य पदार्थों के रहते भी हमारे देहपोषण के लिये जिन को, संग्रह करके अन्न व्यञ्जन प्रस्तुत करके, हम खाके पचाते हैं वही हमारे काम आते हैं, वैसे ही इन सकल ज्ञानभाण्डार मे जो कुछ शिक्षणीय विषय है, वह हमारे जातीय, निज साहित्य के रूप पाकपात्र मे सुसिद्ध होकर ही हमारे जातीयजीवन के रसरक्त मे परिणत होगा। चाहे किसी ज्ञानभाण्डार से ज्ञान सङ्कलन किया जाय, उस में से जो हमारी प्रकृति का उपयोगी है वही हमारे साहित्य में स्थान पासकता है।

एक ही भूमि खण्ड पर नाना प्रकार के वृक्ष रहते हैं। किन्तु सब ही अपने अपने पोषणोपयोगी रस वा आहार का संग्रह करके अपने कलेवर का गठन करते हैं। जितना चाहो, उतना भले ही पेट में भर लो, किन्तु जातीयजीवन गठन के लिये जितना आवश्यक है उस के सिवाय तुम हज़म ही नही कर सकते। जिन्होने अंग्रेजी साहित्य का इतिहास पढा है वे इस बात की सत्यता की गवाही दे सकते हैं। उन को मालूम होगा कि जिस समय अंग्रेजो की मतिगति प्रकृति जैसी रही, उन के साहित्य ने भी उस समय में उसी का अनुसरण किया है। प्रकृत बात यह है कि लेखक जिस एक वा उस से अधिक भाव में शराबोर होकर लिखता है, तो उन भावों से खाली उस का ही मन खिल रहा है यह नहीं; किन्तु वह भाव वा भावसमष्टि सारे समाज की नसनस मे अनुप्रविष्ट है।

(क्रमशः)

विज्ञापन

पं० महावीरप्रसाद द्विवेदी को कौन नहीं जानता ? वह हिन्दी के बड़े भारी कवि हैं। उन की कविता मे जो शब्द का, अलङ्कार का वा भाव का निभाव होता है वह और जगह मिलना मुश्किल है। उनके कोई ३० काव्यों का संग्रह हमने "काव्यमञ्जूषा" नाम से छपाया है। टाइप, कागज सब कुछ बहुत बढ़िया है। कविता के प्रेमियों को ऐसा मौका बहुत विरला मिलता है जब वे अच्छे कवि की अच्छी कविता का अच्छा संग्रह पा सके। अब उन को मौका है, उन्हें अपनी २ रुचि के अनुसार बहुत बढिया कविताए मिल सकती है। उन्हे चूकना नही चाहिए और झटपट ॥) भेजकर एक प्रति खरीद लेनी चाहिए।

पुस्तक मिलने का पता—

मेसर्स जैन वैद्य एण्ड को

जौहरी बाजार जयपुर

समालोचक का प्रथम भाग, अर्थात् प्रथम वर्ष की फाइल बहुत बढिया लेखों से सजी प्रायः ३०० पृष्ठों की है। मूल्य १॥) जल्दी मगाइए, कापिया बहुत थोडी रह गई है।

मैनेजर

समालोचक के लिए अच्छे और स्वीकृत लेखो के लिए समालोचक बिना मूल्य भेंट दिया जायगा। लेख चाहिए

मैनेजर

सूचना

अङ्क तीसरा वी पी. से भेजा जायगा।

Registered No. J 25

विशिष्ट दीपावली संख्या

समालोचक

मासिक पत्र

नीरक्षीरविवेके हंसाऽऽलस्य त्वमेव तनुषे चेत् ।
विश्वस्मिन्नधुनाऽन्य कुलव्रत पालयिष्यति क ॥

(भामिनीविलास)

भाग २ अक्टूबर, नवम्बर १९०३ अङ्क १५, १६

कुछ सम्मतियां

"××× हम बहुत प्रसन्न हुए ××× टिप्पणियां अच्छी हैं" (भारतमित्र)

अबकी वार आपने कोई अच्छा पराक्रमी पुरुष ढूंढा है। (पं० महावीरप्रसाद द्विवेदी)

"×× कौतूहलप्रिय, मर्मज्ञ, विद्वान्, सम्पादक××" (पण्डित माधवप्रसाद मिश्र)

प्रोप्राइटर और प्रकाशक
श्री० मि० जैनवैद्य जौहरी बाज़ार जयपुर

V P A

विषयसूची ।

आगामि संख्याओं के लिए उपक्रान्त लेख ।

१ व्यय
२ गुजराती साहित्य की वर्त्तमान दशा
३ चैम्बरलेन की पालिसी (अर्थशास्त्रसम्बन्धी लेख)
४ खड़ी बोली पद्य का आन्दोलन
५ मृच्छकटिक नाटक (गवेषणा)
६ हिन्दीव्याकरणसम्बन्धी कुछ लेख
७ कविता, समालोचना, प्रभृति
८ विक्रमोर्वशी की कथा का आदि ।

" ग्राहक मूल्य भेजना न भूलें "

* समालोचक । *

भाग २] अक्टूबर, नवम्बर १९०३ [अङ्क १५, १६

मारवाड़ी एसोसिएशन और चेम्बर आफ कामर्स को निवेदन

दोहा

एसोसिएशन नाम को, मारवाड़ जनधार ॥
कामर्स के चेम्बर बने, करने देश सुधार ॥ १ ॥
विचित्र सुन के नाम यह, अचरज हुआ अपार ॥
क्या भाषा अपनी बची, शब्द शेष निःसार ? ॥ २ ॥
खाली ले के नाम को, बने हमारे लोग ॥
क्या अंग्रेज सुहावने, करने कौन सजोग ॥ ३ ॥
क्या कीनो हित देश को, अथवा जाति सुधार ॥
धार विदेशी नाम को, क्या पायो आधार ? ॥ ४ ॥
विद्या सीखी ना गयो, मोह बन्यो अज्ञान ॥
राह रीत सुधरी नहीं, गाली गीत मचान ॥ ५ ॥
स्त्री समाज मुख से बके नीच शब्द अनीत ॥
शोभा क्या इन में रहे, होवे जग दुःशील ॥ ६ ॥
स्त्री को शिक्षण क्या दियो, क्या कीनो उपकार ? ॥
कितनी बैठी हाट में, छिपा छोड़ घर बार ? ॥ ७ ॥
क्या कीनो परदेश में, जाकर निज व्यौपार ? ॥

क्या बढ़ाय निज धर्म को, कीनो पुण्य प्रचार ?॥ ८॥
कैसर विलास हाथ मे, ले देखो क्षण एक॥
क्या है चित्र समाज को, राखो अपनी टेक ॥ ९॥
ले अंग्रेजी नाम को, साहब बनो न आज॥
उन सम उद्यम आनके, करिये सुखी समाज॥ १०॥

श्लोक।

कीनो कम्युनिटी भलो न, युनिटी कीनी न रे लेक्चर,
खोला ना गृह आर्फनेज, विधवा पाली न की दुश्वर॥
धारयो नाम असोसियेशन, बने कामर्स के चेम्बर,
त्यागे वस्त्र विलायती न, पहरे देशी कभी अम्बर॥११॥
ना कामर्स किया युरोपियन सा, खोली कहां कम्पनी,
खाली चेम्बर खोल नाम धर के कीनी हसी आपनी॥
,ना शीखा"यस, नो"विना, अधिक वा स्त्री को दिया शिक्षण,
लेके नाम वृथा रिफार्मर बने, त्यागे न दुर्लक्षण॥ १२॥
कन्या पुत्र विवाह की न सुधरी रीति, स्वकीयोन्नति,
हो के न प्रमदा प्रचार सुधरे, ना धर्म मे सन्नति॥
गाना बद हुआ न शुद्ध कुल में वे गीत अश्लील वा,
खाली नाम असोसिएशन किया, श्रद्धा बढ़ी ना लवा॥१३॥
यात्रा लडन की अभीष्ट बनने क्या योग्य ब्यारिस्टर ?
क्या बाबू बनने उतार पगडी ? होके सदा मिस्टर॥
लेडी का कर हाथ में पकड के वाकिग् तुम्हें इष्ट है,
छोड़ो ये उनके प्रचार कृति को लेओ यही इष्ट है॥ १४॥
जैसा साहस नाम धार तुमने प्यारे! किया है यहां,
वैसे शीघ्र दिखाइये स्वकृति को होके यशस्वी यहां।

कैसा है अपना समाज पतित प्रत्यक्ष देखो जरा,
दुःखग्रस्त हुआ कुरीति पथ से छाई सभी में जरा ॥१५॥
प्रभुवर ! यह मेरी प्रार्थना हाथ जोड़,
सुधर सुजनों की मूढ़ता शीघ्र तोड़ ।
प्रवर कर उन्हीं का वश विद्या विचार,
युवति जन सदा हो श्रेष्ठ रीति प्रचार ॥ १६ ॥

सहू छा० } शिवचन्द्र बलदेव भरतिया
२०-६-०३ }

---

* कुछ वाक्य *

भाई मेरे, बक बक और हल्ला, क्षणस्थायी, मूर्खता से भरा हुआ, झूठा ही है। सच्चा काम ही, जिसे तू ईमानदारी से करता है, सदा रहता है, जैसे कि सर्वशक्तिमान् जगत् का बनाने वाला। तू सदा काम के साथ खड़ा रह, प्रशंसा वगैरह को बक बक करने दे।

कार्लाइल

सुदर्शन की सुदृष्टि ।

ज्ञानिनामपि चेतांसि देवी भगवती हि सा ।
बलादाकृष्य मोहाय महामाया प्रयच्छति ॥
(दुर्गापाठ)

तो क्या गद्यकाव्य के विषय मे अनिष्णात आरम्भकर्त्ताओ की ही सब नकल करते जाय ?
(गद्यकाव्यमीमांसा पृष्ठ १६)

सुदर्शन की सुदृष्टि अब उपन्यासों पर हुई है । उसकी तीन सख्याओं में उपन्यासों की प्रतिष्ठा पर लेखक की आस्था की अवस्था अच्छी तरह दिखाई गई है । यह तो कोई बात नहीं कि प० माधवप्रसाद ने किसी बात की हिमायत करदी तो फिर उसकी न्याय्यता में सन्देह भी न करना * । तथापि, जब से यह विषय छिड़ा है सुदर्शन और श्रीवेङ्कटेश्वर समाचार अपने मतो को बहुत कुछ सुधारते सुधारते एक दूसरे के पास ले आए है, यहां तक कि अब उनका मिलना बहुत ही सुकर है । सम्भव है कि सुदर्शन से बात चीत करना हमारे ही पत्र का मानवर्धक हो, इस लिये, "मित्रं स्पष्टतया वदेत्" के अनुसार हम कुछ बाते कह देते है ।

(१) "हमारी समझ में यह बात सर्वाङ्ग पूर्ण न होने पर भी निर्मूल नही कही जा सकती ", कि अपनी पुस्तकों

---

* ए अभिमानी मुरलिया ! करी सुहागिन श्याम ।
अगी चलाये सबनपै भले चाम के दाम ॥

के न बिकने से समालोचक काशी के उपन्यासों की निन्दा करते हैं। अथ समालोचकः सुहृद्भूत्वाह—क्यों जी! तो वे तुलसीकृत रामायण की निन्दा क्यों नही करते जो काशी के उपन्यासों से कई गुने अधिक बिकती है और जिसे छाप कर कोई प्रेस भूखा न रहा? "काशी वालो की पुस्तकों की ओर लोग ऐसे टूटे कि हाथों हाथ सब प्रतिया उठ जाय" इसके मोटी बुद्धि से यही कारण हो सकते है—(१) काशी वालों से अच्छा लेखक और कोई नही (२) काशी वाले उपन्यासो से अच्छे उपन्यास ही नही (३) लोगो की रुचि कलुषित है। पहले दो कारण व्याप्तिग्रस्त है, यह तो वह भी कह सकता है जो हिन्दीसाहित्य में चार दिन का भी निष्णात हो इससे कारण ३ शेष रहता है इसी लिये समालोचना का जन्म है। विशेष समय पर विशेष व्यक्ति लक्ष्यच्युत हो जाय तो दूसरी बात है।

(२) हिन्दूधर्म पर व्याख्यान देने वालों से तुलना (वैशाख, पृष्ठ २६) इसके क्या माने? साहब! मूर्ख धर्मोपदेशकों की जो अन्धाधुन्ध स्तुति की जाती है, क्या वैसे ही मूर्ख उपन्यासकारो की भी अन्धाधुन्ध स्तुति की जाय? उस धूम धडक्के का परिणाम न सोचे? सहयोगी का यह खयाल होगा कि उसने ऐसे वक्ताओं को पूरण वालो से एक वेर उपमा दी है तो भद्दे उपन्यासो की भी वही निन्दा करे और पत्र, जो उपदेशकों की स्तुति करते है, क्यो निन्दा करे? तो हम सुदर्शन को बधाई देते हैं कि उसे converts मिले। धर्मोपदेश, अयोग्यमुख से निकलने पर भी लाभ

पहुंचाता है, उपन्यास सुयोग्य विद्वान् से लिखा जाने पर भी विलासमात्र ही है ।

(३) एयारी वाले उपन्यासों के पहले आपके भण्डार में कौन से उपन्यास थे ? मान लीजिये कोई नहीं, तो फिर गद्यकाव्य मीमांसा का ऊपर लिखा टुकड़ा पढ़िए ।

(४) असम्भव का अर्थ—साधारण दृष्टि से जो बात सम्भव न दिखाई दे, उसे असम्भव मानना होता है। विज्ञान के प्रचार के पूर्व जल को एक समूचा द्रव्य माना जाता था, किन्तु जब अन्वेषणा ने उसे उद्जान और क्षारजान का फल सिद्ध कर दिया, तो "असम्भव" "सम्भव" होगया। सम्भव असम्भव की कल्पना सापेक्ष है सही, निरपेक्ष absolute नहीं हो सकती तथापि इस सापेक्ष जगत् से हम जिस प्रकार मात्रास्पर्श द्वन्द्वों के भेद को मिटा नहीं सकते, वैसे ही स-म्भव असम्भव के भेद को भी नहीं मिटा सकते । यदि अ-सम्भव शशशृङ्ग बन्ध्यापुत्र प्रभृति तीन ही चार अर्थों से रूढ़ हो तो हमने (८) में जो बात लिखी है वह प० मिश्र के लक्षण से मिलने के कारण सम्भव है । अशशशृङ्ग अबन्ध्या-पुत्र वा अकारण कार्य क्या सभी सम्भव है ? क्या सम्भव(२) असम्भव(१) में जो सम्बन्ध है, वही बन्ध्यापुत्र अबन्ध्यापुत्र में है ? विभाज्यतावच्छेदक तो परस्पर व्याधिकरण होने चा-हियें, सम्भव है कि अबन्ध्यापुत्र भी कोई पदार्थ असम्भव हो । चन्द्रकान्ता वेदान्तियों के पढ़ने के लिये नहीं बनी है, बनी है युष्मदस्मद् भेद को न मिटासकने वाले अध्यासलिप्तों के लिए। इसी लिए उनकी दृष्टि से सम्भव असम्भव का भेद

नहीं मिट सकता । कृपा करके कोई हमें बतलावै कि छोटे आदमी का बडा बनना और लम्बे का ठिगना बनना शशविषाण सदृश है वा नही ?

(५ (६)(७)कादम्बरी,मैकवैथ और मेरी प्राइस या फौष्ट।

स्मरण रहै, जगत के सब व्यवहारो मे कोई न कोई बात ऐसी रह जाती है जिसको हम विना दैवी प्रभाव माने समझ नहीं सकते। कोई घटना साधारण पङ्क्तियो पर चली जा रही है अचानक घटना क्रम का वदल जाना वा रुक जाना और तद्द्वारा अच्छे या बुरे फल का उत्पन्न होना, यह जगत में विरला नही है। निरीश्वरवादी इसे प्रकृति की खिलवाड़ मानते है और ईश्वरवादी इसे परमेश्वर की निर्णायकशक्ति वा design का परिचय मानते है। यदि नाटक और उपन्यास mirror of nature प्रकृति के आईने का काम देते है तो उनमें अवश्य प्रधानतया मानुष भावों का चित्रण आवश्यक हुआ। किन्तु मानुष भावो में presentiment, telepathy, पूर्वनिश्चय भाव सवाद प्रभृति होते हैं । किसी मनुष्य की प्रेयसी मरती है उसी काल मे अज्ञात कारणोसे उसको दुःख उत्पन्न हुआ। किसी काम मे विघ्न होना है उसमे पपले ही से अनुत्साह जो विराजमान है । इन घटनाओ का क्या किया जाय ? इन्हे दिखाने के लिए नाटकोमे divine machinery वा *Dieux et* machina दैवीकलाप्रविष्टकी जातीहै जो dramatic unity नाटकीय एकता के विरुद्ध नही होती। कादम्बरी में जो नायिकाका तीन जन्मतक जीवित रहना है वह उपन्यास के परिणाम के लिये आवश्यक है, वह उपन्यास के चरमवर्णो मे अनुस्यूत है उसे पृथक् करने से कई बातो की जान कारी

जायगी बेशक, किन्तु उसे अलगभी कर सकते हैं। मैकवैथ में यह आवश्यक है कि मैकवैथ को उसके भावी जीवन की सूचना मिलजाय, और उसकी मानसिक अशान्ति का बीज बापहो। साथही साथ उसके हाथसे नृशंस कर्म भी कराए जाय। यह सूचना और आगे चलकर उसका धोखा खाना नाटक के निभाने के लिए आवश्यक है। उसे चाहे भूतनियां करैं वा आकाश वाणी करै, किन्तु यह ग्रन्थ से निकाली भी जा-सकती है। मेरीप्राइस में न मालूम स्वप्नविचार कहा कहा गया है, किन्तु यदि हमे छै वर्ष की बात याद हो तो वह वहा है जहा मेरीप्राइस की स्वामिनी का कहीं विवाह होने वाला है और मेरीप्राइस अपने वाग्दत्त की चिट्ठी से स्वा-मिनी के पति के मुमूर्षु होकर बचने की बात जतलाती है और स्वामिनी के विवाहान्तर से भांजी मारती है। वहा भी उसकी dramatic necessity है। लेखक और पाठक घबरा रहे होगे कि इस काकदन्तगणना से हम क्या फल निकालेंगे. किन्तु हमारा अभिप्राय सिद्ध होगया। इन सब ग्रन्थो मे असम्भवघटना गौणरूप से प्रवेश की गई है, उसे निकाल दें तो ग्रन्थ के एक वा दो अङ्को के अतिरिक्त और सब को कोई क्षति नही पहुंचती। चन्द्रकान्ता में से तो ज़रा ऐया-री को निकाल दीजिए, क्या रहता है? सूखी खाल और हड्डियां और देवकीनन्दन जी की भद्दी भाषा! यदि शब्दों के मज़ाक़ को क्षमा किया जाय तो, हम कह सकते है कि इन उपन्यासों से विचित्रघटना कथा की सहायता करती है किन्तु चन्द्रकान्ता में कथा विचित्रघटना की सहायता

करती है। फौष्ट और वेहर वुल्फ की बात कुछ न्यारी है किन्तु उनके लिए भी यही बात समष्टि रूप से लगती है। प्रथमश्रेणी के उपन्यासों में विचित्रघटना गौणरूप से बीच में डाली जाती है, किन्तु फौष्ट सरीखों में उसके आरम्भ होता है। फौष्ट और नेक्रोमेन्सर में आत्माका बेचना और वेहर वुल्फ में भेड़िया बनना प्रथम से assumed है शेष घटनाएं सब प्राकृतिक हैं 'हां' बीच बीच में आदि सूत्रसे मिलान कर दिया जाता है। चन्द्रकान्ता इन सबसे भी एक कदम बढ़ गई है। उसका वा सन्तति का कोई अध्याय उठा लीजिए, देखिएगा कि असम्भव घटना को निकाले बाद उसमें कुछ नहीं है,— It is too empty to be looked upon!!

आषाढ़ के सुदर्शन में ऐयारी की पुष्टि के लिए मुद्राराक्षस नाटक का भी नाम लिया गया है और चन्द्रकान्ता छपती वेर रामायण के सीता हरण को भी ऐयारी कहा गया था। यों तो इन्द्रवृत्र के युद्ध को वा सरमा और पणियों की बात चीत को ऐयारों की चालें बता कर वेदभगवान् को भी चन्द्रकान्ता का वकील बना सकते हैं और उस दिन एक मित्र के निवेदन पर हमने अद्वैतब्रह्मपरक श्रुतियों को फ्रीट्रेड और प्राटेक्शन पर घटा दिया था किन्तु मुद्राराक्षस की बात भी मैकवैथ और मेरीप्राइस में अन्तर्भूत होगई। वहां भी विचित्र कलाएं गौणतया प्रधान कथा की सहायता करती हैं और प्रधानकथा विचित्रकलाओं के साथ नाचती नहीं फिरती। एक और मज़े की बात देखिए। कादम्बरी, मैकवेथ, मेरीप्राइस, फाष्ट वा मुद्राराक्षस पढ़ने पर क्या

स्मरण रहता है ? नाटक पात्रों की सजीवता, उनकी चेष्टाएं, उनका चरित्राङ्कन, उनका व्यवहार, कथा का परिणाम प्रभृति । विचित्र घटनाओं का टांका अपना काम कर चुका और सारी पोशाक में टांकों की तरह वह अब दिखाई नहीं देता । चन्द्रकान्ताके प्रेमियों को उन्हीं की शपथ है, उसका पारायण किए बाद क्या याद रहता है ? कथा भाड़ में गई, चरित्राङ्कन की बात ही नहीं, चरित्रों में सजीवता की बात कहां, भाषा भी नहीं, केवल ऐयारी देवी और तिलिस्म जी महाराज ! और साथ ही गुण्डे शोचे ऐयार villains of the play

(८) उपन्यास का मुख्यगुण विचित्रघटना है ! सच्चे ही; तो फिर इससे अच्छा उपन्यास कौन है कि "एक हाथी के पीछे एक गीदड़ दौड़ा हाथी झालझाल तो गीदड़ पातपात, हाथी वृक्ष पर चढ़ा कि उसने कहा हट 'हट' पर चढ़ के गीदड़ भी ऊपर चढ़आया । सामने नदीके दूसरे पार धोबी कपड़े धोरहाथा उसने छींका तो उस छींक पर सवार होकर हाथी पार चला गया" उत्तरोत्तर अद्भुत और कौतूहलवर्धक हो सही किन्तु हो विचित्र ! भरपेट हो, जायकेदार हो, किन्तु हो चटनी ही !! कमर कस कर समाधान करने तो बैठ गए, किन्तु यह न सोचा कि जब रोगी पित्तज्वर से अभिभूत होता है तो उसे अनारदाने की चटनी ही अच्छी लगती है । और कोई भी भोजन उसे अच्छा नहीं मालूम देता । किन्तु स्वस्थ आदमी ही जानते हैं कि दाल रोटी में क्या स्वाद है । अत एव हमने कहा था कि ऐसे उपन्यास बीमारी के दिन के उपन्यासों (Romances) की नक़ल है । बीमार

की रुचि खोलने का काम इस चटनी ने दे दिया अब क्या जन्म भर इसे ही खाया करोगे? पेट तो दालरोटीसे ही भरेगा।

(९) चन्द्रकान्ता में कोई दोष नहीं है, यह दावा नहीं है।

(१०) इसके गुणो पर भी ध्यान देना उचित है।

(११) गद्यकाव्यमीमांसा की दुहाई शायद इसलिये दी गई है कि उस में घटना के सभवासभव होने से वा ऐतिहासिक, कल्पित और मिश्र भेद से (पृष्ठ ५२, ५०) उपन्यासों के भेद माने गए है (कारिका ५२ और ६५) किन्तु पं० व्यास के उनचास अर्बुद, छै करोड, एकतालीस लाख, अठानवे हजार चार सौ उपन्यासों में इन चार घटकों को छोड बाक़ी क्या हुए? गद्यकाव्यमीमांसा मे से एक टुकड़ा ऊपर दिया गया है। एक और सुन लीजिए। 'देशकाल आदि के वर्णन में स्वभावसिद्ध वर्णन करे अस्वाभाविक बहुत उटपटाग न हांके" (पृष्ठ ३८) एक और भी बात है। चाहे गद्यकाव्य का सूत्रपात हमारे प्राचीन आचार्यों ने कर दिया हो, किन्तु वर्त्तमान उपन्यासों की सृष्टि पश्चिमी नमूनों पर हुई है। यद्यपि पञ्चतन्त्रप्रभृति से हमने ही पश्चिम को कथाप्रबन्ध सिखलाया था, किन्तु वर्त्तमान उपन्यासों की रचना और जीवन मे यूरोपीय उपन्यास बड़ा भारी भाग ले चुके है। साहित्याचार्य का लेख प्राचीनो की भूल पकडने और पण्डिताई से नए नए विभाग करके कुछ दिग्दर्शन दिखा सकता है, किन्तु यूरोप का भी इस विषय मे बने जाने का अधिकार है। पाश्चात्य देशों में उपन्यास की उत्पत्ति और उन्नति तो हम एक स्वतन्त्र लेख मे दिखावेंगे,

किन्तु यह प्रत्यक्ष है कि यूरोप के सभी देशों में विचित्र वर्णनकारी रोमेन्सों की रचना मारी गई हैं ।

अब के उपन्यासों में "चरित्रों का दार्शनिक अध्ययन, राजनैतिक और सामाजिक कार्य, वृटिश गृहचर्या का उद्घार और समालोचना पूर्ण चित्र, वर्तमान दुराचारों के विरुद्ध प्रबल जिहाद" पाया जाता है * "उपन्यासों की अधिक बिक्री और अधकचरे मनुष्यों की उपन्यास लिखने की प्रवृत्ति से यद्यपि ठीक उपन्यासों की चाल नहीं पाई जाती तथापि यह प्रत्यक्ष है कि अंग्रेजी औपन्यासिकों की कल्पना छोड़ गई है । यही नहीं कि इङ्गलैण्ड प्राकृतिक प्रवृत्तियों वाला होगया है, किन्तु वहां व्यापारी उपन्यास, जहाजी उपन्यास, सामाजिक उपन्यास, नाट्य उपोपन्यास भी फैल गए हैं । अयोग्य ग्रन्थ ५० वर्षतक लोगों की स्तुति के पात्र न रह सकेंगे । उपन्यासों की साहित्य शक्ति के कम होने से तबतक थकावट और रुकावट जारी रहेगी जबतक सारा Romantic mode रोमैन्सकालका प्रभाव मिटकर और अच्छे साहित्य को स्थान न देदेगा"।

(१२) महान् हि शब्दस्य प्रयोगविषय आक्षेपुस्तिका मात्रं हि लघु भवानाह । जितना प्रयोग जम, तेर, चक्र, पेश, आदि । शब्दों का है उतना ही इन उपन्यासों का भी रहने दीजिए, अपितु भवति, वा "गौः नमः उमा" की तरह इनका प्रयोग थोड़ा ही है ? इस लिए इतना ही प्रयोग का विषय है कहना असम्बद्ध नहीं है, स्थूलदृष्टि से ठीक है ।

* Cf the Encyclopædia Britannica, Tenth Edition, Supplementary Volumes under "English Literature."

(१३) "क्या सम्भव है और क्या असम्भव है, यह जानना ही मनुष्यके लिए असम्भव है" खैर एक बात तो असम्भव निकली ! धन्यवाद!! इस वैशाख की संख्या का उत्तर देते हुए सहयोगी वेङ्कटेश्वर ने बहुत कुछ इधर उधर गाना चाहा है कई ढेर अप्रासङ्गिक बातें कह कर प्रासङ्गिक बातोंको टाला और अपने सहयोगियों को आगे करके स्वयं निकल भागना चाहा है। इन सब बातों की आलोचना यहां करनेकी आवश्यकता नहीं, किन्तु श्री वेङ्कटेश्वर की शान्ति और सौम्यता की जो स्तुति की जाय वह थोड़ी है। बिना विवाद के किसी बातका पूरा निश्चय नहीं होता, शायद इसी लिए सुदर्शन ने ज्येष्ठ की संख्या में इस बारे में फिर लिखा। उसका अधिकांश यद्यपि शुष्कविवाद पर ही झूमता है, तथापि उस की कुछ बातों पर थोड़ा बहुत लिखकर इस लेख को, और इस विषय को हम समाप्त करेंगे।

ज्येष्ठ का सुदर्शन — पृष्ठ २० प्रभृति—

(१) "सब जानते हैं कि जोधपुर और जयपुर के नरेशों ने मुगल बादशाहों को लड़कियां दी थी, इस कारण उन्होंने उससमय मुसलमानों की प्रसन्नता के लिए कुछ न उठा रक्खा"। प्रथम साध्य से द्वितीय सिद्ध किया गया है, या दोनों अनुमानों में अभेद है या दूसरे ने प्रथम सिद्ध किया जाता है ? यदि इन नरेशों ने लड़कियां दी थीं इस बात को सब लोग झूठ जानते हों तो ?

(२) निज के प्रेस में चाहे जो अनाप शनाप छापे इत्यादि (पृ० २१) पत्रसम्पादक और यन्त्रालयचालक के

कर्तव्य को एक कर दिया गया है । यों motive दिखलाना ठीक नहीं । पत्रसम्पादन और दृष्टि से होता है, वा और व्यक्ति से होता है ग्रन्थमुद्रण और से ।

(३) यद्यपि सनातनधर्मदीपक के लिए हमें सुदर्शन का सा ही दुःख हुआ है और इस विषयमें हमारे विचार उससे मिलते जुलते ही हैं तथापि यह दोष वेङ्कटेश्वर पत्र का नहीं है और न यह कहना ठीक है कि 'क्या मारवाड़ियों की बहू बेटियों के लिए श्री वेङ्कटेश्वर का महाप्रसाद रसिकछ००,, जैसा ही होना चाहिए ? ।

भ्रम किसका है ?

(१) "चन्द्रकान्तामें असम्भव बातें नहीं हैं और वैसी आश्चर्यमयी घटना उपन्यासमें दोषावह होने के बदले गुणावह ही है" यदि (सुदर्शन को जोडना चाहिए) ऐसी घटना गौणरूपसे प्रधान कथा की सहायता करै और प्रधान कथा को बाजीगर की बदरिया की तरह नचाती और बिगाड़ती न फिरै. जैसाकि उसने चन्द्रकान्तामें प्रविष्ट किया है।

(२) नैयायिक धुरन्धरों की अपेक्षा उसकी बुद्धि चमत्कारिणी है। इस लिए कि सम्भव और सम्भवाभाव, और असम्भव और असम्भवाभाव को परस्पर समानाधिकरण मानता है। और सुदर्शन की तरह उन्हें परस्परसंकीर्ण नहीं कर देता। भाष्यकार ने भी लिखा है "भवन भावः शब्देरेव शब्दान्तरघटे" तो वेङ्कटेश्वर का लक्षण बुरा क्यों है ?

(३) उनके प्रतिष्ठित पत्रका सिद्धान्त— सम्पादक विशेष की रुचि से उद्देश्यविशेष का समर्थन होता है, साथही

पाठकोंमें भी अधिकारीभेद होता है। कई पाठक उपन्यास शून्य होना नहीं चाहते, उनके लिए "कसत्ये वर्त्मनि स्थित्वा ततः सत्य समीहते" करना पड़ता होगा। यहा हम वेङ्कटेश्वर का पक्ष नही ले रहे हैं, केवल वक्तव्य कह रहेहैं।

(४) असम्भव का लक्षण बना कर समन्वय करना—"लक्ष्यतावच्छेदकासामानाधिकरण्य, सम्भवाभावो वा असम्भवः" इस लक्षण का सुदर्शन ने खण्डन कब किया है। "उछ्राय ह्रासवृद्धिसमर्थत्व" भी लक्ष्य से समानाधिकरण नही है।

(५) पुस्तकप्रकाश कामना से सत्य का मुकुट, गोरीशङ्करहीरा वाले जो लिखे सो सम्भव है, अच्छा इस लिए कहा कि नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित हुआ था, यह तीनों उक्तिया उत्तर के योग्य ही नहीं।

राजपूत को नेक सलाह लेखके वीरलेखक का हम इस लिए उत्तर नहीं देते कि उसने अपने नाम को छिपाकर धर्मग्रन्थों तक पर आक्षेप किया है तथापि पृष्ठ ३८ के उसके कथनपर हमे एक वाक्य कहना है। "अंग्रेजसमाज का यथावत् चित्र उतारनेवाला रिनाल्डके समान धुरधर उपन्यास लेखक कोई न हुआ न है" "जैसाकि कलावती और चपला में हिन्दूसमाजका यथावत् चित्र उतारनेवाला प० किशोरीलाल गोस्वामी या देवकीनन्दन के समान धुरंधर उपन्यासलेखक कोई न हुआ न है"।

आषाढ का सुदर्शन देखकर सुदर्शन का पक्ष करने की इच्छा होती है। वास्तव में बहुत बकवाद करने के

लिए सब्जद पत्रों पर अग्नि पर भीगे कम्बल की ज़रूरत है। प्रेरितपत्रों के लिए बिचारे सम्पादक दायी बने हैं। और साहित्यसेवी के लेखका खण्डन उनने अच्छा किया है। यद्यपि उस लेख मे प्राचीन आर्यराजाओं के विरुद्ध बहुत कुछ अपावन अपाठ्य विषय है और इसी से उस विषयपर बहुत कुछ कहना भी उचित नहीं, तथापि दो एक बातें कहे देते हैं—

(१) पृष्ठ २७ आश्रयदाता बङ्गभाषा, प्रभृति—यदि ब ङ्गभाषा ने हमे शब्द और ग्रन्थ दिए तो उससे दोष न देख- ना यह कहा का न्याय है ? बुद्धिमान् बङ्गालियों ने यदि नवजात उपन्यासादि शब्दों पर विवाद न किया तो क्या हम भी रक्तबीज की तरह फैलते उपन्यासों पर कुछ न कहें ?

(२) "प्रातःस्मरणीय महाराणाओं के उत्कर्ष केलिए बंगालियोंने जो कल्पना की है" यथा अंशुमतीका सलीमसे प्रेम ! क्यों ? दुर्बल बङ्गाली अपनी जातीय दुर्बलता के सामने विशुद्धरुधिर वीर राजपुत्रों का क्या उत्कर्ष करेंगे ?

(३) जगन्नाथ जी की मूर्ति—किन्तु यदि कोई भ्रम में न जाकर जगन्नाथ जी की मूर्ति को ही देखकर विचार बांधे तो हिन्दुओं को असभ्य जातियों के सदृश पूजक कहेगा न! वही बात उन निपुणता की हानि वाले उपन्यासों की है।

(४) मेघनादवध और नवीनचन्द्र के ग्रन्थों में त्रुटियां नहीं हैं। माइकल मधु ने तो इच्छापूर्वक मिल्टन के अनु- करण से, रावण से सहानुभूति दिखाई है और देवरामच- रित्र को मनुष्यरामचरित्र में परिणत किया है। प्रभाव

रैवतक आदि में आर्य अनार्यों का कल्पित झगड़ा बना कर ब्राह्मणों को अनार्य पक्षपाती दिखाया गया है। इस ग्रन्थ पर "ऊनविंश शताब्दीर महाभारत" देखिए।

(५) "रसी शैली का" जिस से अश्रुमती के द्वारा महाराणाओं की प्रशंसा की गई है।

(६) "स्वतन्त्रचेता आर्य्यकवि" "भारतवर्षीय कवि किसी के दास नहीं होते" ठीक है। और उनकी स्वतन्त्रता कुछ रुपया न मिलने से अपने मित्र के जानी दुश्मन बन जाने में वा एक एक रुपयेमें स्वार्थान्धप्रकाशिका पर सम्मति करने में शेष होती है। इस स्वतन्त्रता का उपयोग क्षत्रियों पर ही होना चाहिये।

(७) "म्लेच्छों के अपवित्र उत्सङ्गमें दुहिता अर्पण की" धीरे धीरे। यह बात असत्य हो, यह असम्भव नहीं है।

(८) नागरीप्रचारिणीसभा के वार्षिकोत्सव पर ऐसी पुस्तकों पर विचार हो जाय— नहीं ! कदापि नहीं !! जिन लोगों को लड़ने का स्वभाव है, वह किसी का फैसला क्यों मानेंगे ? फिर जिस पक्ष की जीत होगी उसे motives लगाने में प्रवीण लोग स्वार्थी और अन्यायी न कहेंगे ? और दूसरा पक्ष नागरीप्रचारिणी सभा का शत्रु न बन जायगा? पं० मिश्र ने महामण्डल की वर्षों की लड़ाई मिटाकर लोकेषा कर लिया और इस लड़ाई को दिनों के विचार में मिटाने की उनकी लालसा है। सभा की सौम्य कार्य्यवाही मे यह पचड़ा डाला ही न जाय। हिन्दी पत्रों की भेड़ियाधसान स्वयं ही चुप हो जायगी, नहीं तो सभा में भी यथा होगा—

उच्चैरुद्घोष्य जेतव्यमधस्थश्चेदपण्डितः ।
पण्डितो यदि तत्रैव पक्षपातो निवेश्यताम् ॥

(९) जो लोग न्यायालय में राजपूतों को लेजाकर कलह का सूत्रपात कराया चाहते है वे कदापि उनके या हिन्दीभाषा के हितैषी नही हैं । अवश्य ।

(१०) मवाया मान—क्या उसी कारण हुआ है ? कारणान्तर नही ? धन्यवाद के लेखमें यह पढ़ कर बडा हर्ष हुआ कि सुदर्शन सम्पादक की चले तो चन्द्रकान्ता के बदले तुलसीरामायण पढ़वावे । भगवान् करें उनकी चलै । किन्तु उनके मत में धर्म और नीति और वस्तु है, और काव्य साहित्य और । हम यह नहीं मानेगे । यदि निर्जीव आख्यायिकाएं असम्भव और अद्भुतघटना मात्रका उल्लेख न करके मनुष्यजाति के उपादेय वा गर्हणीय चरित्र का अङ्कन करके विलास में भी उपदेश दें तो क्या हानि है ? यदि नीति और काव्य—दुस्तर धारा और विलास के बीच में पुल बधजाय तो क्या हानि है ? मनुष्यजाति के लिए मनुष्यजाति चर्चा से अच्छा विश्वविद्यालय नही है मनुष्य कड़वी दवाई (धर्मशास्त्र) रज़ामन्दी से नहीं पीयेगे उन्हें आख्यायिका की शक्कर में लपेट कर तत्व दिये जायं । समुद्योगी समालोचक ने "गणेश कुर्वाणो वानरं चकार" तो तिलिस्म की विलल्ली घटना के 'निर्जीव' शृंगार कोने किया है, मनुष्यजातिकी सम्पन्न घटनाओंकी आख्यायिकाएं उतनी ही सजीव है जितनी मनुष्यजाति और मनुष्यजाति का इतिहास । "चलता पुर्जा" और "विज्ञान और बाजीगरी" विलास होने

परभी ज्ञान है, बची और होनेवाली बातो की जानकारी है। क्या यही शब्द चन्द्रकान्ता के विषय में कहे जा सकते हैं? उससे समय वृथा नष्ट होने के साथ जानकारी क्या हुई? हां, हमने कई मनुष्य ऐसे देखे है जो चन्द्रकान्ता के दो तीन पारायण किये बाद तेजसिंह बनजाते है, पागलो की तरह पहेलियो मे बातें करते है, पत्ता हिलता देख कांप उठते है, किसी गली का मोड देख चौंक उठते हैं, प्रत्येक वृक्ष को तिलिस्म और प्रत्येक खण्डहर को क़ैदखाना मानकर मित्रो के साथ बाग जाने में भी हिचकते हैं। सहयोगी इसे नहीं यह भयानक सत्य है। घर घर में *Don quixote* की घटना की आवृत्ति हो रही है।

हमें भय है कि हमारा सहयोगी इतनी अधिक बातो से अप्रसन्न न हो जाय इससे हम उसे साञ्जलिबन्ध क्षमा मांगते हैं और हमारा वक्तव्य यही है कि हमने अपने हृदय के शुद्धभाव, भले मन से, भलाई के लिए, उसके सामने रक्खे है। कई लोग हमें यह कहेंगे कि सुदर्शन आपसे अप्रसन्न होगए,—"समानमिस्मे कवयश्चिदाहुरय ह तुभ्य वरुणो घृणीते" (७। ८६। ३ ऋक्) परन्तु हम इसीमे सन्तुष्ट हैं कि सुदर्शनकी कृपासे हम—

"अतारिष्म तमसः पारमस्य।"

इस लेख मे हमने सुदर्शन के ही मतो का विवाद इसलिये किया है कि वे ही विवाद के योग्य है। इस का अभिप्राय यह नही है कि और पत्रों के विचार सब सत्य हैं, नही नही, कहीं २ तो वे इतने उद्देश्यभ्रष्ट है कि उनपर कुछ क

इनाही ठीक नही । सुदर्शन के विरुद्ध कुछ कहने में हम अपना सौभाग्य समझते हैं । किन्तु असल बात जो है वह सुदर्शन समझले । यह उपन्यास—उर्वशी हिन्दी पाठक पुरूरवा को सुधारने आई थी । जब देखा कि पुरूरवा हातिमताईके किस्से और बुलबुल हजारदास्तां ही में उलझा हुआ है तो इन्द्र ने यह उर्वशी इस को दी । उर्वशी ने अपना काम कर दिया है और अब जब राजा ने राजकार्य छोडा है तो उर्वशी जाती है । तिलिस्म का स्थान तो विज्ञानचर्चा ले लेगी और ऐयारी का स्थान गवेषणा । अपने पुत्र आयु को पिता के पास छोडकर अब उर्वशी चली । पुरूरवा भले कितना ही कहे "हये जाये मनसा तिष्ठ घोरे ! वचांसि मिश्रा कृणवावहै नु" (१) "निवर्तस्व हृदय तप्यते मे" (२) तो भी वह तो यही कहती जायगी कि "प्राक्रमिषमुषसामग्रियेव" (३) 'दुरापना वात इवाहमस्मि" (४) यहांतक कि वियोगसें पुरूरवा यह कह बैठेगा॥

सुदेवो अद्य प्रपतेदनावृत् परावतं परमां गन्तवा उ। अधा शयीत निर्ऋतेरुपस्थेऽधैनं वृका रभसासो अद्युः॥ (५)

---

(१) हे प्रिये ! जरा ठहरो, मिलकर बातें करें ।

(२) लौट आ, मेरा जी जलता है ।

(३) पहली उषा की तरह मै हट गई ।

(४) मै वायु की तरह पकडी नहीं जा सकती ।

(५) आज मैं सदा के लिये रवाना होता हूं और सुदूर से न लौटने को (मरने को) तैयार हूं । प्रकाशमान् मै मृत्युकी गोदमें सोऊंगा, और भलेही भयंकर भेडिये मुझे खा जाय ।

तो उर्वशी यही कहैगी—

"पुरूरवो मा मृथा मा प्रपतो मा त्वा वृकासो अशिवास उक्षन् । न वै स्त्रैणानि सख्यानि सन्ति सालावृकाणां हृदयान्येता ॥ (६) (७)

यही अनादि संसार का अविनाशी नियम है। अन्धकार मिटाने को उषा आई, सूर्य के आते ही वह चली गई। उसका काम हो चुका। ओम्।

देश देश के, काल काल के, शब्द यही सुन पाते हैं।
सभी महात्मा "ठीक चुनो" ही कहते सदा दिखाते है।
ठीक चुनो, चुनना ही तो, क्षणिक, सदा का, होगा।
अनन्तता के पर्दे मे से आखे तुम को देखे है।
वीरो! तुम्हे पारितोषक को, पूर्ण ब्रह्म ही बैठे हैं।
मत निराश हो, काम करो तुम, चल सफल ही होगा।
—गेटे ॥

---

(६) पुरूरवा! मत मरो, मत नष्ट हो, अमंगल भेडिये भी तुझे न खाय। स्त्रियोंसे कभी सदा की मित्रता नहीं होती, इनके हृदय तो जरख के हृदय से कठोर होते है।

(७) ऋग्वेद, मण्डल १० सूक्त ९५ ऐल सम्वाद

आरा-प्रणेतृ-समालोचक सभा से स्वीकृत समालोचना ।

काजर की कोठरी ।

(१) इस उपन्यास को, चन्द्रकान्ता आदि के ग्रन्थों के रचयिता श्रीयुत बाबू देवकीनन्दन ने लिखा है । आप ने इस ग्रन्थ का पूर्ण अधिकार अपने प्रिय सुहृद् बाबू विशेश्वर प्रसाद वर्मा (उपन्यास दर्पण आफिस काशी) को दिया है । मूल्य ।।=) आने है । जिसे लेना हो वे उक्त वर्मा जी से ले सकते हैं । ग्रन्थकार के मत से इस पुस्तक का प्रधान विषय ऐय्याशी है, क्योंकि ग्रन्थकार ने इस का नाम 'काजर की कोठरी" रक्खा है ।

(२) इस ग्रन्थ मे किसी प्रकार प्रसाद गुण आगया है, इस पुस्तक के पढ़ने से ऐय्याश रण्डियों की चलती फिरती घातो से बच सकते है बल्कि उन्हे उन से एक बारगी घृणा हो जाय तो आश्चर्य नही । घुणाक्षर न्याय से स्त्री की पतिभक्ति भी इस में वर्णित हो गई है ।

(३) इस पुस्तक में अनुबन्धचतुष्टय दोष है । इसका विषय ऐय्याशी है इस मे ऐय्याशी की दुर्दशा दिखलानी उचित थी सो नहीं हुआ वरन नायक हरनन्दन को रण्डी की कृपा से सरला सी एक अच्छी पतिव्रता नारी मिली । पारसनाथ का बान्दी रण्डी से मिलकर सरला के रहस्यों का प्रकट करना कुछ भद्देपन और बेजोड सा जान पड़ता है क्योंकि रण्डी सब भेदो के जानने की पात्र नहीं है यह प्रकृति विपर्यय हुआ ।

पिता को अधिकार नहीं है कि अपने पुत्र को किसी कारण या किसी अवस्था में रण्डीबाजी करने की आज्ञा दे। इस उपन्यास से यह स्पष्ट टपकता है कि हरनन्दन अपने पिता कल्याणसिंह की आज्ञा से बांदी रण्डी के घर आने जाने लगा। यदि ग्रन्थकार किसी कारण से ऐसी बातें, जो समाज के एकबारगी विरुद्ध है, लिखने पर लाचार ही हो गया था तो उसको उचित था कि हरनन्दन को काजर की रेख नहीं लगने देता। पर ऐसा नहीं हुआ पृ० १४५ प० १४ पढ़िये क्या लिखा है?—

"इसके बाद क्या हुआ सो कहने की जरूरत नहीं है इत्यादि" यह वाक्य सिद्ध करता है कि हरनन्दन वेश्या व्यसन में मुंह के बल गिरा और उसने प्रसङ्ग किया। क्या इस पाप में हरनन्दन के पिता का भाग भी नहीं हुआ!।

यह पुस्तक उपन्यास के लक्षणों से कालेकोसों दूर है। उपन्यासों में रहस्यमयी घटनायें बखेड़े के साथ बहुधा हुआ करती हैं परन्तु अन्त में क्रमशः सारी बातें दर्पण सी खुल जाती हैं। कोई बात ग्रन्थकार के पेट पिटारे में छिपी नहीं रहती है। इस में कई बातें छिपी हुई रह गई है। जैसे:—

१—महफिल के दिन कल्याणसिंह की कोठरी में जो पिटारे के छत से उतरने की रहस्यमयी घटना हुई। उसका भेद उपन्यास भर में कहीं नहीं खोलागया है। क्या इसके बारेमें पाठक काशी जाकर ग्रन्थकार से पूछेंगे?

२—बांदी रण्डी के डेरे से आकर रामसिंह के सामने

हरनन्दन ने जो मुड़ा और बिगड़ा हुआ पुर्जा अपने बाप को दिया वह कैसा था । उसमें क्या लिखा था । कैसा य न्त्र था कि कल्याणसिंह पर उसने ऐसा जादू किया जिससे वह ऐसा अन्धा होगया कि उसको अपने पुत्र का ऐय्याश बनना पसन्द आगया और पुत्र की कुचाल पर चूं नहीं किया । इसका भी हाल नहीं खोला गया है ।

३—"अपने चचा लालसिंह के सन्यास की सूचना अपनी भाभी को देकर पारसनाथ हवेली से बाहर आया और लोकनाथ को विदा किया । इसके बाद एक चिट्ठी खुशी २ लिख कर अपने खास नौकर के हाथ किसी दोस्त के पास भेजी" । उस चिट्ठी का भी हाल कहीं नहीं खोला गया है ।

हरनन्दन ने बादी के डेरे से लौटकर जैसी ढिठाई और बेहयाई से बातें अपने पिता कल्याणसिंह से कीं वैसी बातें कोई भी समाज सहन नहीं कर सकता है । उस पर भी हरनन्दन ऐसे नीतिकुशल सपूत के मुंह से । यदि कपूत होता तो कोई हानि नहीं होती जैसे:—

कल्याण०—(चौंककर) है ! ! ! (हरनन्दन से) क्यों जी ! तुम कहां थे ?

हरनन्दन—बादी रण्डी के डेरे में । आदि

भाषा ।

इस के बारे में क्या लिखूं ? न तो नागरिक (हिन्दी) साधु भाषा ही कह सकता हूं न संस्कृत न मुल्लाओं की भाषा और न पञ्जाबी । यदि इस पुस्तक की भाषा को " चौचे का मुरब्बा" कहा जाय तो ठीक है । क्योंकि इसमें थोड़ा २

सब भाषाओं का आनन्द मिलता है। पीछे से उदाहरणः श्रेणीबद्ध नीचे लिखेजाते हैं:—

(फ़ारसी—अर्बी) मज़ेदार, चस्मा, बाजुकअदा, शक्ल, खूनखार, ताक़तवर, शरीफ़, रौनक़, शाहखर्चआदि इस श्रेणी के शब्द तो पुस्तक भर में ऐसे चमकते हैं जैसे बरसात में हरी दूबों पर बीरबहूटी !

संस्कृत— नीतिकुशल, विश्वास, मनुष्य, बुद्धिमान्, अवश्य, मर्म, आश्चर्य आदि ।

पञ्जाबी—(तहसीलदार किया हुआ था,) आदि ।

अंग्रेजी—लाइन—फीस । पात्र भेद से भाषा भिन्न होती है अतः मैं इसका विरोधी नहीं हूं कि हिन्दी में दूसरी भाषा के शब्द नहीं लिखे जाय परन्तु एक ढाल होना चाहिये। गदहे और घोड़े का मेल नहीं मिलाना चाहिये । दूसरी भाषा के उन्हीं शब्दों का प्रयोग होना चाहिये जो प्रायः हिन्दी स्वरूप होगये हैं ।

इस ग्रन्थ में मुहाविरे की अशुद्धि (अप्रयुक्तता दोष) भी हैं:—

अशुद्ध	शुद्ध
सूरत बनाकर	मुंह बनाकर
मुठभिड़	मुठभेड़
ढाक बढाली	धाक जमाली
ठाठ बाठ	ठाट बाट
घारा बदलौअल	दानाबदलौअल
सभाड़	सभाव
टालमटाल	टालमटूल

पृ० ६२ पं० १५ 'पारसनाथ का मुँह काला करूंगी' पुरुष स्त्री का मुँह काला करता है न कि स्त्री पुरुष का।

पृ० १७७ पं० १६ 'ऊंचाकबा जामा जोड़ा ले लेव' हिन्दू विवाह में ऊंचाक़बा नहीं पहरते हैं।

इनके अतिरिक्त कई भद्दे और ग्राम्य दोष भरे वाक्य भी प्रयुक्त हुये हैं जैसे—अडस, खुल्लमखुल्ला, छूछून, जही, अधमूवे आदि।

'जबान' और 'खटका' को 'जुबान' और 'खुटका' लिखकर तो बिचारी हिन्दी का गला भलीभांति रेता गया है।

व्याकरण की अशुद्धि

१—पृ० ५५ पं० १२ 'इसने तो केवल हमारे लालसिंह जी को धोखा देने के लिये रूपक बान्धा हुआ था।

अकर्मक—क्रिया के कर्ता में 'ने' विभक्ति नहीं लगाई जाती।

२—पृ० १३४ पं० ३ 'अब तो जो कुछ करना है तुम्हीं ने करना है' 'को' विभक्ति के स्थान 'ने' कैसा? क्या विहार से 'ने' उड़ कर संयुक्त प्रदेश में जा पहुंचा।

३—पृ० ६१ पं० १४ 'बड़े खुशी की बात है' स्त्रीलिङ्ग का विशेषण स्त्रीलिङ्ग ही होता है पुल्लिङ्ग नहीं। बड़े के स्थान में 'बड़ी' शब्द होना चाहिये।

४—पृ० १४ पं० १२ 'मैं आप से बहस करना उचित नहीं समझता'। 'करना' बहस का विशेषण है इस लिये इसको स्त्रीलिङ्ग होना चाहिये।

५—पृ० ९ पं० १३ 'जलती हुई चिराग' चिराग शब्द पुल्लिङ्ग है। इसका विशेषण स्त्रीलिङ्ग कैसा? यथा—

फ़िरोज़ाँ हुस्न है ऐसा लबे रँगीन जानां का ।
चिराग़ आकर बुझेगा हिन्द में लाले बदख़्शाँका ।।
(आज़ाद)

८—पृ० ९८ पं० ८ 'ऐसी रोई कि उसके हिचकी बंध गई' मुहाविरे के अनुसार इस वाक्य में 'के' के स्थान में 'को' होना चाहिये । यदि सम्बन्ध कारक ही की अधिक विवक्षा है, तो 'की' विभक्ति लिखनी चाहिये । क्योंकि 'हिचकी' शब्द स्त्रीलिङ्ग है । यथा "हिचकियां आने लगीं बीमार को" ।

९—पृ० १२५ पं० ८ 'खैर पहिले यह बताओ कि वे क्या चाहती हैं ? '

यहां 'वे' एक वचन 'वह' के स्थान में प्रयोग किया गया है सो अयुक्त है । यदि कहा जाय कि आदर में बहुवचन है तो रण्डी की माता का आदर ! उस पर भी परोक्ष में ! समाज और तमाशबीनों दोनों के विरुद्ध ! ! ।

१०—पृ० १३६ प० ५ 'हरनन्दन बाबू ने चांदी के हाथ से पंखी लेना चाही आदि' 'पंखी लेने को चाहा' इस वाक्य में से यदि 'को' उड़ा दें तो 'लेना' हो सकता है परन्तु चाही क्रिया तो सर्वथा अशुद्ध ही है । यदि स्त्रीलिङ्ग लिखना है तो 'पंखी लेनी चाही' लिखना था ।

(४) इस पुस्तकको केवल वेश्याश खरीद सकते हैं । वे इस से अवश्य लाभ उठायेंगे । दूसरे लोग सामाजिक नियमों के विरुद्ध होने के कारण यदि आदर न करें तो आश्चर्य नहीं ।

जैनेन्द्रकिशोर मन्त्री नागरीप्रचारक
पुस्तकालय आरा

सोऽहम् ।

(गताङ्क १३ पृ० ५८ से आगे)

इसका प्रथम उत्तर तो यह है कि जब विकाशवाद और सृष्टिवाद दोनों ही में सृष्टि और सृष्टिकर्त्ताका एकत्व प्रमाणीकृत होचुका ही है, तो फिर कोई भी ऐसी आपत्ति उठाने में समर्थ नहीं है । द्वितीय और प्रधान उत्तर यह है कि यह सब विभिन्नता प्रकृत विभिन्नता नहीं है—यह सब विभिन्नता मनुष्यकी अवस्था विशेष का फल या उपलब्धि मात्र है । मनुष्य जिस द्रव्य को तिक्त कहकर फेंकदेता है कोई पशु उसी द्रव्य को अतिशय मधुर मानकर पेट भरके खाता है । मनुष्यकी दृष्टि में जो लाल है किसी एक पक्षीकी दृष्टि में वह काला है । स्थूल अवस्थामें भिन्न भिन्न द्रव्यों के भिन्न भिन्न आकार और स्वाद रहते है । रासायनिक विश्लेषण द्वारा वही द्रव्य सूक्ष्म अवस्था को प्राप्त होकर एकही आकार धारण करते है और प्रायः एकही स्वाद देते है। स्थूल आकारमें एकही वस्तु स्थूल इन्द्रियोको भिन्न भिन्नरूपमें प्रतीयमान होती है । यूरोपीय वैज्ञानिकोने सिद्ध किया है कि ताप, तड़ित् और आलोक प्रभृति जो सब स्थूल पदार्थ स्थूल इन्द्रियोके द्वारा इतने न्यारे न्यारे अनुभूत होते हैं, सूक्ष्माकारमें वे सब एकही पदार्थ हैं । अत एव जो जगत् मे विभिन्नता करके जानी जाती है वह प्रकृत विभिन्नता नही है—स्थूल इन्द्रिय उत्पन्न स्थूल अवस्था की स्थूल उपलब्धि मात्र है । जो स्थूल इन्द्रियों का शासन अतिक्रम करके स्थूल अवस्था से उन्नत हो सूक्ष्मरूप दर्शन करते में

समर्थ हो गए हैं, उनके लिए जगत्‌में भले बुरे का भेद नहीं है, प्रकृत विभिन्नता नही है। उनके पास तिक्त मधुर का भेद नहीं है, सुन्दर कुत्सित का भेदनही है, पाप पुण्य का भी प्रभेद नही है। जो स्थूल दृष्टिके शासनमें रहकर स्थूल दृष्टि से देखते हैं—वही केवल तिक्त मधुर, पाप पुण्य प्रभृति विभिन्नता दर्शन करते है और वही समस्त विभिन्नताके अधीन होकर नानाविध क्लेश भोग करते हैं और अवनति को प्राप्त होते है। यह जो हम जड़पदार्थ और चैतन्यके बीचमें प्रभेद करते हैं यह क्या ठीक है ? आधुनिक यूरोपीय विज्ञान कहता है कि जडजगत् ही चिन्मय जगत् रूपमें फूट पड़ा है, [अर्थात् जडत्वसे चिन्मय बना है] हम भी नित्य देखते हैं कि हम जिन सब जड द्रव्योंको भक्षण करते हैं वह केवल हमारे जड शोणित और जड अस्थिकी ही वृद्धि नही करते है किन्तु हमारी चिन्ताशक्तिकी भी वृद्धि करते है। शुक्रशोणित समुद्भूत सन्तान केवल जड नही चेतना सम्पन्न भी होते हैं। तोही हमारे गुरुतुल्य एक ग्रन्थकर्त्ता लिख गए हैं "जड जगत चिन्मय है" *। अतएव कैसे कहें कि जड पदार्थ और चेतन पदार्थ भिन्नपदार्थ हैं ? कैसे यह नहीं कहें कि हम स्थूल अवस्था में स्थूल इन्द्रियो के शासन में हैं अत-

* देखो, स्वर्गीय भूदेवमुख्योपाध्याय सी. आइ्ई. के "पारिवारिक प्रबन्ध का उत्सर्गपत्र।" यहा यह कहना अनुचित नहीं होगा कि भारत के सुपुत्र विज्ञानाचार्य अध्यापक जगदीशचन्द्र वसुने सुकुमार विज्ञान से जड पदार्थों में चेतना पूरी तरह सिद्ध करदी है (अनुवादकर्त्ता)

एन जड़ का और चैतन्य का एकत्व देख नहीं सकते । कैसे न कहें कि जड़त्व चैतन्य की एक अवस्था मात्र ही है! कैसे न कहें कि ब्रह्म अथवा स्थूलताशून्य चैतन्य के लिए जड़ और चैतन्य एकही पदार्थ है ?

किन्तु ब्रह्माण्ड के भीतर प्रकृत विभिन्नता वा वैषम्य न होने पर भी यह तो अवश्य स्वीकार करना होगा कि ब्रह्माण्ड की एक स्थूल अवस्था है। ब्रह्माण्ड में प्रकृत विभिन्नता नहीं है ठीक, किन्तु एक प्रकारकी विभिन्नता है। यह विभिन्नता स्थूलत्व का फल अथवा स्थूलत्व का अङ्ग वा लक्षण है। अत एव स्वीकार करते हैं कि ब्रह्माण्ड में कुछ स्थूलत्व है। किन्तु उसके होते कैसे कहा जाय कि ब्रह्माण्ड और ब्रह्म एकही पदार्थ है ? ब्रह्माण्ड में यदि स्थूलत्व रहता है तो ब्रह्माण्ड और ब्रह्मको एक कहने से ब्रह्म को भी स्थूल कहा गया और ब्रह्म स्थूल है यह बात कहने से उसको पापपुण्यरूप विभिन्नता और वैषम्य का विषयीभूत वा अधीन करना हुआ। इसका उत्तर यह है कि ब्रह्माण्ड का स्थूलत्व ब्रह्माण्ड का नित्य गुण वा नित्य की अवस्था नहीं है—क्षणस्थायी गुण वा अवस्था मात्र है। एव यह गुण वा अवस्था प्रकृत अस्तित्वही नहीं—केवल क्षणिक अवस्था की क्षणिक उपलब्धि मात्र है। इस गुण वा अवस्था में प्रकृत अस्तित्व नहीं है यह सहज ही जाना जा सकता है। मनुष्य को राग, द्वेष, लोभ, मोह, प्रभृति कितनी ही स्थूल प्रवृत्ति हैं मनुष्य जितनी देर उन सब स्थूल प्रवृत्तियों के वशीभूत रहता है उतनी देर उसे केवल कुछ क्षणस्थायी एव विभिन्न भावोंका आधार वा

रणक्षेत्र इस नाम से कह कर जानना चाहिए। वह भी उन विभिन्न क्षणस्थायी भावोंके अधीन रह कर अपने को प्रति मुहूर्त अलग अलग भावो में अनुभूत करता है–अपना जो नः-स्वभिक सुदृढ़ सुनिश्चित सुस्थिर समतामय अस्तित्व है उसे अनुभव नही करता अथवा नही कर सकता। स्वच्छ जलमें बादल के बाद बादल की छाया पड़ने से जलकी जैसी आ-कृति होती है, वैसे ही उस की आध्यात्मिक आकृति होजा-ती है। किन्तु बादल के बाद बादल की छाया पड़ने से स्वच्छ जलकी जो आकृति वा अस्तित्व है वह जैसे स्वच्छ जल की प्रकृत आकृति वा अस्तित्व नहीं है, भिन्न २ भा-वो के अधीन हुए मनुष्य की जो आकृति वा अस्तित्व है वह भी वैसेही मनुष्य की प्रकृत आकृति वा अस्तित्व नहीं है। किन्तु मनुष्य ज्यों ही लोभ, मोह, मात्सर्यप्रभृति स्थूल इन्द्रिय मूलक स्थूल प्रवृत्तियो के शासन को उलांघता है त्यो ही वह एक सुदृढ, सुनिश्चित, सुस्थिर, सुन्दर, सुनिर्मल, समान आकार का धारण झटपट ही करलेता है।

जगत् में कोई भी उस आकार का परिवर्तन वा वि-कार नही कर सकते। तब मनुष्य का आकार वा अस्तित्व मेघों की छाया से विमुक्त स्वच्छ जल के आकार वा अस्ति-त्व के अनुरूप वा समान है। अतएव समझा जा सकता है कि ब्रह्माण्ड में जो स्थूलत्व है वह क्षणस्थायी अवस्था मात्र है प्रकृत अस्तित्व नहीं है। अतएव ब्रह्म के आंशिक मायामय क्षणस्थायी रूप के ब्रह्म से ही उद्भूत वा प्रक्षिप्त होनेपर भी ब्रह्म तद्द्वारा दूषित नहीं होता, क्योंकि ब्रह्म नित्यतामय है

अत एव अनित्य द्वारा छारने का नहीं, एवं ब्रह्म उसके अधीन नहीं है वही ब्रह्म के अधीन है। इसका कारण यह है कि वह भी ब्रह्म की इच्छा से सम्भूत है—इन्द्रजाल जैसे ऐन्द्रजालिक का इच्छासम्भूत है वैसे यह भी ब्रह्म की इच्छा से सम्भूत है। एवं इन्द्रजाल जैसे ऐन्द्रजालिक के प्रकृत अस्तित्व को स्पर्श नहीं करता, वैसे वह भी ब्रह्म को स्पर्श नहीं कर सकता। वह कैसे स्थूल रूप धारण करता है वा स्थूलत्व प्रकाश करता है, यह वही जानता है। किन्तु चाहे जिस कारण से करे, वह जब अपने को लेकर आप ही इस रूपका धारण करता है तब और कोई बात ही नहीं हो सकती। दूसरे के बारे में 'भला बुरा' काम करना कहा जाता है। अपने को लेकर भला बुरा काम करने की कोई बात ही नहीं हो सकती। अतएव ब्रह्माण्ड में स्थूलत्व रहने पर भी ब्रह्माण्ड और ब्रह्म एक है इस बात के कहने में कोई दोष हो नहीं सकता। फलतः ब्रह्माण्ड यदि ब्रह्म को लक्ष्य करके कहे—सोऽहं—तो ब्रह्माण्ड सब बातों का सार ही कहता है।

हम में से जिनने हमारे शास्त्र नहीं पढ़े हैं, अंग्रेज़ी शास्त्र ही अधिक पढ़ा है उनके लिये यहां दो तीन बातों की मीमांसा करने की चेष्टा करते है। उनमें से कुछ कुछ कहा करते हैं कि यदि ब्रह्माण्ड ब्रह्म ही है तो ब्रह्माण्ड में जितने पदार्थ हैं सब ही ब्रह्म है। और ऐसा होने से तुम भी ब्रह्म, मैं भी ब्रह्म, वृक्ष भी ब्रह्म, पत्थर भी ब्रह्म, ईंट भी ब्रह्म—सब ही ब्रह्म। ऐसा होने से जगदीश्वर एक नहीं हुआ, जगत्

में जितने पदार्थ हैं उतने ही जगदीश्वर हैं। किन्तु इसकी अपेक्षा और हास्यास्पद बात हो नहीं सकती। जो ऐसा तर्क करते हैं वह ब्रह्म किसे कहते हैं सो नहीं जानते और सोऽहं क्या है यह भी नहीं जानते। वे यह नहीं जानते कि ब्रह्म एक ही पदार्थ है, विभाज्य नहीं है, एवं ब्रह्म केवल ज्ञान के द्वारा जाना जा सकता है चक्षु या अन्य किसी इन्द्रिय के द्वारा प्रत्यक्ष नहीं किया जा सकता। अतएव वे जब यह कहते हैं कि जगत् मे जितने पदार्थ हैं वे ब्रह्म हैं तब वे इन्द्रियातीत पदार्थों को इन्द्रियप्रत्यक्ष पदार्थों के अवस्थापन्न करते हैं। उनकी और एक भूल है कि जहां प्रकृत संख्या नहीं है वहां संख्याआरोप वा कल्पना की जाती है। जगत् में पदार्थों की संख्या है, स्थूल इन्द्रियद्वारा जगत् देखने हो ऐसा भ्रम हो जाता है। प्रकृत ज्ञानचक्षु से देखने पर जगत् में भिन्न भिन्न पदार्थ वा बहुसंख्याक पदार्थ देखे नहीं जाते, प्रत्युत भिन्न भिन्न पदार्थ एक ही पदार्थ के भिन्न भिन्न रूप आकार वा अवस्था जाने जाते है। आधुनिक सूक्ष्म और उन्नत विज्ञान ने भी इस बात की सूचना आरम्भ की है। अत एव ब्रह्म जैसे स्थूलचक्षु से देखने की चीज नही है ज्ञानचक्षु से देखने की चीज़ है, वैसे ही ब्रह्म के साथ ब्रह्म वह वा जगत् का सम्पर्क निर्णय करती वेर जगत् को स्थूलचक्षु से न देख कर ज्ञान चक्षु से देखना उचित है। ज्ञानचक्षु से देखने पर जगत् में एकाधिक पदार्थ नहीं दिखाई देंगे, एकाधिक ब्रह्म भी नही दिखाई देगा।

दूसरी बात, ज्ञानचक्षु को छोड़कर स्थूलचक्षु द्वारा

देखने पर भी जगत में जितने पदार्थ हैं उनमें ब्रह्म नहीं देखे जाते सोऽहम् इसका अर्थ यह है कि ब्रह्म जो पदार्थ है मैं (अथवा जगत्) भी वही पदार्थ है । यह इसका अर्थ नहीं है कि मैं ही ब्रह्म हूं । तो कैसे कहते हो कि ब्रह्म और ब्रह्माण्ड को एक पदार्थ कहने से तुम हम वृक्ष पत्ता घर बार सबको ही ब्रह्म वा जगदीश्वर कहना हुआ ? । मनस्वत समुद्र जो पदार्थ है एक छोटा जल भी वही पदार्थ है किन्तु ऐसा कहने से एक छींटा जल क्या समुद्र होगया ? एक छींटे जल में क्या समुद्र की तिमि तिमिङ्गिल खेलते हैं, समुद्र के तरङ्ग उठते हैं, समुद्र का महाप्रलय उद्भूत होता है ? एक अङ्गुलि जो पदार्थ है समस्त देह भी वह पदार्थ है । किन्तु इस से क्या एक अङ्गुलि देह है ? मन का एक भाव जो पदार्थ है, मन भी वही पदार्थ है । किन्तु यह कहने से मन का एक भाव क्या मन है ? तो फिर सर्वज्ञ सर्वशक्तिमान्, सर्वानन्द ब्रह्म जो पदार्थ है जगत भी वही पदार्थ है यो कहने से कैसे कहाजाता है कि तू मैं बैल घट पट एक २ सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान् सच्चिदानन्द ब्रह्म हुआ ? सोऽहम् का प्रकृत अर्थ समझने की चेष्टा न करने से ही ऐसा प्रलाप बका जाता है ।

जिनकी बात कह रहे हैं, उनमे से बहुत से यह कह बैठते है कि ब्रह्म अति महत् पदार्थ है । अतएव जब देखते हैं कि जगत् में मनुष्य को छोड़कर और कोई वा और कुछ प्रकृत महत् नहीं है, कोई प्रकृत महत्कार्य नहीं करता तो क्यों करके जगत् और जगदीश्वर का एकत्व स्वीकार

फिर क्यों जगत् के सकल पदार्थों को महत् कहें ? वह कहते हैं कि जो सब पदार्थ अचेतन हैं वह सब तो कोई काम करते ही नहीं, जो पदार्थ चेतन हैं उन सब में मनुष्य को छोड़कर और कोई महत्कार्य करता ही नहीं केवल आत्मसेवा में ही नियुक्त रहते हैं। यह क्या ठीक है ? जगत में क्या कोई एक ऐसा समय नहीं था जब यहाँ मनुष्य नहीं थे ? किन्तु उस मनुष्यशून्य जगत् ने ही क्या मनुष्य प्रसव नहीं किये ? यदि किए हैं तो क्यों कहते हो कि जगत् में जो मनुष्य नहीं हैं वह महत् कार्य नहीं करते वा कर सकते ? तुम आपत्ति उठाओगे मैं यूरोपीय विज्ञान का विवर्त्तवाद नहीं मानता था नहीं समझता। अच्छा वही सही। तुम मनुष्य हो—अतएव तुम महत् हो—यह तो मानो, यह तो समझो। किन्तु कहो तो, तुम जिनका आहार करते हो, अर्थात् जगत् में जो मनुष्य नहीं हैं, वे तुम्हारे देह में क्या उपकार करते हैं इसीलिये तुम जगत् में महत्कार्य कर सकते हो या और कुछ ? यदि यही है तो कैसे कहते हो कि जगत् में जो मानुष नहीं हैं वे महत्कार्य सम्पादन करते ही नहीं ? तुम जिस यूरोप की इतनी बड़ाई करते हो उसी यूरोप का विज्ञान आज क्या कहता है ? कहता है कि पृथिवी के कीटाणु-कीट, अणुपरमाणु क्षुद्र वृहत सचेतन, अचेतन सकल पदार्थ ही जगदीश्वर ने विपुल ब्रह्माण्ड के विशाल उद्देश्य-साधन में नियुक्त कर रक्खे हैं। तुम आत्मध्यान आत्मनिर्देश म-कन ब्रह्मज्ञानी* नहीं हो, मैं मन में जानता हूँ कि तुम

---

* साम्प्रदायिक अर्थ में इस शब्द का व्यवहार नहीं किया गया है।

जो करते हो वह जगत् का ही काम है. तुम्हारा जो उद्देश्य है, विपुल ब्रह्माण्ड का वही उद्देश्य है, अनन्त ब्रह्म का भी वही उद्देश्य है। तो तुम जानते नहीं हो कि अनन्त ब्रह्म की दृष्टि में तुम बालू के कण भी नहीं हो। तो तुम्हारे मन में यह नहीं है कि असीम अनन्त ब्रह्म का असीम अनन्त ब्रह्माण्ड की ट्रेन न मालूम किस असीम अनन्त उद्देश्य से तुम हम राजा प्रजा पर्यंत प्रान्तर लता पता पशु पक्षी, कीट पतङ्ग धूल कादा सब पदार्थों को समभाव से उसी एक उद्देश्य के साधक मानकर असीम वेग से अनन्त मार्ग पर छूट रही है। तुम क्या अब कहते हो कि जगत् में मानुष के सिवाय महत् और कुछ नहीं, मानुष व्यतिरिक्त महत्कार्य और कोई करता ही नहीं! तो तुम भारत के हिन्दू नहीं हो। "सोऽहं" भारत के हिन्दुओं की बात है। तुम तो भारतवर्ष के हिन्दू नहीं। और तुम क्या भारत, या युरोप, किसी देश के प्रकृत मनुष्य नहीं।

कई ऐसी आशङ्का करते हैं कि मनुष्य यदि अपने को ब्रह्म मानले, तो उसके अहङ्कार की सीमा ही नहीं रहेगी। हम कहते हैं, यह नहीं, मनुष्य जब अपने को ब्रह्म मानलेगा तो उस के अहङ्कार का नाश होगा। जो हिन्दू कहता है "सोऽहम्" 'वह मैं हूं' यह हिन्दू वास्तव में कहता है कि जगत में खाली मैं ही वह नहीं हूं, जो कुछ है सब वही है जहां सब ही ब्रह्म है वहां एक को ब्रह्म कहने से अहङ्कार वा अभिमान करने का अवसर वा उपाय कहां है? और जहां मनुष्य अपने को आपही कहता है—'सोऽहम्' वहां अहं

भाव तो होने ही नहीं पाता, फिर वहां अहता का स्थान कहां है ? भारत के साहित्य में भी इसका प्रमाण नहीं है। यूरोप में एक समय धर्म के नाम से अनेक अत्याचार और हत्याकाण्ड हो चुके हैं। प्रोटेस्टेन्ट और अन्यान्य धर्मसम्प्रदायों के अनेक महापुरुष मारे गये हैं किन्तु उनने आनन्द से प्राण विसर्जन किया है तथापि अपने२ धर्मविषयक मत को परित्याग वा परिवर्त्तन नहीं किया। उस बड़े इतिहास को पढ़कर विस्मित और चमत्कृत होते हैं। किन्तु उनके साहित्य में एक ऐसी बात पाई जाती है, जो भारतके साहित्यमें नहीं पाई जाती। वह बात यह है—उन सब महापुरुषोंने धर्म के नाम से धर्मच्युत होना अस्वीकार किया यह नहीं, किन्तु आत्मस्वाधीनता (individual judgment) की दुहाई देकर अस्वीकार किया। उस असाधारण वीरत्व और महत्व की जड़ में आत्म वा अहं दिखाई दे रहा है। हिन्दुओंके साहित्यमें प्रह्लाद की कथा वैसी ही कथा है—वैसी वा तदपेक्षा अधिक वीरत्व और महत्व की कथा है। किन्तु उस कथा में अहं वा "आत्मैव" का लेशमात्र भी नहीं है। उस कथामें विष्णु विद्वेषी हिरण्यकशिपु ही अहं वा आत्मैव की प्रतिमूर्त्ति है—प्रह्लादमें अहं वा आत्मा का बिलकुल अभाव है। प्रह्लादने अपने नामपर, आत्मस्वाधीनता के नाम पर सब यन्त्रणाओंको सहकर अन्तपर्यन्त वैष्णवधर्म धारण किया हो सो नहीं, विष्णुके नाम पर सब यन्त्रणा सहन करके उसने अन्त पर्यन्त वैष्णवधर्म धारण किया। जहां विष्णु ही सब है, वहां प्रह्लाद और क्या है ? विष्णुपुराणमें प्रह्लाद चरित्र पाठ

करने से मालूम हो जायगा कि यह बात सत्य है वा नहीं। इसी लिए हिन्दुओंके साहित्यमें, धर्म के इतिहासमें, महत्त्व और वीरत्व की कहानियोंमें अहं वा 'आत्मीय' की गन्ध भी नहीं—इधर पाश्चात्यशी यूरोप के साहित्य में, धर्म के इतिहास मे, महत्त्व और वीरत्व की कहानियोंमे अहं वा आत्मीय बड़ा ही प्रबल है। भारतके 'सोऽहं' ने भारत और यूरोपके बीचमे यह अपूर्व भेद उत्पन्न किया है, भारतको यौरुप की अपेक्षा इतना श्रेष्ठ कर दिया है। भारत का सोऽहं भारतके हिन्दुओं की बड़े गौरव की चीज है। मनुष्य वेही परब्रह्म है, एक हिन्दू को छोड़कर और कोई भी इतनी ऊंची भावना को भावित करने मे समर्थ नहीं है, और किसी को ऐसी बात सोचने का साहस है ही नहीं इस विशाल बातको मनमे धारण कर सके ऐसी मानसिक विशालता ही और किसी को नही किन्तु यह कहकर अभिमान नहीं किया जाता है। सोऽहं किसे कहते है, यह यदि समझ लिया जाय तो अभिमान किया ही नहीं जा सकता। अभिमान वा अहङ्कार के नष्ट हुए बिना कोई भी इस सोऽहं का अधिकारी नहीं होता। सूक्ष्मदर्शी महामति हिन्दुओंके सूक्ष्मतम अतिविराट् सोऽहं का अर्थ—प्रकृत ब्रह्मज्ञान प्रकृत आत्मज्ञान है, अपार्थिवमन, अपरिसीम साहस—सब का सामञ्जस्य, सब का महत्त्व, सब का एकत्व और अच्युत विश्वव्यापित्व निहित है।

इस हिन्दुओंके सोऽहं कहने से, हिन्दुओं के समान ब्रह्मज्ञानी, ब्रह्मदर्शी, ब्रह्मवक्ता, ब्रह्मारूढ़ हो, अपरिमित साहससम्पन्न विराट्मना मनुष्य पृथ्वीपर और कहीं भी देख नहीं देते।

गुलेरी

जयपुर। १४-४-०३

जातीय साहित्यालोचना की आवश्यकता

(गताङ्क १४ पृ ६० से आगे)

समाज के भाव को समझ कर जो लिखते हैं, कहा जा- सकता है कि वे समाज की नाड़ी जानकर औषध की व्यवस्था करते हे। हमारे हृदय के छिपे हुए भावों का झलकाना ही लेखक का काम है इसीसे उसे आनन्द मिलता है इससे ही पाठकों को आनन्द मिलता है।

जातीयसाहित्य और जातीयभाषा हम को जो सिखा- ते है वह हमारे अस्थिमज्जागत हो जाता है जिन शिक्षा की मोहिनी सूरत हमारी कल्पना मे भासित होती है वह जबतक हमारे साहित्य में स्थान न पाले तबतक हमारे समाज में उसका मूल्य नहीं यदि हम को यह अभाव जान पड़े कि हमारे साहित्यमे कुछभी सीखने लायक नहीं है तो उस के पूर्ण करने की व्यवस्था करनी होगी। अभावज्ञान ही उद्बोधन का जनयिता है। रोज रोजही यदि हमारी आकां- क्षा बढती जाय, तो हमारे साहित्य में अब जो कुछ है उससे हम कुछ नया भी जोड सकते हैं। तो हम सोचेंगे कि हमारी प्रकृति जातीय साहित्य के ग्रहण के लिए उपयुक्त हुई है। इससे हम देखते है कि जातीयसाहित्य रूप दर्पण में जातीयजीवन कैसे प्रतिबिम्बित होता है और वही जाती- साहित्य हमारे जातीय जीवन के गठन मे काम देता है। जातीयसाहित्य मे प्रतिफलित समाजचित्र मे कोई दोष दिखाई देने मे उस के प्रतिकारकी चेष्टा स्वभावसे ही हो सकती है योंही समाज की अवस्था निर्णय करने के लिए जातीयसाहित्यालोचना की बड़ी प्रधान आवश्यकता है।

(क्रमशः)

राजपूत और हम

अवश्य ही ध्यान देनेके योग्य होता यदि उनके "समालोचक" नामी लेखमें "अयोग्यताके कारण' 'गम्भीरता का नाम नहीं है' 'न्यायप्रियता का परिचय' कहीं यह वाक्य झूंठ मूंठ बाबू रामकृष्ण को प्रसन्न करने को तो नहीं लिखा गया" 'खूब अनादरके वचनोंमें इसका तिरस्कार किया था" "शायद बाबू रामकृष्णको खुश कर लेना चाहा हो" "साल भर बाद भी सुधरने के बदले और भी बिगड़ेगा" "दिखावे की सहानुभूति" "भगड़ियों का सा वाक्य" "बेतुका वाक्य" "झूंठ मूंठ साहित्यप्रेम ख्यालसे क्षत्रियोंकी निन्दा करना और बात है" 'समालोचक की अड़ बड़ बातोंपर ध्यानही न देना चाहिए' "समालोचक नामको कलङ्कित करनेवाले इस पत्र की ऐसी वाहियात बातें" "अपने समालोचक नामकी दूषित करना" इत्यादि मीठे वाक्यों के प्रयोग से उसकी गम्भीरता और योग्यता का परिचय न होता। हिन्दी पठित समाज को हम बधाई देते हैं कि उनके पुण्यबल से इस कलिकाल में ऐसे शिष्टपत्र विद्यमान हैं इस लेख का उत्तर देने को यह भी ऐसी भाषा और भावों पर उतर आते, किन्तु यह सब साहित्यके नियमों के विरुद्ध हैं।

हां, राजपूतके कुछ ऐसे विचार अबकेइस लेखमें प्रकट हुए हैं जो हिन्दी भाषाके प्रेमियों के जानने योग्य हैं और जिनके लिए उचित है कि राजपूत को एड्रेस दिया जाय। आशा है नागरी प्रचारिणी सभाके गृहप्रवेशोत्सव पर राजपूत को "वामधिकण्ठ-लारियेट" बनाया जायगा।

(१)समालोचक के अनुसार या तो हिन्दी भाषा के नावें उपन्यासों को कुछ न कहना चाहिए, या प्रशंसा करने वाले उपन्यासों की विरुद्धता की जाय।

(२)भारतजीवन ने समालोचक को वर्ष भर उलटी सीधी सुनाई, और राजपूतने इसकी पीठ ठोकी तो समालोचक को जन्मभर के लिए पहले पत्र का कट्टरशत्रु और द्वितीय का क्रीतदास होजाना चाहिए था।

(३)अबतक जो समालोचक नहीं बोला तो उसे अबभी अपनी जीभ मुह के भीतरही रखनी चाहिए। समालोचकने पहले कभी कुछ भी न लिखा इससे अब इसकी सहानुभूति दिखावेकी है।

(४)राजपूतने और आठ किताबें भी नगवाली हैं (धन्य। साधु !!) और उनपर भी लेख लिखे जायंगे, किन्तु यदि समालोचक में जादूगरकी उनकी मन चाहती आलोचना होजाय तो ही समालोचक का जन्म सफल है, नहीं तो—

"तस्याजननिरेवास्तु जननीक्लेशकारिणः"
"किं कृत तेन जातेन जननीक्लेशकारिणा"

(५)साहित्यविषयक पुस्तक होने के कारण, उपन्यासादि पुस्तकों से गाली हो तो भी, कोई उन के विषय में कुछ न कहै। समालोचक इस विचित्र सम्मतिको अपने पास ही रक्खे।

(६)राजपूत समालोचक के सम्बन्धमें निन्दाकी पुस्तकें लिखवाकर दिखाना चाहता है कि यह पुस्तके कैसी बुरी हैं। (कितना उदार और उपकारी व्यापार है !!)

(७) भविष्यत् में समालोचक नामको कलङ्कित करनेवाले इस पत्र की ऐसी वाहियात बातों पर राजपूतजी दृष्टि नहीं देंगे।

(आप अपने ग्राहक बढ़ाने की चेष्टा कीजिए, वा व्याह शादी का खर्च घटाइए, वस्तुतः इन वाहियात बातों पर दृष्टि न दें)।

अकलितमहिमानः केतनं मङ्गलानां कथमपि
भुवनेऽस्मिंस्तादृशाः सम्भवन्ति ।

समालोचक–सम्पादक।

ज़ाहिद के सिरपै जमाई तड़ाकसे ।
और हाथ मलरहे हैं कि अच्छी पड़ी नहीं ॥

"राजपूत" वीररस से रौद्ररस में प्रविष्ट होगया है। केवल इसी लिए की, हम "मोहमयी प्रमादमदिरा" पीकर पट्टू बान्धे किसी एक पक्ष में नहीं खड़े हुए हैं और मध्यस्थवृत्तिको रखनेका यत्न कर रहे हैं, या यों कहिए दोनों लड़ाकोंकी भली बुरी बातों को क्रमशः 'हां' 'ना' कहसकने के लिये, अपने मस्तिष्क को नहीं बेच चुके हैं, राजपूत हमारे विरुद्ध जेहाद की बहादुरी दिखाता है। किन्तु इस "गालिगुलौजी" ने राजपूत पर खूब ही असर किया है कोई है ! (राजन सइनें गुण घणा कैसे कहूं बनाय) सुनते थे कि सोम पान करके इन्द्र यह कहता था कि "मैं इस पृथ्वी को यहां रक्खूं या वहां" वा "मेरे मनमें आती है कि गौ वा घोड़ा दान करदूं" किन्तु उदार राजपूत गालीदान में कर्ण की पदवी पाना चाहता है मानों राजपूत अपने को हिन्दी सम्वादपत्रों का जगजीत मानता हो, या सारे साहित्य का

फैसला अपनाही काम मानता हो। राजपूत का उत्तर उसी के समान साधुशब्दों में दिया जासकता है और उस भाषाको उपयोग करने मे हम असमर्थ हैं। कहना यही है कि "ददतु ददतु गालीर्गालिमन्तो भवन्तः"।

१५ अक्टूबर के राजपूत की योग्यता की बानगी इनशब्दो में दिखाई देती है—" इसके लेखो का उत्तर देना अपना और पाठकों का समय नष्ट करना है," " व्यर्थ बातो का भी उत्तर" " ऊटपटांग छिछोरेपन की बातें" " ऊल जलूल बाते" इत्यादि। अनेक धन्यवाद हैं कि आपने अपने अभी दे रहते भी हमारे "सत्यप्रियता का भी परिचय" को माना है और हमारे प्रेरितपत्र से आपके चित्त में बड़ा प्रभाव हुआ है। सत्यप्रियता तो यदि आप चश्मा उतार दे तो और बहुत जगह दिखाई दे, किन्तु खुली चिट्ठी की बात को आप पचा जाते दिखाई देते है। खुली चिट्ठी का लेखक तो यह कहता है कि राजपूत उस गन्दी पुस्तक का प्रचार बन्द करावे, अस्तु यह बात पत्रप्रेरक के कामकी है हमारी नहीं। हां बाबू गोपाल राम ने तो यही लिखा है कि वह टिप्पणी उनकी लिखी नही है फिर "पसन्द न की" यह आप के मस्तिष्क से कैसे समा गया?

अन्त में राजपूत अपनी जातिकी की हिन्दी सेवा गाने लगा है (क्यों? अजमेरके पत्र को या किसी भाट को कह दिया होता और उसे सिरोपाव देकर लिखवा लेते कि हिन्दी राजपूतो की बांदी है) इन्द्रोऽपि लघुतां याति स्वयं प्रख्यापितैर्गुणैः।

हमारा तो यही निवेदन है कि यदि आपको "समालोचक की सम्पादक कर्त्तव्यकी विरुद्ध मतिगतिका अच्छी तरह पता लग" गया है तो बखुदा अपना काम करें, ग्राहक बढ़ावें, वा मादक निवारण करें, जिस विषय में आपका अधिकार नहीं है उसे न छेड़ें ।

तथापि हम हिन्दी पठित समाजसे अपील करते हैं कि हमारे सिवाय और पत्रों को राजपूत ने जो गालियां दी हैं उन्हें भूलना नहीं चाहिए । हमें तो गालियां खानेका शौक है किन्तु और पत्र इस उग्र भाषा को कब तक सहेंगे । यदि राजपूत फटके तो हमभी उसके विषय में कहना छोड़ दें ॥
त्वचेद्दोषमुरीकरोषि वयमप्येकान्ततो निःस्पृहाः ।

समालोचक—सम्पादक ।

आप लोग यहां क्यों आए हैं ? आप नहीं जानते, किन्तु मेघ गर्जन से आप से यह जो प्रश्न किया जा रहा है इस का उत्तर देने के लिए:— 'ईश्वर की इस पृथिवी में, इस कर्मक्षेत्र में, तुम क्या कर रहे हो, जहां कि जो काम नहीं करता वह मांगता है या चोरता है" ? तुम को धिक्कार है यदि तुम यह उत्तर दो कि "हम दक्षिणा और मालगुजारी ही वसूल करते हैं, और शिकार खेलते हैं" ।

कार्लाइल

प्रेरित-पत्र ।

सम्पादक महाशय !

सितम्बर की सरस्वती में जो "पृथ्वी" का लेख छपा है उसके विषयमे आप इन पंक्तियो को ध्यान दीजिए। यह लेख विवाद ग्रस्त विषयपर है। अभी तक कई धर्म संसार में विद्यमान हैं जो पृथ्वी को चपटी और स्थिर मानते है। विशेषतः आधुनिक सिद्धान्त हमारे जैन धर्म के बिलकुल विरुद्ध है। अतएव ऐसे विवाद ग्रस्त विषयोपर लेख नही छपने चाहिए।

भवदीय—एक जैन

*** जैन महाशय के इस मतसे हम सम्मत नहीं हैं यही नहीं उनके मत के हम बिलकुल विरुद्ध हैं। यदि वे, या और कोई हिन्दी जानने वाले जैन "दो चन्दा दुए सुज्जा" का वर्णन सरस्वती में लिख भेजें तो हम कह सकते हैं कि उस के छापने में सम्पादक को कोई आपत्ति न होगी। विज्ञान की विराट् उन्नति में किसी धर्मका इजारा नहीं है तथा प्राचीन वातों को सिद्ध करने या बचाने का उपाय उनका प्रकाशन है, न कि उनके विरुद्ध लेखोंको रोकना। योंही कई लोग "नागरीप्रचारिणी सभा" को "रमेशदत्त" के इतिहास का अनुवाद छपाने से रोकते है यह उनकी बड़ी भूल है। यदि रमेश बाबू का इतिहास दूषित है तो सच्चा इतिहास कहा है और कौन है? वह क्या दोषदर्शियों के सन्दूक मे बन्द है? दूषित ग्रन्थ के छपने पर तो उसका खण्डन भी हो सकता है, किन्तु उस ग्रन्थ को छापने से रोकना बड़ी भारी भू

ल है । यदि वेवर साहव के ग्रन्थ का भाषानुवाद न छपा होता तो प० माधवप्रसाद उसका खण्डन कहां से करते? रमेश बाबू के इतिहास के विरोधी इस बात को भूलते हैं कि रमेश बाबू स्वदेशी हैं, उनके लेख को दूषित कहना भी ज़रा काम रखता है । ना० प्र० सभा को कोई आपत्ति न होगी यदि इनके इतिहास का खण्डन कोई छपा दे । किन्तु इस लिए कि कुछ हठी लोग किसी ग्रन्थ को बुरा समझे, उसे छपाना ही नहीं वा उस विषयपर लिखना ही नहीं, यह कोई बात नहीं । विज्ञान हठधर्मी से नहीं चलता, चलता है खोज से, अध्यवसायसे ।

समालोचक—सम्पादक ।

धर्म सम्बन्धी दिवालियेपन को बहुत दिनों से सहते आये हैं, पही अब रुपये का दिवालियापन होगया है और असह्य होगया है । कार्लाइल

मनुष्यों के सम्मिलित शब्दों का बड़ा प्रभाव है, वह शब्द उनकी वृत्तियों का, उनके विचारों का उच्चारण है । कालदेव के इस जगत् में जितने शब्द और जितनी छाया मिलती है उनमें यही सबसे प्रधान है । कार्लाइल

———

खेल भी शिक्षा ही है।

(सितम्बर १९०३ के कंटेम्पोरेरी रिव्यू में डाक्टर हचेलन के लेख का सारांश)

(समालोचक-सम्पादक-द्वारा संक्षिप्त और परिवर्त्तित)

प्रकृति कितनी उजाड़ने वाली है यह देख कर सबको ही विस्मय होता है,—कई जीव मरते हैं, नदियां कई मील मट्टी को बहा कर ले जाती हैं, लड़ाई में, मद्यपान में, जूआ में कई लोगों का सर्वनाश होता है, यह प्रकृति का "उड़ाऊपन" बड़ा भारी कलङ्क है। किन्तु ध्यान देने से प्रतीत होगा कि यह दूषण नहीं भूषण है। मृत्यु एक प्रकार की किफायत है जिससे टूटे हुए प्रयोग, प्रकृति की हंडिया में फिर गढ़े जाकर, बढ़िया रूपों को धारण करते हैं; नदियों की बहाई मीलों मट्टी समुद्र के तले जाकर अन्त को "डेल्टा" के रूप से मनुष्य जाति के लिए नये निवास और क्षेत्र बनाती है, युद्ध का "दिव्य" वीरता प्रभृति गुणों का पैदा करने वाला है; मद्यपान अयोग्यों को टालता है और जूआ राज्यस्थापक, खोजी व्यापारी के कर्मों का कुछ बढ़ा हुआ नमूना है। हानि और लाभों में बहुत कम होने पर भी उनकी जननी है।

योंही हमारे जीवन में "बहुत सा भाग वृथा जाता है" यह पुकार सुनी जाती है। जीवन में हम चलते हैं, सोचते हैं, करते हैं, किन्तु क्या जीवन का दो तिहाई अंश देह-

अंजन को चलाने के लिए भोजन—कोयले के सम्पादन में नहीं व्यतीत होता ? हम जीने के लिए खाते ही हैं, किन्तु खाने के लिए भी जीते हैं । खाना, शक्ति पाना, उसी शक्ति के लिए फिर खाना—इसी चक्र से हम घूम रहे हैं।

दार्शनिक लोग सदा ही इस बात पर पुकारते आए हैं कि मनुष्य जाति का कितना ही समय इस जड़ देह को खिलाने पहराने सजाने में व्यतीत होता है, किन्तु अब हम जानने लगे हैं कि इस गधे की तन्दुरुस्ती से ही मानसिक शक्ति और आध्यात्मिक गुण प्राप्त होते हैं, तो अच्छे फल फूल पाने के लिए भद्दी जड़ों में जल देना क्या मूर्खता है ? यों ही बालकों का निसर्ग (पशुवृत्ति) है कि बिना प्रयोजन के कामों में, खेल में समय बिता दें, और गर्वान्ध धार्मिकों की दृष्टि में टहलना फिरना शैतान का काम है, बैठकर स्त्रोत्रपाठ करना जगदीश्वर का भाग है । निसर्ग बलात्कार का शत्रु है । धर्माचार्य, पाठक और रटाने वाला सब वही चाहते है जो बालक कभी नही करैगा, अर्थात् बैठकर पढना ही पढ़ना । भला दुनिया एक सराय है, यहा से दूसरी जगह जवाब देही के लिए जाना है, तो क्या इस छोटे से जीवन को यों खो दिया जाय ? हाय रे ! अब इन अधिकारों की नहीं चलने पाती ।

सदा से मानते आए हैं कि मन बुद्धि और इन्द्रिय सदा अच्छी बातो के बने बनाये शत्रु है किन्तु अब लोग जानने लगे हैं कि प्रवृत्ति का हट ही मनस्ताप का बीज है, निसर्ग की बलवती इच्छा ही उस कार्य के भलेपने का लक्षण है ।

(क्रमश.)

व्यय *

(प० श्यामविहारी मिश्र एम ए और प० शुकदेवविहारी मिश्र बी ए लिखित)

आज हम एक ऐसे विषय पर अपनी अनुमति प्रकट करने वैठे हैं कि जिस का विचार न्यूनाधिक रीति पर सभी मनुष्यों को अवश्यमेव करना पड़ता है। एफ ए. वाकर ने अपने अर्थशास्त्र नामक ग्रन्थ में लिखा है कि इस विषय (व्यय) पर सर्वसाधारण का ऐसा विचार रहता है कि वे विना कुछ लिखे पढ़े भी उस में पूर्ण ज्ञाता हैं परन्तु वास्तव में इस शास्त्र के सिद्धान्तों पर ध्यान देने से ज्ञात होता है कि प्रति सैकड़े ९९ मनुष्यों पर अपव्ययी होने का अभियोग लगाया जा सकता है। हम लोग समझते हैं कि द्रव्य का प्राप्त करना मात्र दुस्तर है परन्तु उस का व्यय एक अत्यन्त सरल विषय है जिस में प्रत्येक मनुष्य को स्वतन्त्रता-

---

* इस लेख में हमै परवश बहुत ऐसी बातें लिखनी पडी हैं कि जिन्हें पढ़कर कतिपय मनुष्य हम पर बहुत ही अप्रसन्न होंगे अनेको गालियां देने लगैगे और हमें मनमानी उपाधियो से भी विभूषित कर० देगे ऐसे महाशयों से यही प्रार्थना है कि हमारे भाव को समझ कर तेब कुछ गड़वड़ मचावें हमने जो कुछ लिखा है वह स्वार्थ एव ईर्षा वश नहीं वरन देशहितार्थ। पर—
"इतनेहु पर करिहैं जे शंका। मेहिते अधिक ००००००००००"।

पूर्वक अपनी ही इच्छानुकूल चलने पर छोड़ देना चाहिए। परन्तु यह अनुमति किसी अंश में भी माननीय नहीं। सुव्यय का विषय यदि उपार्जन के समान ही नहीं तो उस से कुछ ही कम कठिन है। अपव्यय से न केवल इतनी हानि होती है कि उतना द्रव्य निष्टी हो जाता है बरन यह भी है कि वह आगामि उपार्जन का बाधक बन जाता है। यदि हम हट्टे कट्टे भिखारियों को दान न दें तो उतना धन व्यर्थ न हो यह तो स्पष्ट ही है परन्तु वह सब अपने उदर पालनार्थ कोई न कोई काम भी करें और देश में उतनी द्रव्योत्पादक शक्ति बढ़ जाय। जांच से जाना गया है कि हिन्दुस्तान में कम से कम ५२ लाख मनुष्य ऐसे हैं कि जिन की शारीरिक दशा बिलकुल दुरुस्त है परन्तु जिनका पेशा ही केवल भीख मांगना है! ये मनुष्य यदि काम करें तो साल भर में भारतवर्ष की आय कम से कम १५—२० करोड़ मुद्रा बढ़ जाय। पर नहीं इन लोगों को "दाता भला करे" यही परमपुरुषार्थ समझ पड़ता है। हराम का पैसा जिस मनुष्य को मिलने लगता है वह अवश्य ही किसी काम का नहीं रह जाता, सो ऐसे महाशयों को कहना ही क्या है? कहना तो है उन अन्धे, दानी कहलाने वाले मूर्खों को जो इन्हे छकाते हैं। यदि एक मनुष्य के खाने का व्यय केवल चार पैसे रोज मानलें (यद्यपि भिखमंगों को इस देश में कम से कम दो तीन आना प्रतिदिन अवश्य ही मिल जाता है) तो भी ये ५२ लाख संडे कम से कम १२½ करोड़ रुपया प्रतिवर्ष डकार जाते हैं॥ यदि यही रुपया यहां की

विद्या एवं शिल्प वाणिज्य की उन्नति में लगाया जाय तो क्या भारतवर्ष का यही हाल रहे जो आज दिन हम लोग देख रहे है ? परन्तु यहा सुनता कौन है ! कुछ भी बोले कि "पश्चिमी सभ्यता का चश्मा लगाए हुए" होने का शोर मचने लगा ! और गालियो की बौछाड़े होने लगीं ! ! अभागे भारतवर्ष ! तेरी उन्नति का समय, यदि ऐसा समय तेरे भाग्य में पुनः बदा होगो, अभी बहुत दूर है !!! अस्तु द्रव्य को श्रुतायुध वाली गदा * के समान समझना चाहिए कि जो युद्धकर्त्ता पर प्रक्षेपित करने (अर्थात् सुव्यय में लगाने) से शत्रु सहार करती (अर्थात् देश के दुख दरिद्र को मार गिराती) है परन्तु अयुद्धकर्त्ता पर छूटने (अर्थात् अपव्यय में उठने) से केवल यह नहीं कि शत्रु सहार न करै बरन लौट कर प्रक्षेपक (अर्थात् देश) का ही विनाश कर देती है (अर्थात् उस की आगामि द्रव्योत्पादक शक्ति घटा देती है) यही कारण है कि मरणावस्था में देवव्रत भीष्म पितामह ने अपने प्रियतम पौत्र युधिष्ठिर को यह उपदेश दिया था कि सदैव अपना आयव्यय सयत्न सुनते रहना ।

वास्तव में व्यय और आय में बड़ाही घनिष्ठ सम्बन्ध है, क्या कारण है जो अकेला इङ्गलैण्ड जो वर्गफल में केवल अवधदेश का दूना होगा, समस्त एशिया से पचगुनी द्रव्योत्पादक शक्ति रखता है ? यह कह मारना कि आजकल उस का सितारा बुलन्दी पर है नितान्त वृथा है । परमेश्वर उन्हीं की सहायता करता है जो स्वयं अपनी सहायता

---

* इसका हाल महाभारत द्रोण पर्व में वर्णित है ।

करते हैं अर्थात् जो उद्योगी हैं । क्या वहां सहस्रों कार्या-
लय किसी दैवी शक्ति द्वारा स्थापित हो गये हैं ? जो
जापान सन् १८५३ ई० में १३ वीं—१४ वी शताब्दी (middle ages) की सभ्यता रखता था वही आज केवल ५० वर्ष
के परिश्रम से सभ्यता के सर्वोच्च शिखरपर चढ़गया है । एक
वह समय था कि बंगला के एक प्रसिद्ध कवि ने लिखा था
कि "धर्म देश अरु चीन असभ्य जपान" और ५० वर्ष ही
में उसी कवि के जीते जागते जापान ऐसा बलशाली हो
गया है कि जिससे बड़े २ यूरोपियन देश तक प्रकम्पित है !
यदि हम एकबार विचारे कि इन सब बातों का क्या का-
रण है तो हमें स्पष्ट ज्ञात होजायगा कि यह उन्नति केवल
कुरीतियो के सुधार और ऐसे व्यय करने से हुई है कि जि-
ससे देश की उपजाऊ शक्ति बढ़ती है, परन्तु आप से कोई
क्या आशा रक्खे ? देशहितैषियों की अनुमति पर गमन क-
रने की बात दूर रही आप ऐसे मनुष्यो का गालियो से स-
त्कार करते है । इस कथन का यह तात्पर्य नही है कि प्र-
चलित रीतियों के पक्षपाती लोग देशहितैषी होते ही नहीं,
वेभी अवश्य देशहितैषी होते हैं परन्तु उनमें से अधिकांश
महाशय कदाचित् इस बात को कम विचारते है कि "पहले
आत्मा और तब परमात्मा"—इस मे सन्देह नही कि साधु
महात्मा पृथिवी मण्डल को तुच्छ समझते है पर हम लो-
गो की यह भारी भूल है कि पृथ्वी के कामो मे लगे रहने
पर भी हम यह बहाना करते है कि हम धर्म के सामने इसे
कुछभी नहीं समझते । ऐसा कहना निरा झूठ है । थोड़ी २

बातोंपर झूंठ बोलना, साधारणतः सत्य का अभाव, अकारण एवं अनुचित क्रोध, महान् लोभ, ईर्षा इत्यादि इत्यादि तो हम लोगोमें कूट २ कर भरे हुए है और फिर भी पूर्वोक्त बहाने करना हमी लोगो का काम है। साधारण मनुष्यगण चाहे जितना कहें कि हम धर्म के सामने और सब बातो को नितान्त तुच्छ समझते है पर हम निडर होकर कहेंगे कि ऐसा कहना एकदम झूठ है। केवल वास्तविक महात्मा लोगो को ही ऐसा कहना फबता है और शेष लोग अपने मुह मियामिट्ठू भले ही बना करें, बस ऐसीदशा में देशहितैषी वही है जो यह विचारते है कि अन्य देशों के कला कौशल के सामने स्वदेश को रसातल न पहुंचने देना चाहिए, जिन कारणो से हम लोग अन्य देशो से कम है उन्हे हटाना चाहिए और स्वदेश को उन्नतावस्था मे पहुंचाने का पूर्ण उद्योग करना चाहिए। हरबात में 'धर्म, धर्म" के चिल्लाने वालों का किया यह न होगा। लोभ, ईर्षा, क्रोध, असत्यता इत्यादि में पडना भी तो महा अधर्म की बातें है पर इन मे फसने वाले से कुछ भी न बोलकर आप कुरीतियो के सुधारको ही पर क्यो बिगडते हैं? आपकी ऐसी दशा देख आप के प्रसिद्ध समाचारपत्र तक अपना यही कर्तव्य समझते है कि रानडे, भांडारकर प्रभृति तक की अनुमतियों का झूठा खडन करके आप की भूलो को चिरस्थायी बनावें! समाचारपत्र वाले भी देखते है कि यदि हम सत्य२ बातें सुनाने लगें तो हमारा पत्र इतना काहे को चलेगा! भला पाच सात सहस्र की वार्षिक आय को नष्ट करना

कौनसी बुद्धिमानी की बात है ? क्या ये लोग भी सिवाय ठकुर सुहाती के और कुछ लिखते ही नहीं !! प्रचलित रीतियों का अच्छा बताना ये लोग यहांतक अपना कर्त्तव्य समझते हैं कि इस बार होली के अवसर पर एक सुप्रसिद्ध पत्र ने कबीरों का गाना तक युक्ति संगत और उचित बतला दिया !!! उसकी समझ में वसन्त ऋतु अपना प्रभाव सभी पर जमाती है सो यदि कबीरें गा कर उसका मद न उतार दिया जाय तो मनुष्य साल भर तक मस्त रहकर न जानें क्या २ कुत्सित कर्म किया करें! सम्पादकजी को यह भी न सूझा कि विशेषतः निम्न श्रेणी के लोग ही कबीरें गाते हैं सो उपरोक्त उक्ति लिखना अनुचित है!! इससे क्या ? एक प्रचलित रीति का उन्हों ने युक्तियुक्त होना तो "सिद्ध कर दिया" !!! अस्तु।

एकबार जापानकी ओर ध्यान दीजिये। वहां खृष्टीय सन् १८५३ में अनेकानेक छोटे छोटे स्वतन्त्र डेमियो लोग थे जिन्हे राजा कहना अनुचित न होगा और जिन में प्रायः समस्त जापान विभाजित था। इन डेमियो लोगों पर जापानीय सम्राट् मिकाडो का नाम मात्र का अधिकार था। जापानके कुछ नव युवक यूरोप में परिभ्रमणार्थ गए और वहां का राज्य प्रणालियों को देख कर उन का यह विचार हुआ कि जापान में जब तक छोटे २ राजे वर्तमान रहैंगे उसकी पूर्ण उन्नति कदापि नहीं हो सक्ती है अतः स्वदेश लौट कर इन्हों ने उन डेमियो लोगों (राजाओं) के विरुद्ध आन्दोलन करना आरम्भ कर दिया। स्मरण रहे कि ये नवयुवक इन राजाओं

के विरोधी नहीं वरन जापान के हितेच्छु थे उन के आन्दोलन का फल बड़ाही सन्तोषजनक हुआ क्योंकि डेमियो लोग उन पर क्रुद्ध न होकर उन की निष्पक्षपातता समझ गए और सभों ने यही निश्चय किया कि उन "आंखो पर चलायती चश्मा चढाये हुए नवयुवको" का कथन हितकर और माननीय है, सो बिना किसी लड़ाई झगड़े के उन लोगों ने अपना अपना राजपद सम्राट् मिकाडो को समर्पित कर के स्वय उस की साधारण प्रजा की उपाधि ग्रहण की ! धन्य है ऐसी देशप्रियता और स्वार्थत्याग को !! जिस देश में ऐसे पुरुष वर्तमान हो क्या उस का भी कभी अधःपतन हो सकता है? सो उसी समय से जापान ने दिनदूनी रातचौगनी उन्नति की । विचारने से ज्ञात होगा कि इन डेमियो महानुभावो ने एक प्रकारका सर्वदान सा किया जो हमारे यहा अनेक मनुष्य किया करते हैं अन्तर केवल रीति हीमें है । यहा सर्वदान करने में दानी अपना सर्वस्व किसी ब्राह्मण देवताको समर्पण कर स्वयं सपत्नीक किसी से एक धौतवस्त्र माग कर निकल जायगा । अब यह ब्राह्मण महाशय कदाचित् यही करेंगे कि उस रुपये को नाना प्रकार के अपव्ययो में लगावैं पर मान लीजिए कि वह ब्राह्मण एक विचारशील पुरुष है तो भी एक धनी निर्धन होगया और एक निर्धन धनी । इस से विशेष उक्त दान से देश के लिये क्या परिणाम निकला ? तिस पर भी दान देने वाला प्रायः ऐसा होता है जो द्रव्य को उत्तम रीति पर व्यापार में नियोजित कर देश की उपजाऊ शक्ति बढ़ा सकता है पर दानपात्र विशेषतः इस का उलटा । कभी

कभी इस के विरुद्ध घटनाएं भी देखी गई हैं। बाबू जी भोंसला से पूना का सुविशाल राज्य दान द्वारा पाकर पेशवा बालाजी विश्वनाथ और उसके वंशजों ने उसे बड़ी ही योग्यता से चलाया और ब्राह्मणों की राज्य सञ्चालन में योग्यता भलीभांति स्थापित कर दी। परन्तु ऐसे २ उदाहरण बहुत कम पाए जाते हैं और विशेषतः सर्वदान पाने वालों में निकम्मे लोग अधिक होते हैं फिर इन सब बातों को जाने दीजिए। एक मनुष्य ने सर्वदान किया और दूसरे ने पाया पर इस से देश का क्या लाभ हुआ ? देश का लाभ केवल द्रव्योत्पादक शक्ति के बढ़ने में है। जापानी डेमियो लोगों ने सर्वदान कर के देश का हित साधन किया। यदि वे अपने अपने ताल्लुके एक एक ब्राह्मण को दे देते तो जापान में कदाचित् अब तक लोग बाज़ारों में दिगम्बर रूप ही फिरते होते * दानी हमारे यहां भी हैं जापान से क्या किसी देश से घट कर दानी यहां नहीं हैं राजा हरिश्चन्द्र, बलि, परशुराम और कर्ण ऐसे दानी यहां हो गए हैं और आज कल भी बड़े २ दानी हमों में वर्त्तमान हैं। हमारे ही विषय में सुप्रसिद्ध न्यायाधीश मेन साहब ने कहा है "In other countries gifts try to clothe themselves with the semblance of a sale. Under Hindu Law, sales claimed protection by assuming the appearance of a gift" अर्थात्

(क्रमशः)

---

* सुनते हैं कि जापान मे लोग नंगे फिरा करते थे। जब मिकाडो का राज्य पूरे देश पर होगया तब उन्होंने नंगे फिरने वालों पर दण्ड की व्यवस्था की और तभी यह घृणित रीति बन्द हुई।

मालती

श्लोक।

(१)कैसी फूली उपवन–लता मालती चारु–गधा ?
छोके सत्ता, सुरभित किया, गध दे वायु गया ॥
शोभा भारी निरख इस की कौन ना मोह पावे ?
हा हा ! ऐसे शुभ समय में भृंग क्यों छोड जावे ! ॥

(२)देखे प्यारी निशि दिन अहा ! बाट सोत्कठ भारी,
दुःखी होके घन बिच रही सो सके धूप वारी ॥
तो भी आया भ्रमर न अभी लुब्ध जो था स्वतंत्र,
हा हा ! कैसा विधि अदय तू ! की त्रिया अन्य–तन्त्र ॥

(३)अब रवि कुसुमों को रोज इसके सुकावे,
पवन सुरभि लेके दूर से भाग जावे ! ॥
जलद बरस भारी खूब इसको रुलावे,
पति-बिन अबला को क्यों न कोई सतावे ? ॥

(४)मधुकर अब आया मूढ सर्वस्व खोया,
विगत–कुसुम–पत्रा मालती देख रोया ! ॥
अब सुरभि कहां है ? पेड़ सूका खड़ा है !
पति–विरह बुरा है, प्राण–दाही बड़ा है ॥

(५)स्त्री की शोभा पति है,
शोभा पति की स्वकीय नारी है ॥
अन्योन्य–भाव ऐसा,
नैसर्गिक बन्द–महोपकारी है ॥

किशनगढ़
२५–१०–०३

शिवचन्द्र बलदेव भरतिया ।

गुण दोष के सम्यक् विचार का नाम समालोचना है। जो सज्जन सद्विचारपूर्वक समालोचना करते हैं वे रत्न-परीक्षक के समान केवल अपनी उन्नति के ही सम्पादक नहीं हैं, वरन् उस व्यापार के भी उन्नायक और साधक हैं जिस में उनकी विवेचना शक्ति का आधिपत्य है। सुदर्शन ३। २

समालोचक में जबतक पूर्ण विद्वत्ता और गम्भीरता न हो तब तक वह समालोचना के योग्य नहीं समझा जा सकता। राजपूत ३०। ९। ०३

* सम्पादकीय टिप्पणियां *

सौथपोर्ट के वृटिश एसोसिएशन में सर जे. नार्मन लाकयरके व्याख्यान का पूरा अनुवाद राजस्थान समाचार में निकला है। उससे जाना जाता है कि प्राकृतिक पदार्थों के सिवा प्रजाकी मानसिक शक्ति का बढ़ाना बड़ा उपयोगी है और यह शासकों का काम है। इसलिये राष्ट्रसम्बन्धी विषयों में विज्ञान की सम्मति आवश्यक है और इसलिये ही उक्त सभा वैज्ञानिकों की पार्लेमेण्ट बनती है। अमेरिका में १३४ विश्वविद्यालय हैं, जर्मनी में २२ इटलीमें २१ इङ्गलैण्ड में १३ और भारतवर्ष में ५, यही नहीं, जर्मन सरकार एक विश्वविद्यालय को इतना धन देती है जितना वृटिश द्वीपों के सारे विद्यालय पाते हैं। अतएव २६० करोड़ रुपये के सूद से ८ विश्वविद्यालय, कई अध्यापक और प्रबन्ध बनाकर फीसका पांचवां हिस्सा ही रक्खा जाय।

भारतवासी इतना तो साहस नहीं करते कि जितना फौजमें व्यय होता है उतना शिक्षा के लिये मागें, किन्तु वे युग युग कृतज्ञ होगे यदि ब्रोडरिक साहब जितना रुपया एफ्रिकाकी फौज के लिये मांगते थे उतनाही विद्याविभाग में हिंदुस्तानियो को दिया जाय और फीस बढ़ाकर उच्चशिक्षा के द्वार बंद न किये जायं।

※ ※
※

बड़े लोग कहते आये हैं कि दान के घोड़े के दांत नहीं देखने चाहिये, किन्तु स्काटलैण्ड के निपुणजन इस नियम को नहीं मानते। एण्ड्यू कार्नेजी नामक धनीने स्काटलैण्डकी यूनीवर्सिटियों को २।३ करोड़ का दान दिया है। इसपर नेशनल रिव्यू कहता है कि इस दान से स्काटलैण्ड का मानभङ्ग हुआ है और उसके वासियों की स्वतन्त्रता कटगई है। विश्वविद्यालय कार्नेजी के गुलाम बनजायेंगे, विना उसकी आज्ञा के सुई भी न हिलासकेंगे। विना काम के वैज्ञानिक, लगड़े धर्मशास्त्री और विक्षिप्त साहित्यवित् टीड़ीदलकी भांति देशको छालेंगे। अभागे कार्नेजी! यदि तुम अपने दान का शतांश भी इस देशको देते तो सदाके लिये तुम्हारा स्तोत्रपाठ होता।

स्काटलैण्ड में शारीरक शिक्षा के विषयमें एक सरकारी कमीशन बैठी थी। उसने कहा है कि स्काटलैण्ड में विद्यार्थी वास्तवमें दुर्बल होते जाते हैं। आयर्लैण्ड से द्विगुण विद्यार्थी दवाई लेते हैं और विद्यार्थियो मे से दो तिहाई दवाई भी नही पाते। और भारतवर्ष में?

* *
*

बालक बालिकाओं को साथ साथ पढ़ाने के कई विद्वान् इस लिये विरोधी हैं कि इससे चरित्रगठन में शिथिलता होजाती है । टौली साहबने ६० बालक और ५० कन्याओंको साथ पढ़ा कर यह निश्चय किया है कि बालिकाओं और दाइयों के होने से बालको में सभ्यता और भलाई आगई और कन्याओं में दृढ़ता आत्म–निर्भरता और ज्ञान बढ़ा । बालकों ने स्त्रीजातिका आदर सीखा। "तुण्डे तुण्डे सरस्वती"

* *
*

आषाढ़ का सुदर्शन भी निकल आया है और अपनी प्राचीन कीर्त्तिके अनुसार अच्छा है । अब के तवल्कारोपनिषद् के एक मन्त्रकी विस्तृत टीका दी गई है । यदि सम्पादक सब उपनिषदो की ऐसी टीका बना दें तो इससे अच्छी बात और क्या हो सकती है किन्तु एक शर्त है । वह यही कि यह टीका भी वेबर के भ्रम वा दर्शनशास्त्र की तरह अधूरी न छोड़ी जाय । उपन्यासों के मतमें सम्पादक बहुत कुछ सम्हल गए हैं और मालूम होता है कि प्रेरित लेखों के विचारों के पक्ष करने में, निर्दोष होने पर भी, उन्हें वृथा ही लोगोका कोपभाजन होना पड़ा है । अबतो मामला इतना सुधर गया है कि एक equation समीकरण में ठीक हो सकता है । यदि देखा जाय तो प० माधवप्रसादका कथन भी ठीक ही है, उपन्यासों की समालोचना या जलाने बहाने में जो खोखलपन होरहा है और जिस प्रकार हिन्दीपत्र सम्पादकों ने एक तार पर अलापते अलापते उसे श्रुतिकटु

बना दिया है उसको देखते, उस जोशको ठण्डा करने के लिए सुदर्शन का लेख समष्टिरूप से (पृथक् पृथक् नहीं) ठीकही है। अस्तु, पं० माधवप्रसाद ऐसी बातों से अधीर न हों। सुदर्शन का चौथाई अंश और एक चित्र महामण्डल के अनन्त झगड़े को दिया गया है। ये लेख और चित्र किसी समाचार पत्र की टेसू झेंझी संख्याकी शोभाबढ़ाते। साहित्यसेवी महाशय को अब सब लोग पहचान गए हैं और हम उन्हें पहचान कर बहुत दुःखी हुए है। हमें यह आशा न थी कि काशीके एक सज्जनने २ वर्ष १० महीने पहिले जो "साहित्य" नामक लेख लिखने की प्रतिज्ञा की थी उसे एक साहित्यसेवी यों निबाहेंगे। किन्तु भारतमित्रने इस विषयपर अपना पुराना उफान सुदर्शन पर छांटा है। प० माधवप्रसाद अपने चित्तमें इस बातके लिये बहुत दुःखी होंगे। इस समुद्रमन्थन का विष निकल चुका है और अब उचित है कि कोई शङ्कर इस विष को पीजाय और दोनों दल समुद्रमन्थन से बाज आवे। हम भी इस विषय के अपने लेखको न छापते किन्तु कई कारणों से हमने उसे यथावत् रहने दिया।

* * *

हिन्दी संवाद पत्रो की इस अशान्ति के तुमुलकी भनक हिन्दी बङ्गवासी के कानो तक भी पहुंची है। "जिस अदालत का मैं मुन्सिफ हूं वह दीवानी है"

* * *

बौद्धों के काल में भारतवर्ष--प्रोफेसर रैसडेविस ने, राष्ट्रकथामाला मे इस नामका एक ग्रन्थ गुम्फित किया है। उसमें

कई विलक्षण बातें है जिनके सुनने की हमें (प्रोफ़ेसर सा-हब के से पाली विद्वान् से) आशा न थी । प्रोफेसर साहब के अनुसार ब्राह्मणों के लेख विश्वासपात्र नहीं हैं । सूत्र यु-द्धोंमें, कामोमें उनने अपने ही को प्रधान बताया है । किन्तु उनकी बातें देशभरकी बातें नही हैं, बौद्धधर्मसर्वसाधारण के उद्योग का फल है और राष्ट्रीय उन्नति मे ब्राह्मण पृथक् रह गए थे । जैनो और बौद्धो के ग्रन्थ, राजपूतो के लिखे हु-ए हैं और इस ग्रन्थ में उनके ही लेख अर्थात् पाली ग्रन्थों से बुद्धभगवान् के निर्वाण से लेकर कनिष्क पर्यन्त काल का ऐ-तिहासिक चित्र देनेका यत्न किया गया है । इससे प्राचीन इतिहासमें कई अन्तर लक्षित होते है । ब्राह्मणो के अनुसार तो "ब्राह्मणों के अधीन स्वतन्त्र राजा" यही भारतवर्षीय राज्यप्रणाली थी किन्तु पाली ग्रन्थो के अनुसार राजतन्त्र के साथ साथ ही प्रजातन्त्र भी पाए जाते हैं (अवश्य ही बौ-द्धधर्म सर्वसाधारण की समानता और प्रजातन्त्र के जन्म का कारण हुआ होगा)। चक्रवर्ती अशोक के शिलालेख और चरित्र बौद्ध ग्रन्थो में पाए जाते हैं किन्तु ब्राह्मणग्रन्थो में उसका नाम भी नहीं है (कोई बतावे तो अशोक के पीछे के ब्राह्मण ग्रन्थ कौनसे हैं ?) उसने ब्राह्मणो का भूसुर हो-ना मिटाया था । धर्मविषय में प्रोफेसर साहब कहते हैं कि ब्राह्मणग्रन्थों में प्रजा का धर्म नहीं है किन्तु ब्राह्मण, प्रजा पर जो धर्म चिपकाना चाहते थे वही धर्म लिखा है, ब्रा-ह्मणेतरों के साहित्य में वैदिक देवाओं का और अधिक खर्च कराने वाले यज्ञों की चर्चा नहीं है (यूरोपीय आचार्य

मान बैठे हैं कि ब्राह्मणशत्रुओं का कहा सत्य है, और ब्राह्मणोंका मिथ्या । इसी तरह जब यह कहा जाता है कि ब्राह्मणो ने ईर्षा वा घृणासे बौद्धोंका वा प्रजाका विश्वास नही वर्णन किया वैसे ही यो क्यो नहीं कह सकते कि बौद्ध ग्रन्थ लेखकोने ईर्ष्या से वास्तवधर्म का अपलाप किया ?) यज्ञो के अधिक व्ययशाली होने से तप अर्थात् आत्मयज्ञ की सृष्टि हुई (नही, बौद्धों से सैकडों वर्ष पहले उपनिषदोंमें यह होचुकी थी) ब्राह्मणोंका आदर था, किन्तु उतना न था जितना कि वे बताते हैं । उस समय श्रमण और परिव्राजक भी होगए थे जिनका आदर ब्राह्मणोसे कम न था और इस लड़ाई से निराश होकर ब्राह्मणोंने आश्रमकल्पना की, जिससे बिना गृहस्थ रहे और वृद्ध हुए कोई मनुष्य परिव्राजक न बन सके । उनने और जातियोंको भी सन्याससे रोका किन्तु उनकी चली नहीं । ब्राह्मणो के ग्रन्थो में लिखा मिलता है कि आश्रमधर्म का पालन होता था, किन्तु वे सत्य बात नही कहते, जैसा उनकी बुद्धिमें होना चाहिए, वेसा कहतेहै (आश्रमधर्म बौद्धोंसे बहुत पूर्व बन चुका था, आश्रमकी कैदोसे बचने के लिए ही तो बौद्ध परिव्राजकोने सुगमउपाय निकालकर ब्राह्मण भिक्षुओका अनुकरण किया था) कनिष्क के उत्तरकोशल, मगध, वत्स, अवन्ती ये तो मुख्य राज्यथे बाकी उत्तरभारत में कुल १६ छोटे २ राज्य थे, जिन में परस्पर सम्बन्ध और विग्रह होते रहते थे, और कहीं २ प्रजातन्त्र भी था । आर्यो का आगमन पञ्जाब से गंगा के किनारे २ हुआ किन्तु सिन्धु के किनारे उज्जैन तक और तराई से

होकर तिरहुत तक भी आर्यों की गति हुई थी। दाक्षिणात्य में बहुत कम आर्य्य थे। पहाड़ी आर्य्य धर्म और शासन में स्वतन्त्र प्रकृति के थे और अनार्य्यों में भी शान्ति और सामाजिक बन्धन विद्यमान थे। ग्रामगोष्ठ या ग्राम सघ ही हिन्दुओ की प्रधान चाल थी, गाव की चरागाह सर्वसाधारण की सम्पत्ति थी, और सिचाई भी मिल कर होती थी। गाँव से बाहर जमीन बेची व रहन नहीं की जाती थी। स्त्रियो को भूषण आदि ही सम्पत्ति थी और माता से दायभाग भी मिलता था सहभोजन और सहविवाह के नियम दृढ़ थे (अर्थात् जातिबन्धन था)। राजा, ब्राह्मण, वैश्य, शूद्र, चाण्डाल, पुक्कस यों जातिभेद था। कई क्षत्रिय अनार्य भी थे। जातियो में भेद (आपत्काल होने से) कर्म का परिवर्त्तन भी होता था और उच्च जातियो से अनुलोम प्रतिलोम विवाह होनेपर भी सन्तान ब्राह्मण वा क्षत्रिय ही रहती थी (हैं !) बुद्धके सम्वादों में जन्माभिमान की निन्दा की गई है (इससे तो जाति दृढ हुई) ब्राह्मणों ने अभी क्षत्रियों से ऊपर होनेका और भूदेव कहाने की हिमाकत नहीं दिखाई थी (यह "हिमाकत" बहुत पहले से थी और बौद्धधर्म इसी को तोड़ना चाहता था) जातिके लिए कोई शब्द ही नही है, रोमन और ग्रीक लोगों में यदि जातिभेद होता तो भारतवर्ष में भी उस समय होता (वदतोव्याघात, बौद्धधर्म क्या तोड़ना चाहता था ? क्या जातिधर्म बौद्धों के पीछे जम सका ?) नगरोंमें प्राकार होते थे। घरोंमें दालान, कोठ, अन्नागार, मोरी प्रभृति का पता है। शवदाह के

अतिरिक्त उनका वनोमें पक्षियो के भोजनार्थ त्याग भी होता था। नाव, गाड़ी से व्यापार, किराये की पुलिस, और ताम्बेके प्राइवेट सिक्कों से व्यापार भी पाया जाता है। चान्दी के राजनियमित सिक्के न थे (वाह !) व्यापारी, व्यापार, विज्ञापन और मोहरनाम्रमें लेखका प्रयोग, विद्याका कण्ठ से ही पढ़ा पढ़ाया जाना, साधु परिव्राजकोके आदर का वर्णन करके "ईसाकी षष्ठ शताब्दी में भारतवर्ष" का यह चित्र समाप्त होता है।

उन्नतिमत्त पाश्चात्य अपनी दशा को और देशो के इतिहास मे पढ़ने का उद्योग करते है। यूरोपीय clergy ने राजाओं पर पीछे प्रभाव डाला, और उनके और राजाओंके इस बातपर लड़ाइयां हुईं, यही बात भारतवर्ष मे ढूंढ़ना चाहते हैं। अपनी छठी शताब्दी की सभ्यता से बढ़कर सभ्यता यहा नही दिखाना चाहते। और ब्राह्मण तो गालियां देनेको हैं ही॥

* *
*

साधुसंन्यासी—लाहौर के प्रोफेसर ओमेनने इस विषय पर एक ग्रन्थ लिखा है। पश्चिममें साधुत्व वा वैराग्य किसी कालमें था, किन्तु भारतवर्ष में यह अस्थिज्वर की तरह जम गया है। इसका कारण यहां का जलवायु, मास न खाना, और जन्मसे जाति मानने की प्रथा बताई गई है जिस से हिन्दू जातिभरका उत्साह लंगड़ा हो गया है। राजनैतिक परवशता के कारणसे भी भारतमें सदासे साधु है। विदेशी चाहे उन्हें देखकर घृणा करै, किन्तु वे प्राची के चिह्नस्वरूप है।

पाश्चात्य, हीरे मोती वाले राजाओं को ही भारतवर्ष का आदर्श माने, किन्तु साधु फकीर वा सन्यासी ही भारतवर्ष के सच्चे आदर्श हैं और उनका यहां बड़ा आदर और प्रभाव है। अवश्य ही इनके होने से देश की उत्पादकशक्ति का विनाश करके मुफ्तखोरों की संख्या बढ़ती है, किन्तु यह शान्तिका आदर्श भारतवर्ष की जड़ तक गया है और पश्चिमी शिक्षा के प्रभाव से मिट नहीं सकता। यद्यपि साधुत्व अच्छी बात नहीं है किन्तु क्या अमेरिका का हाय टका, हाय टका, अच्छी बात है? अतएव ग्रन्थकारको आशा है कि भारतवासी देह और मनकी शक्तिसे यूरोपके जीवन के अनुकरणमें असमर्थ होकर इस शान्त, लघुभोजनी साधुत्व को न छोड़ेंगे (जिससे विदेशियों को यहां काम करने की किसी प्रकारकी रुकावट नहीं मिले)।

* * *

स्वदेशी वस्त्र—राजस्थान समाचार के सम्पादक बहुत काल से स्वयं स्वदेशी वस्तुओं को बरतते आते हैं। समालोचक के सम्पादक और प्रकाशक भी इस काम में यत्नवान् हैं और पत्रसम्पादकों से, वा स्वदेशी वस्त्रों के व्यापारियों से निवेदन करते हैं कि स्वदेशी पदार्थों की सूची और मिलने के पते भेजकर समालोचक कार्यालय को उपकृत करें। यह भी विचार है कि समालोचक कार्यालय से सर्वसाधारण को स्वदेशी वस्त्रों के मिलने का पता बताकर इस काम मे उत्तेजना दी जाय। और सभी संवादपत्रों के सम्पादकों से निवेदन है कि इन बातोंका उपदेश बातों से नहीं, कामसे करें।

* *
*

मद्रासमें कांग्रेस के साथ जो शिल्पप्रदर्शिनी होने वाली है उसके विज्ञापन शंकर नैयर प्रभृति के हस्ताक्षरों से सरकारी गजटों में छपे हैं। उनमें बिचारी कांग्रेस का नाम तक भी नहीं है। क्या कांग्रेस के कर्णधारों ने सरकारी कृपा वा यूरोपियनों की सहानुभूति के लिए स्वयं प्रत्यादित स्वार्थत्याग को ढकेल फेंका है। वही प्रदर्शिनी की माता का नाम भी नहीं ।।

* *
*

सरयूपारी महासभा को हम बधाई देते हैं कि अबके अधिवेशन मे वे पं० शिवकुमारजी को अपनी कार्यवाही में मिला सके हैं। नामाङ्कित विद्वानों का यो काम करना विरली बात है। महासभा को किसी प्रसिद्ध कालिज के पास सरयूपारी बोर्डिंग बनाना, नए शिथिल और अयोग्य कालिज खोलने की अपेक्षा, अधिक सुगम और उपयोगी होगा। सभा का यह प्रस्ताव भी अच्छा है कि विहारबन्धु ही सभा का मुखपत्र रहे। हमारा निवेदन है कि नया पत्र निकाल कर दुर्बल पत्रों की संख्या बढ़ाना उचित नहीं। और भी कई सभाएं यदि अपने अपने "मुखपत्रों" को (जो कुछ दिन सिसकते है और अच्छे पत्रों के लेखक और ग्राहकों को घटाते है) घटादें, तो बहुत कुछ भार उतर सकता है।

विहारबन्धु के साप्ताहिक हो जाने से हम बहुत प्रसन्न होंगे यदि उसे ग्राहकों वा सहायता के अभाव से फिर लौटकर पाक्षिक न होना पड़े और यदि उसका आकार बढ़ाया

जाय, बदला न जाय। महाकाय पत्र अच्छे ही हैं, यह कोई बात नहीं। भगवान् करे हमारा खर्व विहारबन्धु हिन्दी का "इण्डियन नेशन" बने।

* * *

कुछ दिन हुए, मद्रास के "हिन्दू" पत्रकी जुबिली होगई। इन पचीस वर्षोंमें यह पत्र साप्ताहिक से दैनिक होगया और इस काल में सर्वसाधारण मत का प्रतिनिधिपना देशभाषाओं से उठकर अंग्रेजी पत्रों में चला गया। हमारे हिन्दीपत्रों में भारतमित्र २६ वें वर्ष में है, और हिन्दीप्रदीप पचीसवें में। भारतमित्र ने हिन्दी पाठकों के विचारों के प्रकाशित करने, सुधारने और बनाने में बहुत कुछ भाग लिया है अतएव यदि अब के वर्षारम्भ पर, भारतमित्र की जुबिली मनाई जाय, तो बहुत अच्छी बात है। भारतमित्र अपने अनुभवसे २६ वर्ष की कालचक्र की गति सुनावे तो वह बहुत अच्छी मालूम होगी।

* * *

हम नहीं जानते कि अवधसमाचार के बन्द हो जाने पर दुःख प्रकाश करें, वा न करें। जिस "मतबे" ने हिन्दी की बदौलत इतना कमाया और जिसका हिन्दी पर इतना प्रेम है उसके यहां हिन्दीपत्र का इतने दिन जीनाभी कठिन कार्य था। सम्भव है कि हमें यह हितवार्त्ता के जन्म का बदला भरना पड़ा है। अब युक्तप्रान्त के सार्वजनिक मत को प्रकाशित करने में (प्रयागसमाचार के अतिरिक्त) भारतजीवन को बलवान् होना चाहिए। खेद है कि युक्तप्रदेशका

पश्चिमोत्तर अञ्चल गूंगा ही है। अवधसमाचार का फातिहा यही है "जातो वा न चीर जीवेद् जीवेद्वा दुर्बलेन्द्रियः"। मोहनी ने बड़ा आकार धारण किया है, किन्तु उसके लेख भी आकार के योग्य होने चाहिएं।

※ ※
※

टाड राजस्थान को जब नागरीप्रचारिणीसभा प्रकाशित करने ही लगी है तो एक दो बातोंका विचार अवश्य होना चाहिए। सुनते हैं कि राजस्थान का एक अनुवाद खङ्गविलास प्रेसमें और एक वेङ्कटेश्वर प्रेसमें रक्खा है। सो सभाको उचित है कि इन दोनों अनुवादों से अपने अनुवाद का मिलान करके सर्वोत्तम अनुवाद को प्रकाशित करै। दूसरे, राजस्थान की भूलोंका सुधारना भी अत्यावश्यक है। इस काम को करना जितना आवश्यक है उतना ही इसका योग्य मनुष्य के हाथसे न होना अनावश्यक है अतएव उदयपुरके प्रसिद्ध ऐतिहासिक गौरीशङ्कर हीराशङ्कर ओझा और पण्डित मोहनलाल पंड्या इस ग्रन्थका संशोधन लिखें और राजस्थानसमाचार के मनीषी समर्थदान, बाबू राधाकृष्णदास, पण्डित माधवप्रसाद मिश्र, हिन्दी सम्पादकोंमें से दो प्रतिनिधि और राजपूत महासभा का एक प्रतिनिधि, उनके संशोधन को दोहरावै। पीछे यह निबन्ध नागरीप्रचारिणी सभा वा राजपूत महासभा की तरफ से टाड के अतिरिक्त खण्डके रूपमें छपाया जाय। ऐसाही प्रबन्ध रमेश बाबू के इतिहास के बारे मे होना चाहिए। जिन सज्जनोंके हमने नाम लिखे हैं वे इस कामको स्वीकार करें, केवल नागरीप्रचारिणी

सभा को यह करना चाहिए, वह करना चाहिए कहकर ही दूर न होजायं ।

* *
*

आजके समालोचक से डिपटीकलेक्टर पण्डित श्यामबिहारी मिश्र एम. ए. और पण्डित शुकदेवबिहारी मिश्र बी. ए. का एक बड़ा लेख, 'व्यय" नामक प्रकाशित होता है। इस लेखको हम मिश्रबन्धुओं के बड़े आग्रह से स्थान देते हैं, औरपहलेही कहदेना चाहते हैं कि इसके सभी अंश हमारे मतके अनुकूल हों सो बात नहीं है। कहीं कहीं भाषाकी तीव्रता होने पर भी जिन भावों से यह लेख लिखा गया है वे शुद्ध हैं ईर्षा वा पर निन्दा से प्रसूत नहीं हैं। तथापि लेख को पढ़ कर एक वेर तो कहना ही पड़ता है—

O Hamlet, speak no more,
Thou turnes my eyes into my very soul
And there I see such grained and black spots
As will not leave their tincts

किन्तु क्या करें this damned custom has brass'd it so that it is a proof and bulwark against sense

* *
*
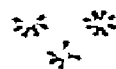
जातिविशेष वा समाजविशेष के पत्रों का अच्छा वा बुरा होना उनके सम्पादक की योग्यता, मति, गति, रुचि, प्रवृत्ति के ऊपर निर्भर है। जातिविशेष की सेवा करते करते वे देश भर की सेवा भी कर सकते हैं। वे अपनी टर्र [illegible] में भी हो सकते हैं। दो पत्रों की हम यहां तुलना मात्र कर देते हैं, टिप्पणी करने की आवश्यकता नहीं।

हिन्दुस्थान रिव्यू और कायस्थसमाचार

(कायस्थ पाठशाला, प्रयाग का अंग्रेजी मासिक)

सम्पादक—बारिष्टर सच्चिदानन्द सिंह

सितम्बर १९०३

१ विक्टोरिया के समय की समीक्षा (लेखक-बाबू रमेशचन्द्र दत्त सी० आई० ई०)
२ भारत में हिन्दू मुसलमान (सरलादेवी घोषाल बी. ए.)
३ पृथिवी के आकृतिज्ञान में भारतवर्ष का काम (प्रोफेसर ए. सी दत्त एम. ए. केम्ब्रिज)
४ दम्पति के अधिकारों की रक्षा (गञ्जम् वेङ्कटरत्नम्)
५ हैदराबाद को कैसे सुधारना ? (शासन का एक जिज्ञासु)
६ समाज सुधार की रीति (डी.वी. कृष्णराव बी. ए. बी. एल.)
७ विवाद—
(क) यूरोपियन और भारत वासियों में मारपीट (एक एंग्लोइण्डियन)
(ख) भारतवर्ष में सामाजिक मेल मिलाप (मुहम्मद अली बी. ए. आक्सफोर्ड)

राजपूत

(क्षत्रियमध्यस्थसभा आगराका हिन्दी पाक्षिक)

सम्पादक—कुंअर हनुमन्तसिंह रघुवंशी (कदाचित्)

१५ अक्टोबर १९०३

१ सुदर्शन के साहित्यसेवी की धृष्टता
२ सुदर्शन का दुर्व्यवहार
३ भारतजीवन सम्पादक का दुराग्रह
४ समालोचक का अनुचित आलाप
५ ब्राह्मणों के विषय में हमारी सम्मति ।
६ नागरीप्रचारिणीसभाके एक व्याख्यानका अत्यल्पसाराश।
७ प्रेरित पत्र (पञ्जाब मे सभा खोलने के लिए)

८ समालोचना— दिल्ली दरबार विषयक दो ग्रन्थों की ९ टिप्पणियां— (क) वैज्ञानिक और वैद्यक (ख) साहित्य और शिक्षा (ग) क़ानूनी १० गत मास ११ कायस्थ जगत् । पृष्ठ १८१-२७८ बड़ी बढ़िया अंग्रेज़ी उच्च विचार उत्तम लेख	पृष्ठ १-२४ पत्र भर मे एक ही टपटा, भाषा और विचारों का फैसला पाठक करे ॥

* * *

दो बातें बहुत ही सन्तोषजनक हुई हैं। एक तो विलायत के सिविलसर्विस रूपी अग्निमें तप्तकाञ्चनवत् उज्ज्वल महर्षि-कुमार पाण्डुरङ्गरावका द्वितीयपद पाना और दूसरे नागरी-प्रचारिणी सभा के विज्ञानकोषका दोहराया जाना। दाक्षि-णात्य सारस्वतकुलमणि पाण्डुरङ्ग ने इस देश का मुख उज्ज्व-ल किया है। "वारशतानि बह्वी" में गुणातिरेक पाने वाले परांजपे, चटर्जी, पाण्डुरङ्ग, घोष प्रभृति से इस हतभाग्य देश की नाक बची हुई है। सुबुद्ध पाण्डुरङ्ग ने गौराङ्गोंका शासन करना न चाहकर अपने भाइयों का ही शासन चाहा है। नागरीप्रचारिणी सभा के विज्ञानकोष को मध्यप्रदेश में ?,

काशीके ५, पंजाब और विहारके एक एक, सज्जनोंकी कमेटी ने दोहराया। ज्यौतिष और भूगोल की परिभाषाएं पूरी दोहरा ली गई हैं। अर्थशास्त्र और दर्शनके लिए सब कमेटि-या बनी हैं। बड़े दिन की छुट्टियोंमें प्रा० गज्जर, बोस और प्रफुल्लराय काशी आकर शेष कोशोंको दोहराने में सहायता देंगे। युक्त प्रान्त की सरकार ने भी अपना प्रतिनिधि नहीं भेजा है और कोशशोधन में सहायता देनेवालो की इस सू-ची से युक्तप्रान्त वालोंकी भाषारसिकताका अच्छा परिचय मिलता है। धन्यवाद है–

बङ्गाली ८ पञ्जाबी ३ विहारी १ राजपूताना (पञ्जा-ब–प्रवासी) १ दक्षिण और दाक्षिणात्य ८ मध्यप्रदेशवासी ७ युक्तप्रान्त वासी ९ (काशी ६ लखनऊ १ आगरा १ झांसी १)

* * *

गुजराती मासिकपत्र भारतजीवन के कार्यालय से एक हिन्दी मासिक पत्र निकलने वाला है। प्रवासी और भारती, बङ्गालीपत्र, मासिक मनोरञ्जन, मराठीपत्र और पूर्वोक्त भारतजीवन ने हमें अपने लेखो के अनुवाद करने की आज्ञा देदी है इस लिए इन्हें धन्यवाद है।

* * *

सरस्वती में हार्नले का चरित्र, करसिरमयी मछली, और देशव्यापक भाषा के लेख बहुत अच्छे है। हार्नलेपञ्चक के लेखक ने हार्नले को गणेश, शेष की उपमादी है, इस से कहीं सुदर्शनसम्पादक इस लेखके लेखक के महामहोपाध्याय होनेका सुखस्वप्न न देखने लगे।

* * *

जान मार्ले नामक विद्वान् ने सुप्रसिद्ध राजनीतिविशारद ग्लैडष्टोन का जीवनचरित्र लिखा है। यह तीन जिल्दों में २००० से अधिक सूक्ष्म टाइप के पृष्ठोंमें छपा है और उस में दो तीन लाख ग्रन्थ, लेख, प्रभृति की सहायता ली गई है। मार्ले साहब ने बड़ा ही परिश्रम किया है। धन्य! धन्य!! धन्य!!!

प्रवासी की शारदीय संख्या में गुजराती साहित्यपर एक बहुत अच्छा लेख है। बङ्गालियों को पंजाब के शीत प्रान्त में उपनिवेश बनाने का परामर्श दिया गया है। धन्य है सम्पादक को जिनने हिन्दीभाषा के सामयिक पत्रों पर कुछ लिखा। अनुवाद की आज्ञा लेने में बड़ी कठिनाइयां पड़ती है इससे कई लोग बिना आज्ञा ही लिखना स्वीकार करते हैं। अवश्यही यह लज्जा की बात है।

* *
*

काशीसे पण्डित केशव स्वामी ने हमारे पास एक छपी हुई व्यवस्था भेजी है। इसमें आपस्तम्ब, मदनरत्न के एक एक वाक्य के सहारे से सिद्ध किया गया है कि जो द्विजाति, उपनयन संस्कार न होने से व्रात्य होगए हैं, वे व्रात्यस्तोमके बजाय द्वादशवर्ष ब्रह्मचर्य महाव्रत वा उसका अनुकल्प ३६० गोदान करके पुनः संस्कार करा सकते हैं। इसपर काशी, वर्द्धमान, दरभङ्गा और बूंदीके कई पण्डितो के दस्तखत है। प्रायः वर्षभर होता आया, यही व्यवस्था "प्रति सम्मति पाचरुपया दक्षिणा" के साथ जयपुर के पण्डितों के पास भी आई थी, किन्तु उनने इस पर सम्मति नमालूम

क्यों न की। अच्छी बात है यदि सुगम उपायों से भी ब्रात्यों को उपनीत करने में ब्राह्मण समर्थ रहे। अन्त में लिखा है कि " इन दिनों व्यवस्था को भी लोगों ने जीविका बना रक्खा है इस हेतु यह छपाई जाती है।" यदि इसके छपाने से (औरों को दक्षिणा से वञ्चित न करके) व्यवस्था को जीविका बनाना लोगों ने छोड़ दिया है तो ब्राह्मण कुलका और काशी के कोविदों का गौरव ही है॥

※ ※
※

"हवाई नाव दी एलेक्ट्रिक एयर-केनो नामक अंगरेजी उपन्यास बाबू गङ्गाप्रसाद गुप्त अनुवादित (१)"

भारतजीवन, ९६ पृष्ठ, चारआने

पाम्प और बार्नें नामक नौकरों के साथ, बिजली की हवाई नाव पर सवार होकर, जून हीरे की घाटी को जाता है। राहमें गुब्बारे को बचाकर, बिजलीसे एक शेर को वशकर, जङ्गलियों का धन्यवाद लेकर, वे पानी के लिए उतरते हैं और अजदहों द्वारा नष्ट होने से पिकारियों के आक्रमण से बचाए जाते हैं। हीरोंकी घाटीमें गुरिल्लोंसे लड़ना, जंगलियोंके दंगे में आकर उन्हें दगा देना, दो जंगली जातियों का लड़कर हीरों की घाटी को बहा देना, और हमारी पार्टी का थोड़ेसे हीरोंसे सन्तुष्ट होकर लौटना बताया गया है। राह में गुब्बारा टूट जाता है और वे कठिनाई से घर पहुंचते हैं।

कहानी अच्छी है। सरलभाषामें कही गई है। एमेरिका वाले डींगे मारने में बड़े निपुण होते है, किन्तु घटना उतनी असम्भव नहीं है।

---

(१) अन्वय क्या है ?

प्रथमपृष्ठ में "कहानी दक्षिण अमेरिका देशकी है। .... रीड्सटाउन" कहकर रीड्सटाउन दक्षिण अमेरिका में बताया जान पड़ता है। पृष्ठ २ में ब्रेजिल (अफ्रिका) लिखा है किन्तु (पृष्ठ ११) "दक्षिण मे" मैक्सिको की खाड़ी (कहां से ?) वेजुला प्रभृतिसे और पृष्ठ १७ से मालूम होता है कि वे उत्तरी अमेरिका से चले है और घटना दक्षिण अमेरिका में हुई है। यह तिलिस्म तो है ही नही कि मन में आया सो कर दिया। भाषा के कुछ नमूने योंही चुनकर रख दिए जाते हैं—आश्चर्यप्रद चीज (२) हर एक कठोर में (३) पहिया चर्चरा कर घूमने लगी (४) चिड़िये की तरह (४) घातक लड़ाई (५) लुक्की तरह (?) (६) सांघातक चीता नाखून और दन्तरहित होगया (२८) चिड़िया चुहचुहा रही थी (३२) गुरिल्लेने अपने निर्जीव प्रतिद्वन्द्वी को अपने से बलिष्ट पाया (५१) गली सर्दार (६०) उद्योगे सफलः कार्यः (७०) इत्यादि। कहीं कहीं खिचड़ी भी है।

पृष्ट ५८ "पहचान लिया कि ये खोपड़ियां ककेशिया देश के लोगो की है"। अनुवादकर्त्ता मूल को (जहां Caucasians होगा) नही समझे। मजूटे प्रभृति अमेरिकन नस्ल के हैं, यूरोपीय, एशियायी काकेशस गिरि से आने के कारण काकेशियन कहाते है। उनकी नस्ल भिन्न होनेके कारण यो लिखा गया है, न कि " ककेशिया " कोई देश है जिसका वहां सम्बन्ध हो।

अनुवादकर्त्ता इस उपन्यास को बहुत कामका बना देते यदि शिकारी प्रभृति जन्तुओंका सूक्ष्म वर्णन, बिजली की शक्ति के उपाय प्रभृति लिखकर "रेल में मिलाना" शुरू करते।

घड़ी (पृ० ३५) और बिजली की सनसनाहट का हाल कुछ बढ़ा देना था । बिजली का विचित्रप्रभाव (पृष्ठ २७) कुछ अतिरञ्जित जान पड़ता है । बिजली का current जा ने से convulsion होकर muscles लग जाते है, मृत्यु हो सकती है, किन्तु conductor कैंची से बेहोशीमे नख कैसे काटे गए । किन्तु यह बात मूलकी है, अनुवादकर्त्ता को कुछ न हीं कहना चाहिए । जिन्हो कि कदाचित् भावानुवाद ही किया है ।

तिलिस्मकी निर्जीव कथाओं के पढ़ने की अपेक्षा इन विचित्र उपन्यासों के पाठ से, विचित्रघटना जानने के सिवाय, यूरोपीय जातियों के साहस, उत्साह, अन्वेषण प्रभृति के जानने से हमारे मृतसमाज की नसो में नई शक्ति प्रविष्ट हो सकती है । मान लीजिये कि यह यात्रा हवाई नाव से नहीं हुई, किन्तु ऐसी यात्राए बैलून पर, रेल पर, नाव पर वा पैदल, ऐसे ही फलो के लिये होती हैं ।

पत्रो ने बाबू गगाप्रसाद गुप्त को होनहार नव-युवक लि- खा है । उन्हे उचित है कि तिलिस्म से अपनी कलम को न बिगाड़ कर "बैलून मे चार मास" आर्टिक अन्टार्टिक स मुद्रो की खोज उत्तर दक्षिण ध्रुवो की खोज समुद्र के नीचे ४०,००० फुट, प्रभृति विषयो के ग्रन्थ लिखना शुरू करें । यह सब इतिहास होने पर भी उपन्यासो से कम रोचक नहीं है । उस के बाद जीव, जन्तु, तरु, पत्र, प्रभृति प्रकृति की सुन्दरता का वर्णन करके हिन्दी पाठको को सच्ची विचित्र बातो में प्रेम कराया जाय । तब पाठको की रुचि उपन्यासों से हट कर वैज्ञानिक वृत्तान्त और ग्रन्थोपर आजायगी ।

* *
*

" कालनिर्णय– श्रीनारायण पांडे, बी ए. मुजफ्फरपुर रचित, पृष्ठ. ४०, तीनआने।

यह वही ग्रन्थ है जो समाचार पत्रों में पं० नारायण पांडे और बाबू अयोध्याप्रसाद में परस्पर लड़ाई का कारण कहा गया है। विचारा ग्रन्थ वास्तव में इस लड़ाई से निर्दोष है। पृथ्वी पर सब स्थानों में सूर्योदय, मध्याह्न वा सूर्यास्त एक साथ नहीं होता इससे एक जगह का समय दूसरी जगह के समय से भिन्न होता है। इस ग्रन्थ में प्रायः ५५० नगरों के देशान्तरकाल की सारणी दी गई है और उससे किसी एक स्थान का समय जानने से दूसरे स्थान का समय जानने की रीति अच्छी तरह समझाई गई है। देशान्तरकाल पटने से किया गया है, यह बात नई किन्तु अनावश्यक है। पांडे जी का परिश्रम अच्छा है और उन्हें उचित है कि ऐसे सर्वोपयोगी वैज्ञानिक लेख लिखें। भाषा सरल है।

रही पांडे जी और बाबू साहब के झगड़े की बात, सो प्राइवेट होने के कारण हमें उससे कोई मतलब नहीं। किन्तु कहा जाता है कि यह समालोचना के कारण हुई है अतएव हमने इस बारे में कुछ कागज़ पढ़े। हम तो यह समझे—

बाबू साहब—मेरी समालोचना से चिढ़ कर पांडे जी ने हमारी भौजाई भतीजेको बहकाकर मुकद्दमा चलाया।

पांडेजी महाराज—कालनिर्णय छपनेसे वर्षभर पहले से बाबू साहब मेरे और मेरे भाई की बे इज्जती पर उतारू थे। उनने इन्स्पेक्टर को मेरा डिप्लोमा छीनने के लिए लिखा,

दो वार मेरे भाई पर फौजदारी दायर की जो झूंठी सिद्ध हुई । स्वभाव इनका बहुत रूखा है । कालनिर्णय प्रकाशित होने के दो दिन पूर्व ही इन के दीन भतीजे जज साहब से अपनी दुर्दशा कही और मुकद्दमा चला । मेरे भाई ने उस में गवाही मात्र दी । हमारा इससे कोई सम्बन्ध नही ॥

. बाबू साहब—१४ सितम्बर को फिर मुझ पर झूठा मुकद्दमा दायर कराया गया ॥

— पांडेजी—इससे भी हमारा कोई सम्बन्ध नहीं॥

सब लोग समझ जांय, इससे हमने इनकी बातों को संवाद रूप मे रक्खा है । वास्तव बात क्या है सो हम न तो जान सके और न कह सकते हैं किन्तु बाबू अयोध्याप्रसाद ने ता० २८ जुलाई १८९७ में जो कालनिर्णय की समालोचना की है उसमें कुछ शब्द बहुत बढ़िया है, जैसे "बी ए. बबुआका अरबी में उसी कदर दख़ल है जिस कदर जलजन्तु का खुश्की में"—"आप तो हिन्दुस्तान में रहते ही नहीं हैं + + देशी मुर्गी विलायती बोल" । फिर प्रयागसमाचार और वेङ्कटेश्वर की रायों को छपा कर बाबू साहब ने बटवाया है, उनके चौतरफ यह सुन्दर कविता लिखी है—

अधिक लठता अब तक किये। कलम काम लाटी से लिये ।
छोडो ये अनुचित्त व्यवहार । चलो तनिक सा होश सम्हार ।
लिखने की शक्ति नही आई । झूठे बी. ए. डिगरी पाई ।
नारायण करतूत विचार । धिक्कारे जग सौ सौ बार ।

उधर विहारबन्धु मे बाबू साहब साफ साफ "कुसङ्ग" कह कर सर्वसाधारण का मन फिराने का यत्न करते से दिखाई देते है । ईश्वर जाने बात क्या है, किन्तु बाबू साहब

का स्वभाव बहुत तेज़ है इस में कोई सन्देह नहीं । यह तेज़ी समालोचना के पीछे अशिष्टता दिखाने वालों के कारण भी हो सकती है ।

* * *

"सद्वैद्यकौस्तुभ—हमें डर है कि "आरम्भशूराः खलु दाक्षिणात्याः" की लोकोक्ति उत्तरवासियों पर ही लगती दिखाई देती है, क्योंकि यहां के दुर्लभ आरोग्यदर्पण प्रभृति मर चुके हैं और सयाजी औषधशाला के आर्यभिषक् ने मराठी में १० वर्ष जी कर सद्वैद्यकौस्तुभ के नाम से हिन्दी में भी जन्म लिया है । तीन संख्याओं के देखते इस पत्र का भविष्य अच्छा मालूम होता है । इस में विज्ञानचर्चा है किन्तु जटिलता नहीं, भाषा की सरलता है किन्तु दुष्टता नहीं, प्राचीन वैद्यक का आदर है किन्तु आधुनिक गवेषणाओं की उपेक्षा वा घृणा नहीं । भाषा में ऐसा महाराष्ट्रपन नहीं है जिस से उसे दूषित कहा जाय । प्लेग संरक्षण नामक सामयिक लेख बड़ी योग्यता से लिखा जा रहा है और आशा है कि उस में यूरोपीय खोज और रोधक उपायों पर उचित ध्यान दिया जायगा । वनौषधि विज्ञान बहुत बड़ा हो, और आधुनिक " बोटनी " की थियोरियों को भी उसी योग्यता से वर्णन किया जाय, यह हमारी इच्छा है । पत्र अच्छा है और इस की सहायता करनी चाहिए । यही हम कहसकते हैं । प्रमेय पदार्थों पर मत देना किसी वैद्यराज का काम है [आयुर्वेद महोपाध्याय पण्डित शङ्करदाजी शास्त्री पदे, सयाजी औषधशाला, नवा नागपाडा, बम्बई, मूल्य २) साल, प्रतिमास, भारतधर्म के साथ २।=)]

सहयोगिसाहित्य की सूची

भारतमित्र—टिप्पणियां। चिरागतले अन्धेरा।

५।९। हाईकोर्ट मे ताली। सरकार की पर्दानशीनी। बङ्गालियों की हिन्दी। सरस्वती वन्दना।

१२।९। काले गोरे का न्याय। हिन्दीकी श्रेष्ठता। विचित्रविचरण।

१९।९।सरकारी सिद्धान्त।मेओ कालिज में इनाम।

२६।९। गोरोंको सनद। मन्त्रियों में हलचल। जैसा मुंह वैसा तमाचा। दुर्गापूजा। ज़नाना तरक्की। टेसू। महावीर जी की वक्तृता (रामायण में क्षेपक)

१७।१०। विलायती पार्लेमेण्ट। काले गोरे का न्याय। साहित्यसेवा। दिवाली के बताशे।

२४।१०।नए स्टेटसेक्रेटरी।डाकखानों की रिपोर्ट। जंगलका राजा। प्रवासी की आलोचना। चिट्ठीपत्री।

श्रीवेङ्कटेश्वरसमाचार—टिप्पणियां। हिन्दूगृहस्थ

४।९।प्रोफेसर जिन्सीवाले। बात का बतङ्गड। मंडलका विद्या प्रचार। काच का उद्योग।

११।९। राजकुमारों की शिक्षा। अभियोग का स्वरूप। नार्थकोट का शासन। मंडल का विद्याप्रचार।

१८।९।सुदर्शन और हम। मंडल का विद्याप्रचार। लाभ क्योंकर हो? सरकार के गुप्त भेद।

२४।९। मिट्टी की मिलनी। सुदर्शनका परमार्थ। जैन कान्फ्रेंस। तीन के इस्तीफे।

२।१०। दीक्षितजी। हिन्दी के रेनाल्ड। धर्म का उत्साह। आशौच-निर्णय।

९।१०। राजाओंके अभियोग। हमारे दशों हर गए। देशी वाले। धरणीदोहन।

१६।१०। प्रार्थना। सुदर्शन का फ़ैसला। आजकल के साधु।

३०।१०।देशहित की परीक्षा। नगरों का राजा लण्डन। पंडितों की व्यवस्था।

हितवार्त्ता—टिप्पणियां। टिकटिकी वाला ।

६।६। गुप्तआईन । पुलिस का अत्याचार। विलासपुर । म्यूनिसिपल महिमा । सैनिकदुर्वलता । नागौद राज्यपर दृष्टि ।

१३।६। रक्तशोषण । वन्यपशु और भारतवासी । संसार में अशान्ति । दुर्भिक्ष । म्यूनिसिपल महिमा ।

२०।६। एकता का फल । भारत का भविष्यत् । विश्वविद्यालय का संस्कार । दानकी छीछाले दर । काव्यमञ्जूषा की समीक्षा ।

२७।६। आवाहन । नवीन सभ्यता और नशे । शिक्षासंस्कार । देशी सम्पादक और कोतवाल । काबुल समाचार। जयदुर्गे। मक्र की तरङ्ग। बाबुओं का उत्सव। साहब और मजा ।

१८।१०। अद्भुत भविष्यत् । दिवाली । अंग्रेज़ और बङ्गाली । प्राप्त ।

२५।१०। राजा और रोग। गोरक्षण और गोभक्षण । उन्नति का कांटा। रुधिर शोषण। प्रभाती ।

भारतजीवन— नागरीप्रचारिणीसभा का कार्यविवरण । सीलोनयात्रा ।

मोहिनी—(पाक्षिक,२१।६ और ८।१०) ब्रह्मविद्या । उन्नति वा अवनति ।

राजपूत—२१।८,१५।६. ३०।६,१५।१०जनरल गारफील्ड। उपदेशरत्नमाला। राजपूत इतिहास के दिग्दर्शन ।

शुभचिन्तक— शिक्षित समाज और धर्म ।

गोपालपत्रिका— ज्योतिर्विज्ञान । सिखसम्प्रदाय।

विहारबन्धु—सम्मतियों।

११।६। डुमरांव राज। गर्मेका मजा ही रहा। हरितालिका व्रत। नूतनकविता। मिडिलस्कूलों का सुधार।

१५।१०। भावपाशी कर्मीशन । प्राप्त ।

१५।१०। सरयूपारी ब्राह्मण-सभा। खुली चिट्ठी। चेपडुककीचेचें।

प्रयागसमाचार—

१२।९। साहित्यचर्चा। उपन्यासचर्चा। वेकनविचाररत्नावली।

१९।९। उपन्यासचर्चा। मक्कडकी बड़बड़। माता।

२६।९। जमीदारसभा। प्रयागमें गोस्वामी। प्राप्त। हमारा विचार।

१०।१० लाहौर में गायकवाड़। साहित्यचर्चा। लार्डमेकाले। अवलावाला।

१७।१०। कृषिशिक्षा। उपन्यास-चर्चा। लार्ड मेकाले। अबलावाला। माया और मैं।

२४।१०। अवलावाला। ऐतिहासिकचर्चा। साहित्यप्रसंग।

राजस्थानसमाचार—

२।९,५।९,९।९ हिन्दीभाषा और उसकी उन्नति।

२।९,१६।९,२३।९ राजकुमार और उनकी शिक्षा।

२६।९,७।१० २६।९,३।१०,१०।१०,१४।१० राजकुमारोंकी शिक्षा।

३।१०,७।१०,१०।१०,१४।१० अनन्त कहानी।

१७।१०,२४।१०, देशीर ज्य और गोरक्षा।

९।९ आफीशियल सीक्रेट एक्ट।

१२।९ कानून और राजनैतिक सभाएं। रूस और जापान लड़ें तो भारतवासी क्या करें ?।

१६।९ प्लेगप्रवन्ध के विरुद्ध प्रजामत।

२३।९ सम्पादकपाठशाला।

१७।१० विज्ञान और विश्ववि-द्यालय बढ़ाओ।

१८।१० प्रेरितपत्र।

२१ मेवोकालिजमें संस्कृत।

हिन्दीवङ्गवासी—

७।९ इंगलैण्ड जापानकी सहयोगिता। माद में मनुष्य। रेडियम। नीबू घास।

१४।९ वलकानका फिसाद। रूस की प्रतिज्ञा। संन्यासी की चिट्ठी। पञ्चानन्द।

२८।९ माताकी पूजा। माता के

दर्शन। शरदनिशि देखि हरि हरष पायो। भाषाकी नाक। पञ्चानन्द।

१२।१० बड़े लाटसे निवेदन। अखबारोंमें अशान्ति। कनेरी गुफा। अवरक।

१६।१० लक्ष्मीपूजा। नवीन सिकन्दर। उचितपरामर्ष। सोमाली जाति। मधुमक्खी।

सरस्वती,—सितम्बर—

विविध विषय। बापूदेव शास्त्री। अन्योक्तिदशक। चातकसन्ताप। अविवेकी मेघ। वर्षा का आगमन। गानविद्या। ग्यारह वर्षका समय। पृथ्वी। पुस्तकपरीक्षा। देशव्यापक भाषा। साहित्यसमाचार (१० चित्र, ५ कविता)

अक्टोबर—डाक्टर रुडाल्फ हार्नली। हार्नलीपञ्चक। कमल। भरतवाक्य। विज्ञापनोंकी धूम। कर और सिरमयी मछली। देशव्यापक भाषा। माणिक। महारानी माईसोरकी पाठशाला। पुस्तकपरीक्षा। विनोद और आख्यायिका। मनोरञ्जक श्लोक। (४ चित्र, ९ कविता)

सुदर्शन,—ज्येष्ठ—प्रार्थना। स्वामीजीका स्मारक। पं० रामचन्द्र वेदान्ती। स्वयं आदर्श। चिराग तले अंधेरा। अम किसका है? राजपूतको नेकसलाह। हा प्रभु। (१ चित्र)

आषाढ—प्रार्थना। तवलकारोपनिषद् भाष्य। पुराणप्रसङ्ग। हमारी शिक्षा का ह्रास। पञ्चप्रपञ्च। पञ्चपञ्चायत। उपन्यास और समालोचक। तिलाञ्जलि। धन्यवाद। मित्रमरणम्। ऐयारी। हा! ब्राह्मणजाति। (२ चित्र)

सद्वैद्यकौस्तुभ—

आषाढ—उद्देश। वनौषधिविज्ञान। गोरसादि। प्लेगसंरक्षण।

श्रावण— (तथा)

भाद्रपद—वनौषधिविज्ञान। प्लेगसंरक्षण। गोरसादि।

भारतधर्म—आषाढ—श्रीत्र्यम्बकेश्वरवर्णन। सिखस्वाधीनता की प्रतिष्ठा।

श्रावण—पन्नगपूजा।

भाद्रपद—स्वामि रामामिश्र शास्त्री। प्रोफेसर जिन्सीवाले। गणेशचतुर्थी। सिखस्वाधीनता की प्रतिष्ठा।

नागरीप्रचारिणी पत्रिका—सितम्बर—

मनोविज्ञान। प्राचीनलेखमणिमाला का सूचीपत्र।

नागरीप्रचारिणी ग्रन्थमाला—नं० ८ छत्रप्रकाश।

कुछ सम्मतियां

"अबकी का समालोचक बहुत अच्छा निकला है। अब अवश्य कुछ हित करेगा क्योंकि किसी योग्य सम्पादक के हाथमें पड़ा है" (बाबू राधाकृष्णदास)

"x x अभीयथानाम तथागुण नहीं हुआ है धीरे धीरे होजायगा x x (पण्डित गङ्गाप्रसाद अग्निहोत्री)

" xxx बहुत अच्छा है xxx "
(शिवचन्द बलदेव भरतिया)

xx गम्भीरता का नाम नहीं है xx भगड़ियो का सा वाक्य xx समालोचक के नामको कलङ्कित करने वाले इस पत्र की ऐसी वाहियात बातों x x x" (राजपूत)

विज्ञापन

प० महावीरप्रसाद द्विवेदी को कौन नही जानता ? वह हिन्दी के बड़े भारी कवि हैं। उनकी कविता में जो शब्द का, अलङ्कार का वा भाव का निभाव होता है वह और जगह मिलना मुश्किल है। उनके कोई ३० काव्यो का संग्रह हमने "काव्यमञ्जूषा" नाम से छपाया है। टाइप, कागज़, सब कुछ बहुत बढिया है। कविता के प्रेमियो को ऐसा मौका बहुत विरला मिलता है जब वे अच्छे कवि की अच्छी कविता का अच्छा संग्रह पा सकें। अब उनको मौका है, उन्हे अपनी२ रुचि के अनुसार बहुत बढिया कविताए मिल सकती हैं। उन्हें चूकना नही चाहिए और झटपट ॥) भेजकर एक प्रति खरीद लेनी चाहिए।

पुस्तक मिलने का पता—
मेसर्स जैन वैद्य एण्ड को
जौहरी बाज़ार जयपुर

धन्यवादपूर्वक
प्राप्तिस्वीकार

शिवचन्द्र बलदेव भरतिया, कृष्णगढ़ — कैसरविलास, गीतापद्यावली सोत्याकी कण्ठी।

महावीरप्रसाद द्विवेदी, झांसी—हार्नलेचरित, जलचिकित्सा।

भारतजीवन, काशी— हवाईनाव, सरोजिनी (प्रसिद्ध झगड़े की प्रसिद्ध जड़)

डाक्टर महेन्दुलाल गर्ग, चित्राल — चीनदर्पण

बाबू प्रसिद्धनारायण बी.ए. गाजीपुर — सावित्री

वकील गोकुलप्रसाद मथुरा— सूर्यकान्ता ४ अङ्क

वेङ्कटेश्वर प्रेस, बम्बई—— विचित्र स्त्रीचरित्र

बाबू अयोध्याप्रसाद, मुजफ्फरपुर — खड़ी बोली का पद्य (दोभाग, खड़ी बोली आन्दोलन और डायरी के एडवाइस शीट, पण्डित जी का साहित्य पिंगल, मौलवी का छन्दभेद, साहित्य, (और कई झगड़े के कागज़)।

बदलेमें—

मासिक मनोरञ्जन, भारतजीवन (गुजराती) केसरी, राजस्थानसमाचार,

---o---

समालोचक का प्रथम भाग. अर्थात प्रथम वर्ष की फाइल बहुत बढ़िया लेखों से सजी प्रायः ३८० पृष्ठों की है मूल्य १॥) जल्दी मंगाइए, कापियां बहुत थोड़ी रह गई हैं

मैनेजर

REGISTERED NO J 25

समालोचक

(मासिक पुस्तक)

अग्रिम वार्षिक मूल्य १॥) + इस संख्या का मूल्य ≡)

भाग २	दिसम्बर १९०३	संख्या १७

सूची।

प्रोप्रायटर और प्रकाशक

मि० जैन वैद्य, जौहरी बाजार, जयपुर

राजस्थान-यन्त्रालय-अजमेर।

प्राप्ति स्वीकार।

बदले में

(हिन्दी) आर्यावर्त, जासूस, उपन्यास, हितवार्ता, भारत भगिनी, निगमागमचंद्रिका, सत्यवादी
(बंगला) बंगभाषा, नव्यभारत
(उर्दू) भारत प्रताप
(मराठी) बालबोध, श्री सरस्वती मंदिर

पुस्तकें

पं. बलदेवप्रसाद मिश्र, मुरादाबाद। नाट्यशास्त्र, प्रभासमिलन, भारत दुर्दशा रूपक, नन्दविदानाटक
पं. तुलसीदेव, फिल्लोर श्रद्धा प्रकाश
पन्नालाल बाकलीवाल, बम्बई ब्रह्म विलास
एस. एस. बर्मन, कलकत्ता सोने की चिड़िया (भजन और विज्ञापनों की पुस्तक)
नागरी प्रचारिणी सभा, आरा बाबू रामदीनसिंहकी जीवनी द्वितीय वार्षिक विवरण
सेठ खेमराजजी श्रीकृष्णदास, बम्बई हिन्दू गृहस्थ
बाबू गंगाप्रसाद गुप्त- काशी अबदुल्ला का खून
बाबू विश्वेश्वरप्रसाद-काशी पूना में हलचल
बाबू बालमुकुंद वर्मा-काशी मित्रकलेण्डर १९०४
भारत मित्र आफिस कलकत्ता। विचित्र विचरण, जयंती, मधुमाक्षिका, भामिनी विलास
हनुमानप्रशादअम्बिकाप्रसाद काशी रामायण पचीसी, शैव मोहिनी
पं. गनेशजी जेठाभाई लीम्बड़ी। कौतुक माला और बोध वचन

(आरा प्रणेतृ समालोचक सभा की आज्ञा से लिखित समालोचना)

भारतवर्ष का इतिहास।

(१)

यह पुस्तक बंगाल के साधारण शिक्षा विभाग के डाइरेक्टर से स्वीकृत और मैकामिलन एण्ड को० के द्वारा प्रकाशित होकर बिहार के मिडिल वर्नेक्युलर स्कूलों में पढ़ायी जाती है। इस वर्ष भारतीय विद्या के सुख सौभाग्य से उक्त कम्पनी की प्रायः सभी हिन्दी पुस्तकें पाठ्य निर्णीत हुई हैं। उस ने इसे अच्छे कागज़ पर सुन्दर अक्षरों में छपवा कर प्रकाशित किया है।

(२)

इस के दो खण्ड हैं। उन में से पहले खण्ड में ४२ और दूसरे खण्ड में ७ अध्याय हैं। ४९ चित्र और ९ नकशों से यह शोभमान है इन के द्वारा लड़कों का जी पढ़ने में लग सकता है। टाइटिलपेज़ रंगीन और सुन्दर है। जो मनुष्य अक्षर भी नहीं पहचानता है वह भी इस की चमक दमक को देखकर प्रसन्न हो सकता है।

इस के प्रथम खण्ड में आर्य्यों के समय से लेकर अंगरेजी राज्य तक की सभी ऐतिहासिक बातों का संक्षिप्त रूप से वर्णन है। दूसरे खण्ड में ब्रटिश राज्य के प्रबन्धों का उल्लेख है।

थोड़े दिनों से शिक्षा विभाग में यह नियम हुआ है कि जो पुस्तक सरकारी स्कूलों में पढ़ाने के लिये बनायी जाय वह अंगरेजी में लिखी जाकर अधिष्ठातृवर्गों की सेवा में स्वीकारार्थ अनुवाद के साथ भेजी जाय और उन से स्वीकृत होने पर वह प्रचरित हो ।

रंग ढंग से ज्ञात होता है कि मूल अंग्रेजी ग्रन्थ का लिखने वाला कोई भारतीय नहीं है किन्तु अनुवादक अवश्य ही भारतीय सुजन हैं ।

(३)

पुस्तक में दोष बहुत हैं । यदि उन का पूरा वर्णन किया जाय तो एक दूसरी पुस्तक तैयार हो जाय । देखिये केवल टाइटिल पेज के वाक्यों में कितनी अशुद्धियां भरी हैं—

(टाइटिल पेज की नकल)

भारत वर्ष का इतिहास ।

मध्य हिन्दी

चित्र और छवि सहित

बंगाल के साधारण शिक्षा विभाग के डाइरेक्टर स्विकृत

१९०२

चार आना ।)

(क) इन वाक्यों में 'मध्य हिन्दी' शब्द बड़ा कौतुक उत्पन्न कर रहा है । यह नयी रचना मालूम पड़ती है आज तक यह शब्द कहीं दृष्टि गोचरीभूत नहीं हुआ । शायद यह मिडिल

वर्नेक्युलर शब्द का हिन्दी अनुवाद है। यह शब्द तो हिन्दी में संज्ञा शब्दवत् होकर प्रसिद्ध हो रहा है फिर इस के अनुवाद की क्या आवश्यकता थी? यदि संज्ञाशब्दवत् इस को मानना अभीष्ट नहीं है तो स्टेशन आदि शब्दों का भी हिन्दी अनुवाद होना चाहिये। अथवा डाइरेक्टर शब्द लिखना अनुचित है उसका भी अनुवाद हो जाना चाहिये और कितनी ही पाठशालाओं का व्यवहार मिडिल स्कूल के इस शब्द से होता है-उसे भी अशुद्ध समझ लेना योग्य है। जो हो इस 'मध्य हिन्दी' शब्द का किस विभक्ति और किस क्रिया के द्वारा किस पद के साथ अन्वय है यह तनिकभी ज्ञात नहीं होता है। मैं अनुमान करता हूं कि लिखने वाले का आशय यह है कि मध्य हिन्दी में (का) इतिहास अर्थात् मिडिल स्कूल में मिडिल वर्नेक्युलर परीक्षा के लिये पाठ्य इतिहास। यह आशय सौ प्रयत्न करने पर भी बिना विभक्ति के स्पष्ट नहीं होता अथवा यह शब्द विभक्ति के बिना सामर्थ्यहीन होगया है।

(ख) 'चित्र और छवि सहित' यह किस का विशेषण है? यदि 'इतिहास' का विशेषण है तो इस का उस के निकट रहना उचित था और यदि इसे 'मध्य हिन्दी' का विशेषण मान लेता हूं तो अर्थ की संगति नहीं होती। दोनों प्रकार से गड़बड़ ही है। बंगला में छवि शब्द का अर्थ तस्वीर होता है, हिन्दी में नहीं। यदि इसे किसी प्रकार हिन्दी शब्द मान लूं तो फिर चित्र शब्द की क्या आवश्यकता है? पुनरुक्ति भारी दोष है। वही यहां आसन जमा कर बैठ गया।

मेदिनी कोष (छविः शोभारुचोः) के अनुसार यदि इस का अर्थ शोभा और दीप्ति माना जाय तो आकाङ्क्षा रह जाती है कि पुस्तकीय बहु विषयों में से किस की दीप्ति अथवा शोभा ? यदि सर्वाङ्ग सुन्दर, ' छवि सहित ' शब्द का आशय है तो चित्र का उल्लेख व्यर्थ है ।

(ग) ' छवि सहित ' इस के बीच में 'के' अथवा 'से' विभक्ति का रहना आवश्यक है उसके नहीं रहने पर चित्र का अन्वय ' सहित ' शब्द के साथ नहीं हो सकता क्यों कि यह कृतसमास समझा जायगा और " ऋद्धस्य राजपुरुषः " इस के ऐसा अशुद्ध माना जायगा ।

(घ) ' डाइरेक्टर स्त्रिकृत ' इस में दो अशुद्धियां हैं प्रथम 'डाइरेक्टर' के आगे ' से ' विभक्ति नहीं है और द्वितीय ' स्त्रिकृत ' का इकार ह्रस्व लिखा गया है। स्वर्गवासी साहित्याचार्य पं० अम्बिकादत्त व्यासजी ने भाषाप्रभाकर व्याकरण की टिप्पणी में लिखा है कि दो भिन्न २ भाषाओं के शब्दों में परस्पर समास नहीं हो सकता अतः स्कूलाध्यक्ष आदि शब्द अशुद्ध हैं । इस से सिद्ध होता है कि समास के द्वारा भी डाइरेक्टर शब्द की आगेवाली विभक्ति लुप्त नहीं हो सकती अर्थात् वह शब्द सर्वथा अशुद्ध है ।

(ङ) ' १९०२ ' इस के साथ ' ई ' यह अक्षर अवश्य लिखना उचित है अन्यथा साधारण लोगों को विक्रमीय सम्वत् का सन्देह हो सकता है तथा 'चार आना' के साथ मूल्य

शब्द अवश्य लिखना चाहिये क्योंकि ऐसी ही प्रथा है। इत्यादि कई स्थूल अशुद्धियां दिखाई पड़ती हैं ।

अब मैं इस पुस्तक के दोषों को कई भागों में बांट कर अतीव संक्षिप्त रूप से उनका उल्लेख करता हूं ।

व्याकरण दोष ।

(२) हमारे आत्मा .. प्राप्त होंगे (३ पृष्ठ) इस में 'हमारी और होंगी' लिखना उचित है क्योंकि आत्मा शब्द स्त्री लिंग माना जाता है ।

मिली हुई पूर्वी हिन्दुस्थानी कम्पनी हुआ (३२ पृ०) इस में रेखांकित पद अशुद्ध है । स्वयं अनुवादक ने भी दूसरे स्थल में कम्पनी शब्द को स्त्रीलिंग माना है । शायद यह " जाइण्ट ईष्ट इण्डियन कम्पनी" का अनुवाद है !!

मरहट्टा सरदार को (३६ पृष्ठ) यहां विशेषण के आकार के स्थान में एकार लिखना चाहिये ।

नजरें भेजना (३९ पृष्ठ) यहां 'भेजनी ' शब्द बोलने में अच्छा मालूम होता है ।

जिसकी दक्खिन का बाग कहते हैं (६९ पृष्ठ) इस वाक्य में ' की ' के स्थान में ' को ' ठीक है ।

वहां से शिकस्त खाकर राजपूताने भाग गया जहां कि कुछ काल पीछे मर गया (७२ पृ०) यहां दो क्रियाएं दीख पड़ती हैं किन्तु कर्त्ता एक भी नहीं । बलिहारी है ऐसी उत्तम

वाक्य योजना की । दो क्रियाओं के बीच में संयोजक 'और' शब्द का भी अभाव है तदतिरिक्त और भी कई वैचित्र्य ध्यान देने के योग्य है ।

इस को इत्नी चोट लगी कि मर गया (२०पृ०) इस में यह सन्देह होता है कि कौन मर गया ? 'इस को' मर गया? 'इस को' नहीं मर सकता । "यह" मर सकता है परन्तु वाक्य में 'यह' शब्द हई नहीं है ।

मुहम्मद गोरी के कोई लड़का न था (१३ पृ०) यहां 'को वा का' लिखना योग्य है क्योंकि अग्रिम शब्द बहुवचन अथवा किसी विभक्ति से जब युक्त होता है तब पूर्ववर्ती 'का' के स्थान में 'के' हो जाता है ।

विस्तर पर से उठ नहीं सकता था और ऐसा मालूम होता (१९ पृ०) इस में 'होता' क्रिया हेतु हेतु मद्भूत कालिक है अतः यहां एक हेतु और दूसरी हेतुमती दो क्रियाओं की आवश्यकता है केवल एक क्रिया लिखने से काम नहीं चल सकता अथवा "होता था" ऐसा लिखना उचित है ।

वीमारी को उस से हटा मैंने अपने ऊपर लेली (१९पृ०) इस वाक्य मे 'ले ली' क्रिया संस्कृत की "वाधति" क्रिया के समान सुनने और पढ़ने वाले के चित्त को व्याकुल कर देती है । कर्म में 'को' विभक्ति है इसलिये 'ले लिया' यही लिखना व्याकरणसम्मत है ।

वह राजा होना नही चाहता था और बुद्ध अपना नाम रक्खा (९ पृ०) वादशाह घबड़ाया और भेजा (३५ पृ०)

शिवाजी लेता गया और खां को ....मार डाला (३८ पृ०) इन वाक्यों के खण्डान्वय निम्न लिखित रीति से होते हैः—वह राजा होना नहीं चाहता था और (वह) बुद्ध अपना नाम रक्खा बादशाह घबड़ाया और (बादशाह)... भेजा तथा शिवाजी लेता गया और (शिवाजी) खां को मार डाला। ये अन्वित वाक्यावली कर्त्ताओं के आगे 'ने' विभक्ति के नहीं रहने से सर्वथा अशुद्ध हो गई है। इस प्रकार की वाक्यावली ग्रन्थ में बहुत हैं जो ऐतिहासिक विषयों के अनुशीलन करने के समय पाठकों के चित्तों को चंचल करने में पूरी समर्थ हैं।

इन दोषों से वाक्यों के संस्कार च्युत हो जाते हैं अतः इन्हें विद्वान लोग च्युत संस्कृति कहते हैं।

भाषादोष।

(२)

सादा और खुश जिन्दगी विताते रहे (२ पृ०) यहां मैं यह दिखलाना नहीं चाहता हूं कि 'सादा' शब्द 'जिन्दगी' के विशेषण होने के कारण व्याकरण से अशुद्ध है। यह वाक्य मुहाविरे के अनुकूल नहीं है। पढ़े लिखे लोग इसे गंवारों की बोली समझते हैं, और कहते हैं कि जिन्दगी सादी नहीं होती किन्तु स्वभाव सादा होता है। उन में के पहाड़ों और जंगलों में भाग गये (४ पृ०) यहां 'में के' नहीं बोलते, लोग 'में से' बोलते हैं।

एक आवाज़ उस को कहती हुई सुनाई दी (९ पृ०) यह अपूर्व वाक्ययोजना है अथवा पदार्थ विद्या की पराकाष्ठा यहीं समाप्त हो गई है। इस पुस्तक में आवाज कहती है और कुछ दिनों के बाद किसी दूसरी पुस्तक में मनुष्य के ऐसा यह देखेगी सूंघेगी और भोजन करेगी। उस को आवाज सुनाई दी इतना लिखने से कौनसा अभिप्राय अवशिष्ट रह जाता था जिस के बोध के लिये ' कहती हुई ' यह विशेषण जोड़ा गया है ?

उस के उस समय के बादशाह का नाम गोरी था (१३पृ०) यहां पाठक स्वयं सोचें कि शब्दों के प्रयोग करने की क्या यही शैली है ?

चुंगी और और ऐसे ऐसे महसूल टिकस में शामिल हैं (१०१) यह वाक्य मुहाविरे के विरुद्ध है इस में ' और ' शब्द का प्रयोग ठीक रीति से नहीं हुआ है तथा ' टिकस ' यह ग्राम्य शब्द है पढ़े लिखे लोग टैक्स कहते हैं इत्यादि।

वाक्य दोष।

यह जातियां बढ़ती गई यहां तक कि (१ पृ०) इस में ' यहां तक ' यह शब्द क्रिया के द्वारा वाक्य समाप्त होने पर गृहीत हुआ अतएव यहां समाप्त पुनरात्तता दोष हुआ।

"एक बद सौतेली मां थी" (६ पृ०) शान्तम् शान्तम् ग्रन्थकार ने क्या लिखा ? कैकेयी के लिये 'बद' शब्द का प्रयोग अत्यन्त अनुचित ज्ञात होता है। वह विचारी केवल निमित्त मात्र थी

हिन्दुओं के विचारानुसार स्वयं रामचन्द्र सब करते थे । उन्हें लौकिक दृष्टि से क्रूरा अथवा स्वार्थिनी कह सकते हैं परन्तु वद कहना सर्वथा अनुचित है क्योंकि स्त्रियों के साथ 'बद' शब्द का प्रयोग उस विरुद्धार्थ की प्रतीति कराता है जिसे कोई हिन्दू अपने मुंह से ऐसे स्थल में नहीं कह सकता फिर मैं उस का उल्लेख कैसे करूं ?

'उस ने बेवकूफ बुड्ढे राजा से राम और उस के भाई लक्ष्मण को दक्षिण के वन में भिजवा दिया' (६ पृ०) शिव २ यहां हिन्दुओं के पूज्य को पूरी गाली दी गई। दशरथ जी को बेवकूफ लिखना अतीव अनुचित है। वे बड़े धर्म्मात्मा सत्य-प्रिय थे उन्हों ने प्राण और पुत्र त्याग दिये किन्तु सत्य नहीं छोड़ा ऐसे संसाररत्न पुरुष को बेवकूफ लिखना लेखक को हास्यास्पद बनाता है। यहां पूरा अनुचितार्थ दोष है।

उन्हों ने काली जंगली कौमों से जिन को आर्य्य बंदर कहते थे दोस्ती की (८ पृ०) गौतम जिस की उमर तीस वरस की थी चला गया (१० पृ०) इन दो वाक्यों में वाक्य के भीतर एक २ रेखांकित वाक्य घुस गया है इस से ये वाक्य शीघ्र अर्थ बोधन में समर्थ नहीं होते जैसे गर्भिणी स्त्री आलस्य के मारे चटपट कोई काम नहीं करती। इस दोष को बुद्धिमान लोग गर्भितवाक्यता कहते हैं। ग्रन्थभर में ऐसे दोष सैकड़ों हैं।

जब राम वाहर गये थे तो सीता को दुष्ट रावण हर ले गया (८ पृ०) यहां पर 'जब' की आकाङ्क्षा पूर्ति के लिये

"तव" लिखना चाहिये; वह नहीं है। इस प्रकार की अशुद्धि से पुस्तक नितान्त दूषित हो गयी है।

सीता थी (६ पृ०) सीता आगई (८ पृ०) पहले वाक्य में एक वचन सीता हैं और दूसरे में वहु वचन। इतनी अनवधानता ग्रन्थ की शैली को नष्ट कर देती है। इसे लोग एक प्रकार से भग्नप्रक्रमता भी कह सकते हैं।

शब्द महाभारत का अर्थ है (८ पृ०) यहां पर अस्थान पदन्यास हो गया है। इस का शुद्ध दोष रहित रूप "महाभारत शब्द का अर्थ है" ऐसा होगा। यहां भी अंग्रेजी के "दि वर्ड महाभारत मीन्स" की "मक्षिका स्थाने मक्षिका" बनाई जान पड़ती है।

पाण्डव और उन के पक्षवाले जीते (९ पृ०) यहां "पाण्डव जीते" इतना ही लिखने से उन के पक्षवालों का जीतना स्वतः प्रकाटित हो जाता है; पक्षवालों का उल्लेख व्यर्थ है। गवर्न्मेण्ट ने अफरीदियों को जीता है इस वाक्य से गवर्न्मेण्ट के पक्षवाले महाराजों का भी उनको जीत लेना समझा ही जाता है।

तब तैमुर ने ....हमला किया (१६ पृ०) जैसे इस पुस्तक में कई जगह बेमौके 'तब' टपका है वैसे यहां भी आया है। 'जब' का ठिकाना नहीं 'तब' उछल कर चला आया। यदि प्रक्रान्त और प्रसिद्धादि का विषय होना तो किसी प्रकार निर्वाह हो सकता यहां वह भी नहीं है।

यह सौदागर उनी कपड़ा (तथा) तांबे पारे लोहे और फौलाद का असबाब लाते थे (३२ पृ०) इस वाक्य में मेर्चेन्ट

के भीतर मैंने अपनी ओर से तथा शब्द जोड़ दिया है यदि मैं उसे निकाल दूं तो वाक्य असम्पूर्ण होजायगा इस से स्पष्ट है कि यहां न्यूनपदता दोष है।

लड़ाई शुरू हुई और बीस बरस तक रही समाप्त हुई (४७ पृ०) इस वाक्यावली में ‘ समाप्त ’ के पहले ‘और’ शब्द की आवश्यकता है न कि ‘ बीस ’ के पहले। “रही समाप्त हुई ” भी खासी दिल्लगी है !

इसे मरहट्टों को आधा मुल्क देना पड़ा (६१ पृ०) इस वाक्य की योजना बहुत ही बुरी हुई है इसी से पढ़ने वाले को सन्देह होता है ‘इसे’ अर्थात् निज़ाम को मरहट्टों ने आधा मुल्क दिया अथवा इस (निज़ाम) ने मरहट्टों को आधा मुल्क दिया? यहां सन्देह का कारण दाता और ग्रहीता दोनों के आगे वर्त्तमान द्वितीया विभक्ति ही है। ‘उस ने अकबरखां और उसके अफगानों को मार दिया, काबुल को ले लिया और तबाह कर डाला’ (७९ पृ०) यहां कई अशुद्धियां हैं। जब अकबर खां आदि का मारना, काबुल का लेना और उसे तबाह करना यथाक्रम हुआ है तब पहले दो पूर्व कालिक क्रियाएं होनी चाहिये और अन्त वाली समापिका। वैसा नहीं हुआ। यही बड़ी भारी गड़बड़ है।

माता और पिता की सेवा करनी चाहिये इतना कहने से स्वकीय ही माता पिता की सेवा समझी जाती है न कि परकीय माता पिता की (मातरि वर्त्तितव्यं पितरि शुश्रूपितव्यम् नचोच्यते स्वस्यां मातरि स्वस्मिन्पितरीति महाभाष्ये) उसी म-

कार ऊपर के वाक्य में 'उसके' पद नहीं कहने पर भी 'अकबर खां के अफगान' ऐसा बोध अवश्य होगा। 'उसके' पद अधिक ही है अथवा इसका प्रयोजन बहुत ही थोड़ा है।

'इस की आबादी ५० लाख' (१०३ पृ०) यहां आबादी प्रकरण के अनुसार मनुष्यों की जान पड़ती है किन्तु मनुष्य शब्द के नहीं रहने से अर्थ समझने में जरा देर लगती है। 'मैं मूर्ति का वेचने वाला नहीं हूं किन्तु मूर्ति का तोड़ने वाला। उस ने गदा लेकर बुत को मारा और टुकड़े२ कर डाला' (१२पृ०) यहां पर दो वार मूर्ति शब्द के लिखने से कथितपदता हुई और तीसरी वार 'बुत' शब्द के प्रयोग से भग्नप्रकूमता हुई। यहां एक वार मूर्ति लिख देने पर सर्व नाम से काम चल सकता था। इस में से "मारा और" इतना अंश निकाल देने से किसी प्रयोजन की हानि नहीं होती है। फिर इस की क्या आवश्यकता है? यहां महमुद ने किस से मारा अथवा टुकड़ा किया उसका वर्णन नहीं है यदि कहा जाय कि गदा का उल्लेख हुई है तो उस में तृतीया विभक्ति जोड़ने से मारने आदि की प्रतीति होगी। अन्यथा कभी नहीं।

कई स्थलों में साज़िश आजस (इन दोनों के अर्थ कठिन हैं) नकारा पहिले पहिल (ये दोनों शब्द दिहाती हैं) जब कि, जो कि और जहां पर कि (इन तीनों में कि शब्द निरर्थक है) इत्यादि बहुत ही अपूर्व रीति से प्रयुक्त हुए हैं मैं उन का वर्णन छोड़ देता हूं।

लिपिदोष ।

जित्ने, उत्ना, मुशकिल, मशहूर, वितीत, कयी, अन्त्यम, शाहिन्शाह, हुयी, रियासत, अपने हां और त्योंहि इत्यादि अनेक शब्द अट्ट के सट्ट लिखे गये हैं जिन की ओर ध्यान देने का अवकाश मुझे नहीं है ।

विषयदोष ।

प्रत्येक पुस्तक में अनुबन्ध-चतुष्टय होता है उस में एक विषय भी है । तद्गत दोष नितान्त असह्य होते हैं। इस पुस्तक में कहीं २ ऐतिहासिक बातों के वर्णन में भी त्रुटि हो गई है मैं उसी को विषय-दोष पद से व्यवहृत करता हूं ।

आर्य्य.... . मध्य एशिया के पश्चिम भाग में रहती थीं जिस भाग को अब तुरकिस्तान कहते है (१ पृ०) इस पंक्ति का आशय यही हुआ कि आर्य्य (हिन्दू) । यहां के प्राचीन निवासी नहीं हैं ये तुरकिस्तान से यहां आये हैं। यह बात निम्न लिखित युक्तियों से ठीक नहीं मालूम पड़ती ।

(१) आर्य्यों की किसी पुस्तक में यह बात नहीं लिखी हुई है कि हम लोग बाहर से आये ।

(२) आर्य्यों का अधिकार (दख़ल कब्जा) इस बात को प्रमाणित करता है कि हम (आर्य्य) यहां के प्राचीन रहने वाले हैं तथा बाहर से नहीं आये ।

(३) यदि आर्य्य यहां के आदिम निवासी नहीं होते तो आर्य्यावर्त्त के अतिरिक्त इस का दूसरा नाम भी प्राचीन सुनाई पड़ता ।

(४) आसमुद्रात्तु वैपूर्वादा समुद्रात्तु पश्चिमात्
तयोरेवान्तरं गिर्य्योरार्य्यावर्त्तं विदुर्बुधाः ।१।

मनुस्मृति के इस वचन से वर्मा से लेकर ईरान तक की भूमि को आर्य्यावर्त अथवा हिन्दुस्थान कहते हैं। अतएव ईरान (फारस) के निकट आर्य्यों के आने जाने के कोई चिन्ह दृ-ष्टि-गोचर हो जायँ तो वे उन के आदिम वासित्व के बाधक नहीं हो सकते क्यों कि वे व्यापार और युद्ध आदि के लिये सीमोल्लङ्घन भी करते हों ऐसी सम्भावना है । मनुजी ने लिखा भी है :—

शनकैस्तु क्रियालोपादिमाः क्षत्रिय जातयः ।
वृषलत्वं गता लोके ब्राह्मणादर्शनेन च ॥
पौण्ड्रका श्चोड्रद्रविड़ाः काम्बोजा यवनाः शकाः ।
पारदापन्हवा श्चीनाः किराता दरदाः खशाः ॥
(मनु० १० अ०)

अर्थात् कितनी ही क्षत्रिय जाति धीरे २ क्रिया के लोप से तथा युद्धादि के कारण देश के बाहर जाने पर ब्राह्मण के अ-दर्शन से शूद्र हो गई । वे इस समय पौण्ड्रक (मेदनीपुर प्रदेश) ओड्र (कटक) द्रविड़ (दक्षिण देश) काम्बोज (अरब) यवन (मक्का एक देश विशेष) शक (तुरकिस्तान) पारद (चीन का एक खण्ड) अपन्हव (काबुल) चीन किरात (सौंताल परगना) दरद (भूटान) तथा खश (ईरान) में बसती हैं । बस तुरकिस्तान में आर्य्यों के चिन्ह मिल जाने से

वे वहां आदिम निवासी नहीं हो सकते किन्तु इन्हें भारत वर्ष के प्राचीन निवासी ही मानना उचित है।

(५) गायन्ति देवाः किलगीतकानि
धन्यास्तु ये भारतभूमिभागे।
स्वर्गापवर्गास्पदमार्गभूते
भवन्ति भूयः पुरुषाः सुरत्वात्॥
(विष्णु पुराण २ अंश)

यदि आर्य्य यहां के प्राचीन आदिम निवासी नहीं होते तो इस देश को स्वर्ग और मोक्ष का मार्ग उक्त श्लोक के द्वारा कभी नहीं स्वीकार करते और यह कभी नहीं लिखते कि पुण्य भूमि आर्य्यावर्त्त ही है।

(६) यदि आर्य्य यहां के आदिम निवासी नहीं होते तो जिस देश से ये आये हैं उसकी अपने मुंह से म्लेच्छ देश कह कर निन्दा नहीं करते।

कृष्ण सारस्तु चरति मृगो यत्र स्वभावतः।
स ज्ञेयो यज्ञियो देशो म्लेच्छदेशस्त्वतः परः॥
(मनु० अ० २)

अर्थात् इस के वाद सव म्लेच्छ देश हैं।

(७) यदि आर्य्य यहां के आदिम निवासी नहीं होते तो यह कभी नहीं लिखते कि इस देश के उत्पन्न अग्रजन्मा से सारे संसार के लोग विद्या सीखें जैसे-

एतद्देशप्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मनः।
स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन् पृथिव्यां सर्वमानवाः॥

इस श्लोक में ' एतद्देश प्रसूत ' यह पद बहुत ही ध्यान देने के योग्य है इस से प्रमाणित होता है कि ब्राह्मण इसी देश में उत्पन्न हुए हैं। फिर उन के साथी क्षत्रियादिकों के लिये विशेष प्रमाण की आवश्यकता नहीं है ।

ध्यान देने की बात है कि यदि ये दूसरे देश से आये होते तो उक्त श्लोक के द्वारा इस देश को गुरु और अपने निज देश को शिष्य कभी नहीं बनाते ।

यहां देश से देशीय का गृहण समझना चाहिये। यह भी एक मुहाविरा है ।

देखिये आज कल जो लोग बाहर से आकर यहां बसे हैं उनके यहां जिस विद्या की अभी चर्चा चल रही है उसे भी अपनी ही वस्तु समझते हैं और उस विषय में इस देश को गुरु मानना नहीं चाहते । फिर कब सम्भव है कि आर्य्यों ने यहां के आदिम निवासी हुए बिना इस देश पर इतनी ममता दिखाई हो ? मेरी समझ से आर्य्य यहां के प्राचीन आदिम निवासी हैं । यही विश्वास अङ्गरेजी इतिहासों के पढ़ने के पहले सब किसी को था और ऐसा ही विश्वास होना उचित है ।

मैंने एक बार अपने पूज्य पंडित जी से पूछा कि आर्य्य लोग यहां के आदिम निवासी हैं इस में क्या प्रमाण है? पण्डित जी महाराज प्रश्न सुन कर बहुतही अकचकाये और बोले कि सृष्टि के आदि में उत्पन्न मरीचि, अत्रि, अङ्गिरा और पुलस्त्य आदि महर्षियों के जन्म स्थान का चिन्ह क्या भारत वर्ष को छोड़ कर दूसरे स्थल में भी मिलता है जो आप मुझ से ऐसा प्रश्न करते हैं ?

कृष्णसारो मृगो यत्र धर्म्म–देशः स उच्यते ।
ब्रह्माद्या देवताः सर्वे मुनयः पितरः खग !
धर्मः सत्यञ्च विद्या च तत्रातिष्ठन्ति सर्वदा ॥

(गरुड़पुराण २ अध्याय)

कृष्णसार मृग जहां हो अर्थात् मथुरा के आस पास की बहुत सी भूमियां धर्म देश के नाम से प्रसिद्ध हैं वहीं मुनिगण सर्वदा निवास करते हैं इत्यादि । यदि आर्य्य लोग दूसरे देशों से आये हैं तो यहां सर्वदा निवास करते हैं यह गरुड़ पुराण की बात झूठी ठहरानी चाहिये ।

पूर्वे किराता यस्यान्ते पश्चिमे यवनाः स्थिताः
ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्या मध्ये शूद्राश्च भागशः ।

(विष्णुपुराण)

जिस भारतवर्ष की पूर्वान्तदिशा में किरात (जंगली) और पश्चिमान्त दिशा में म्लेच्छ और बीच में यथा भाग ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य और शूद्र निवास करते हैं,

जिस व्यासने इतनी बात लिखी उन्हें क्या यह लिखने नहीं आता था कि ये बाहर से आये? यह लोग वेद मंत्र गाया करते थे यह मंत्र पिता पुत्रों को ठीक २ कंठ कराते थे ··· अपने लड़के को पढ़ाते थे (२ पृ०) यहां पर एक बात कही गयी है वह स्पष्ट नहीं है मैं उसे स्पष्ट कर देता हूं कि आर्य लिखना नहीं जानते थे अतएव वेदों को ठीक २ कंठ करा देते थे इत्यादि । मैं कहता हूं कि आर्य्य लोग उस समय से लिखना जानते हैं जिस समय और लोग कुछ नहीं जानते थे । देखिये :—

उत त्वः पश्यन्न ददर्श वाचमुतत्वः शृण्वन्न शृणोत्येनाम्

(ऋग्वेद २ अ० २५ वर्ग)

अर्थात् मूर्ख वाणी को देखता हुआ नहीं देखता और सु-
नता हुआ नहीं सुनता है । भला बिना लिखे मनुष्य वाणी को
कैसे देख सकता है ? इस से सिद्ध होता है कि आर्य्य पहले
लिखना पढ़ना जानते थे जो नहीं जानता था उसी की निन्दा
इस वेद मंत्र में की गई है । पुस्तक दान का माहात्म्य बड़ी २ प्राचीन
पुस्तकों में देखा जाता है ; बिना लिखे पुस्तक दान कैसे हो
सकता है ?

पाणिनि का ' लिख अक्षरविन्यासे ' यह कथन मेरी बात
को भली भांति पुष्ट करता है ।

प्राचीन समय के बाण मिलते हैं जिन पर राजाओं के
नाम खुदे हुए हैं जो एक प्रकार का लिखना ही है ॥

वे प्रकाशमान और सहायक देवताओं की पूजा करते थे ।
.... आग की जरूरत होती थी इसलिये वे विशेष कर अग्नि
देवता की पूजा करते थे ......मेह की जरूरत है...... इन्द्र की
पूजा करने लगे वे बादल के गर्जने को समझते थे कि इन्द्र की
आवाज है बिजली की चमक को समझते थे कि उस के भाले
हैं कि जिन से काले बादलों को छेदकर खेतों में पानी पहुं-
चाता है । (३ पृ०) इन पंक्तियों के द्वारा यह बात दिखलाई
गई है कि वे पहले जड़ की पूजा करते थे उन्हें ईश्वर का ज्ञान
नहीं था । यद्यपि यह बात स्पष्ट शब्दों में नहीं कही गई है तथा-
पि सभी पढ़े लिखे लोग ऊपर की कही पंक्तियों को पढ़ कर
तुरंत स्वीकार कर लेंगे कि लिखने वाले का आशय यही है ।
धर्म्म सम्बन्धी विषय होने के कारण इस पर कुछ लिखने की

इच्छा मेरी नहीं थी किन्तु समालोचकीय कर्त्तव्य के अनुसार इस पुस्तक का आर्यों की पुस्तक से विरोध दिखलाना मैं उचित समझता हूं। आर्यों का धर्म्म विचार बड़ा उन्नत है; उसका समझना टेढ़ी खीर है। वे एकही बात को स्थूल और सूक्ष्म अथवा आध्यात्मिकादिक भेद से कई रीति से वर्णन करते हैं।

प्राचीन आर्य ऋग्वेद के अष्टम अष्टक के निम्न लिखित मंत्र से जानते थे कि सूर्याचन्द्रमसौ धाता यथा पूर्व मकल्पयत् (ऋक्) ईश्वर सूर्य आदि प्रकाशमान पदार्थों को प्रति सृष्टि में बनाया करता है अतः तीसरे पृष्ठ में लिखे हुए उक्त वाक्य के साथ पूजाकी तस्वीर छापनी अनुचित है और आर्यों को जड़-पूजक प्रमाणित करने की चेष्टा व्यर्थ है॥

इन्द्रं मित्रं वरुण मग्नि माहुरथो दिव्यः स सुपर्णो गरुत्मान्।
एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्त्यग्निं यमं मातरिश्वानमाहुः॥

(ऋक्. २ अष्टक ३ अध्याय २३ वर्ग)

बुद्धिमान् एकही ईश्वर को इन्द्र अग्नि सूर्य और वरुण आदि कहते हैं। यास्क जी ने भी लिखा है कि ईश्वर की एक आत्मा बहुत प्रकार से स्तुत होती है।

महाभाग्याद् देवताया एक आत्मा बहुधा स्तूयते एकस्यात्मनोप्यन्ये देवाः प्रत्यंगानि भवन्ति (नि. दै. अ० १) बस सूर्यादि नामों से जो स्तुति है वह ईश्वर की है न कि सूर्य की। आर्य आध्यात्मिक अथवा सूक्ष्म विचार से सर्वत्र ईश्वर की सत्ता देखते हैं और सब का आदर सत्कार करते हैं। गंवार लोग उसी को कहने लगते हैं कि आर्य ईश्वर की पूजा नहीं करते हैं केवल जड़ों ... ही पूजते हैं।

पदार्थ-विद्या-शाली आर्य आधिदैविक विचार से इन्द्र(बिजली) अग्नि और वायु आदिकी पदार्थ विद्या की उन्नति के लिये उनकी स्तुति करते हैं। संस्कृत में विद्वान स्तुति गुणों के वर्णन को कहते हैं सो गुण—वर्णन संसार में जड़ और चेतन सभी का होता है। जड़ के गुणों के जान लेने से चेतन ईश्वर का वोध होता है। यही शैली सांख्य शास्त्र की भी है। यही कारण है कि आर्य जड़ों का वर्णन करते हैं सही किन्तु उन्हें ईश्वर नहीं मानते हैं। न्याय-शास्त्र की भी सम्मति है कि ईश्वर से भिन्न सभी पदार्थों के ज्ञात हो जाने से ईश्वर का वोध हो जाता है देखिये(निरुक्त से)आर्य इन्हें पुरुष भिन्न अर्थात् चेतन रहित समझते हैं।

अपरमपि तु यद् दृश्यतेऽपुरुषविधं तद् यथा भिर्वायु रादित्यः पृथिवी चन्द्रमा इति। यथो एतच्चेतना वद्धि स्तुतयो भवन्ति (नि. दै. १ अ०) अर्थात् अग्नि और वायु आदि पुरुष के ऐसा नहीं दीख पड़ते किन्तु चेतन के तुल्य इन के गुणों का वर्णन होता है।

इन्द्र के हाथ पैर और वज्र धारण करने का वर्णन संस्कृत का एक महाविरा है क्योंकि देवता की आत्मा ही सब कुछ है और वातें वर्णन शैली के अतिरिक्त कुछ नहीं हैं। देखिये, आत्मैवेषां रथो भवत्यात्माश्वा आत्मायुधमात्मेषव आत्मा सर्वं देवस्य। अथापि पुरुष विधकै रङ्गैः संस्तूयन्ते (नि. दै. १ अ०)॥

यस्मात्परं नापरमस्ति किञ्चिद्यस्मान्नाणीयोनज्यायो ऽस्ति कश्चित् वृक्ष इवस्तब्धोदिविष्ठत्येकस्तेनेदं पूर्णं पुरुषेण सर्वं इत्यादि उपनिषद् वचन से ईश्वर की सीमि को सर्वत्र देखने वाले

कुछ महर्षियों ने उस उस विद्या में पारङ्गत होने के कारण उस उस के अभिमानी और ऊपर के लोक में रहने वाले देवताओं को आधि भौतिक विचार से इन्द्रादि मानना स्वीकार किया। आज कल भी देखाजाता है कि जो वड़ा विद्वान होता है उसे सरस्वती कहते हैं।

आर्य्य सर्वदा स्थूल और सूक्ष्म विचारसे ईश्वर ही की उपासना करते हैं। देखिये जड़ रेल जहाज और तार की प्रशंसा भी उसके वनाने वाले चेतन की प्रशंसा समझी जाती है।

पुस्तक में लिखा है कि आर्य्य रसोई वनाने और खेती आदि के करने के लिये अग्नि और इन्द्र आदि की पूजा करते थे किन्तु निम्न लिखित मंत्र से मालूम होता है कि संसार की सभी वस्तुओं के लिये प्रार्थना ईश्वर ही से करते थे और अग्नि आदि को उसके अधिकार में समझते थे।

वाजश्चमे ......वित्तश्चमे.... पृथिवीचमे .. ..
अग्निश्चमे.... विश्वेचमे देवा इन्द्रश्चमे यज्ञेन कल्पन्ताम्
(यजुर्वेद ८ अध्याय)

आर्यों की किसी पुस्तक में यह वात नहीं लिखी हुई है कि विजली की चमक इन्द्र का भाला है इत्यादि।

एक किस्म की शराव पीते थे जो कि सोम के अर्क से वनाई जाती थी (३ पृ०) राम राम !! आर्य्य लोग शराव के छूने तथा सूंघने को पाप समझते हैं इस के लिये शास्त्रों में प्रायश्चित लिखा हुआ है।

ब्रह्महत्या सुरापानं स्तेयं गुर्वङ्गनागमः।
महान्ति पातकान्याहुः संसर्गश्चापि तैः सह ॥
(मनु० ११ अ०)

अर्थात् शराब पीना महापातक है। यह कब सम्भव है कि सोम का अर्क शराब हो और आर्य्य गण उसे पीयें? आयुर्वेद शास्त्र का मदनपाल निघण्टु एक प्रामाणिक ग्रन्थ है, भारत वर्ष के सभी वैद्य उसे कण्ठस्थ करते हैं, देखिये उस में सोमलता का क्या गुण लिखा हुआ है:-

सोमवल्ली यज्ञनेता सोमक्षीरी द्विजप्रिया
सोमवल्ली त्रिदोषघ्नी कटुस्तिक्ता रसायनी

(म० नि०)

अर्थात् सोमलता चांद बेल त्रिदोष को नष्ट करती है चर्चरी है कड़वी है और रसायन है। इस में कहीं संकेत भी नहीं है कि सोमलता नशा करने वाली है जिन्हें इस वैद्यक के ग्रन्थ पर विश्वास नहीं होवै इसका अर्क पीकर परीक्षा करलें इस में तनिक भी मादक नशा वगैरह नहीं है।

इन आदमियों का बहुत आदर होने लगा सब लोग इन को पवित्र समझने लगे और इन की एक जाति अलग होगई उस समय यह ब्रह्मा को सब से बढ़कर पूजते थे इसलिये ब्राह्मण कहलाते थे। (३ पृ०)

ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद्बाहू राजन्यः कृतः।
ऊरूतदस्य यद्वैश्यः पद्भ्या ँ शूद्रो अजायत॥

(य ३१ अ० १० मं०)

इस मंत्र से यह बात प्रमाणित होती है कि सृष्टि के आदि में ही ईश्वर ने चारों जातियां पृथक् उत्पन्न ही की हैं इस के विरुद्ध लिखना सर्वथा अनुचित है।

'तेन तुल्यं क्रिया चेद्वतिः' इस सूत्र के महाभाष्य में लिखा हुआ है कि तपः श्रुतश्च योनिश्चेत्येतद्ब्राह्मण कारणम्। तपःश्रुताभ्यां यो हीनो जातिब्राह्मण एव सः अर्थात् ब्राह्मण होने में तपस्या, वेद पढ़ना और ब्राह्मण कुलमें जन्म होना तीनो कारण हैं।

ब्रह्मा की पूजा से बहुत से लोग ब्राह्मण कहलाने लगे यह बात मुझे नई मालूम पड़ती है शायद और लोगों ने भी यह बात नहीं सुनी होगी और न इसका कहीं प्रमाण है।

ब्रह्म ईश्वरं वेदम्वा वेदाधीतेवेत्ति ब्राह्मणः अर्थात् जो ईश्वर को जानता और वेद को पढ़ता है वह ब्राह्मण है इस व्युत्पति से वह बात कट जाती है कि ब्रह्मा की पूजा बहुत से लोगों के ब्राह्मण कहलाने में कारण हुई। इसी प्रकार क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र की जाति के विषय में जो बातें कही गयी हैं वे सब प्रमाण शून्य सी जान पड़ती हैं। वैसा वर्णन किसी आर्य पुस्तक में नहीं पाया जाता है।

वह जंगली कौमें जिन्हों ने आर्यों से मेल नहीं किया और जिनको कि आर्यों ने लड़ाई में जीता उनकी गुलाम हुई और उनका दरजा सब से नीचा हुआ उनकी कोई जात न थी इसलिये वे परजाया बेजात कहलाते थे।

(४ पृ०)

संस्कृत में प्रजा सन्तान अथवा रैयत (प्रजा स्यात्सन्ततौ जने) को कहते हैं। राजा की सभी जाति प्रजा कहलाती थी और कहलाती है केवल जंगली कौम ही नहीं।

जिनकी कोई ज्ञाति नहीं थी अर्थात् जो जाति के बाहर थे उन्हें (चाहे वे म्लेच्छ भाषी हो अथवा आर्ष भाषी) आर्य्य दस्यु कहते थे बेजात नहीं। मुखबाहूरुपज्जानां या लोके जातयो वहिः म्लेच्छवाचश्चार्यवाचः सर्वे ते दस्यवः स्मृता (मनु. १० अ. ४५ श्लोक) अर्थात् जो जाति के बाहर हैं वे दस्यु हैं।

सब स्त्रियां आप ही अपने पति को चुना करती थीं।

(३ पृ०)

यह स्वयम्बर विवाह की रीति है आर्य्यों के यहां सात प्रकार के और भी विवाह हुआ करते थे देखिये—

ब्राह्मो दैवस्तथैवार्षः प्राजापत्यस्तथाऽसुरः
गान्धर्वो राक्षसश्चैव पैशाचश्चाष्टमोऽधमः

(मनु. ३ अ. २१ श्लो.)

पुस्तक की उक्त पंक्ति 'सब' पद के द्वारा विषय की अपूर्णता अथवा अशुद्धि को स्पष्ट रूप से प्रकट करती है।

विधवा स्त्रियां जब उनके पति मर जाते थे तो फिर भी विवाह करती थीं।

(३ पृ०)

आर्य लोग स्त्रियों के विधवा होने पर उनका आपद् धर्म्म नियोग बतलाते थे किन्तु उनमें श्रेष्ठ द्विज जाति इसकी निन्दा ही करते थे. वेन के राज्य काल में नियोग प्रथा एकदम रोक दी

गयी और यह नियम हुआ कि केवल वाग्दत्ता विधवा के लिये नियोग विधान है क्योंकि कृतपति-संगमा नारी के दूसरे पुरुष से प्रेम भाव करने पर उसका धर्म भाव स्थिर नहीं रह सकता इत्यादि ।

अतः परं प्रवक्ष्यामि योषितां धर्म्म मापदि

. . . .

विधवायां नियुक्तस्तु घृताक्तो वाग्यतो निशि- ।
अयं द्विजैर्हि विद्वद्भिः पशुधर्म्मो विगर्हितः

....

यस्या म्रियेत कन्याया वाचा सत्ये कृते पतिः
तामनेन विधानेन निजो विन्देतदेवरः

(मनु० ९ अ०)

मेरी बात की पुष्टि इन श्लोकों से होती है। विधवा विवाह यह शब्द ही आर्य्यों के धर्म्म के विरुद्ध है क्योंकि विवाह में कन्यादान होता है, पिता ने एकबार कन्या जिस पुरुष को दी उसका अधिकार उसपर होगया उसके मर जाने पर पिता को कोई अधिकार ही नहीं है कि किसी दूसरे पुरुष को लड़की देकर जामाता बनावे। इसकी झलक नीचे के श्लोक में दीख पड़ती हैः—

न दत्वा कस्यचित्कन्यां पुनर्दद्याद्विचक्षणः ।
दत्वा पुनः प्रयच्छन्हि प्राप्नोति पुरुषानृतम्

(मनु० ९ अ०)

मेरी समझ से आर्य्यों के यहां पहले विधवाओं का विवाह नहीं होता था। वे पढ़ लिखकर प्रव्रजिता होती थीं।

भारत धर्म्म महामण्डल और आर्य्य समाज भी, वेद और शास्त्रों में विधवा विवाह के विधायक वचनों को नहीं पाकर, इसका खण्डन करते हैं।

यदि कहीं एक आधा विवाह भूल चूक से होगया हो और उसकी कथा कहीं मिलती हो तो वह आर्य्यों की रीति नहीं कही जासकती है। जिस जाति का कोई एक मनुष्य चोर हो चोरी करना उस जाति की रीति नहीं कही जाती। जब उस जाति में उस ढंग के अधिक मनुष्य हो जाते हैं तभी वह चोर के नाम से व्यवहृत होती है अन्यथा नहीं।

इस पुस्तक में ४७ अध्याय हैं उन में से मैंने केवल एक अध्याय की आलोचना की है वह भी अत्यन्त संक्षिप्त हुई है। और कितनी प्रयोजनीय बातों का उल्लेख ही नहीं होसका है।

स्फुट

अकबर ने इस के बाद राजपूत स्त्रियों औ राजपूत सरदारों की लड़कियों से शादी की (२३–पृ०)

इस वाक्य में 'राजपूत स्त्रियों' यह शब्द है। इसका अर्थ होता है राजपूत की भार्य्या। मैंने आज तक ऐसा कोई इतिहास नहीं पढ़ा है जिस में यह बात लिखी हो कि अकबर ने किसी राजपूत की भार्या से विवाह किया है।

पाचवें पन्ने में रामचन्द्रजी के तीर चलाने की तसवीर है किन्तु उसका वर्णन पुस्तक भर में कहीं नहीं है। यह बात असङ्गत सी जान पड़ती है। सैंतीसवें पन्ने में गांव की सावधान-

तासूचक तसवीर है किन्तु उसका वर्णन अड़तीसवें पन्ने में है अतः दोनों वे जोड़ मालूम पड़ते हैं। इत्यादि। समालोचक अन्त में पुस्तक पर अपनी स्वतन्त्र सम्मति प्रकाशित करते हैं किन्तु कई कारणों से मैं इस पुस्तक पर अपना मन्तव्य नहीं लिखना चाहता। सर्व साधारण, पाठक, डाईरेक्टर साहब कम्पनी और अनुवादक विचार करें कि यह स्कूलों में पढ़ाने के योग्य है कि नहीं।

(काव्य तीर्थ और व्याकरण तीर्थ)
सकल नारायण पाण्डेय

डाक की थैली।

(१)

श्रीयुत समालोचक सम्पादक समीपेषु—

चैत्र और वैशाख की आनन्द कादम्बिनी पौष के कृष्ण पक्ष में निकली है। आपने देखी होगी। मालूम होता है कि सम्पादक साहब को इसके निकालने में बड़ा कष्ट होता है। मेरी राय में आप उनको समालोचक द्वारा सलाह दें कि वह कादम्बिनी का नाम सार्थक करें। अर्थात् साल के बारह महीने निकालने की चेष्टा न करके केवल बरसात के चार अङ्क निकाल दिया करें। इस से एक तो यह लाभ होगा कि जो लोग ग्रीष्म में कादम्बिनी को देखकर बकराते है वह कुछ न कह सकेंगे दूसरे उसके सम्पादक का कष्ट मिट जायगा।

आपका

एक पत्र पाठक

(समालोचक सम्पादक की भी सम्मति है)

(२)

हिन्दी पत्रों में झूंठे विज्ञापन ।

समालोचक से हिन्दी का उपकार बहुत सा हुआ और होगा । पर एक नज़र इधर भी । हिन्दी के प्रतिष्ठितपत्रों में जो नाना प्रकार के झूंठे और भड़कीले विज्ञापन निकलते हैं जिन से देश और समाज का कितना नुकसान हो रहा है इसे आप नहीं जानते ? पत्र सम्पादक तो अपने बटाई के रुपया लेकर अलग हुए, और कानूनन ज़िम्मेदार भी न हुए, परन्तु ग्राहकों का कितना अनर्थ नाश हुआ इस पर कोई " माई का लाल " दृष्टि देगा ? समझदार तो विज्ञापनों को झूंठे समझते हैं पर नासमझ बच्चे जो थोड़ी हिन्दी पढ़कर अखबार बांचने लगते हैं इस जाल में फंसकर कैसा बिगाड़ करते हैं ? अभी मेरे लड़के ने जो ७ । ८ बरस का है मथुरा के एक विज्ञापन में गोरे होने की दवा पढ़कर झट एक शीशी २) की V. P. द्वारा डांक में मंगाली । रुपये मुझे देने पड़े । वेङ्कटेश्वर समाचार में कर्म पत्रिका का विज्ञापन पढ़कर अपने हाथ का फोटो भेजता था, पर चिट्ठी मेरे हाथ पड़ गई नहीं तो और १), २) लगते । आप इसे छापदें R. C. G. वृन्दावन

परीक्षा पत्र निरीक्षण।

जब दुर्दैव प्रबल होता है तब मनुष्य के पुरुषार्थ का प्रभाव मन्द होता है और उस के हितैषी ही (इच्छा से वा अनिच्छा से) उस की हानि के हेतु होते हैं। एक तो कुत्सित ग्रन्थों का बाहुल्य देख कर वैसे ही सन्ताप हुआ करता है कि मन्द भागिनी हिन्दी अभी तक दुर्दैव के ग्रास से नहीं छूटी, फिर, जब अशुद्ध लेख पाठशालाओं की पाठ्य पुस्तक में वा परीक्षा पत्र में देखने में आ जाता है। तब तो वह सन्ताप अपार होकर दुःख का पारावार हो जाता है पाठ्य पुस्तकों के दोष तो कदाचित् केवल साहित्य ही के पक्ष से निन्दास्पद हो सकते हैं परन्तु परीक्षा पत्र के दोष न्याय और धर्म के नाम पर धिक्कार योग्य होते हैं। कई वर्ष घोर परिश्रम कर के जब कोई विद्यार्थी परीक्षा गृह में ऐसे परीक्षा पत्र से पुरस्कृत किया जावे जिस का अधिकांश दोष पूरित होने के कारण सयानों के भी समझ में न आवे तो वह मन ही मन 'अन्याय २"! "अधर्म२"! पुकार उठे तो क्या आश्चर्य्य?

तीन वर्ष हुए जब इस प्रांत के हिन्दी मिडल के एक पर्चे पर मुझे " परीक्षकपरीक्षा " नामक लेख प्रकाशित कराना पड़ा था। आज फिर उसी परीक्षा के प्रथम दिन के पर्चों पर कुछ लिखना पड़ता है। आशा है कि बेचारी हिन्दी के नाम पर और बेचारे विद्यार्थियों के नाम पर आप मुझे अपने पत्र में कुछ स्थान देने के अतिरिक्त इस विषय में अपनी ओर से भी कुछ लिखेंगे।

एक पर्चा " हिन्दी अनुवाद " का है, इस में प्रथम प्रश्न है :—" नीचे लिखे वाक्यों का सरल हिन्दी भाषा में अनु-

वाद करो" वे "वाक्य" गिन्ती में चार हैं, दो कुण्डलियाएँ और दो दोहे। कुण्डलियाओं में छै छै नम्बर हैं, पहिले दोहे में २ और दूसरे में ४। पहिली कुण्डलिया यह है:-

करि फुलेल को आचमन मीठो कहत सराहि।
चुप रहिरे गंधी सुघर अतर दिखावत ताहि॥
अतर दिखावत ताहि लेइ रोटी संग खै हैं।
जूसी सों नहि मधुर भाषि नासा सिकुरै हैं॥
सुकवि मिल्यो रिझवार यहै तो हि मूरख हिय धरि।
फूटे तेरे भाग जात नाहिं क्यों अधमुख करि॥

यह कुण्डिलिया विहारी सतसई के एक दोहे पर गढ़ी गई है। कुण्डिलिया की छटा पीछे देखी जायगी प्रथम तो यही प्रश्न उठता है कि "रे गन्धी मति मन्द तू अतर दिखावत काहि" के बदले "चुपरहि" इत्यादि क्यों रख दिया गया? यह पाठांतर तो कविता की शोभा को नष्ट करने वाला है और विहारी लाल ऐसे कवि की लेखनी से ऐसा ढीला पोला पद नहीं निकल सकता था।

कुण्डिलिया किसी दोहे पर कही जाती है तो इसलिये कही जाती है कि मूलोक्ति का मर्म झलक आवै और कविता का चमत्कार भासित होजावे. पठान सुल्तान और भारतेन्दुजी की कुण्डिलियाएं (जो विहारी सतसई के दोहों पर बनाई गई हैं) इसी प्रकार की हैं परन्तु उक्त कुण्डिलिया जो "विहारी विहार" से ली गई है दोहे के प्रसाद में किसी प्रकार की उन्नति नहीं करती प्रत्युत उसकी सरसता को न्यून करती है

"रोटी संग खाने" की बात प्रसंगानुकूल है परंतु "जूसी" और " सिकुरै हैं " शब्द तिरस्करणीय हैं. इस प्रांत के छोटे विद्यार्थियों से " जूसी " ऐसे अप्रचलित कुशब्द का अर्थ समझने की आशा करना कठोरता है और "सिकोड़ना" के स्थान में 'सिकुड़ाना' क्रिया का प्रयोग भी प्रत्यक्ष दोष है पांचवी पंक्ति में "सुकवि" शब्द ने लड़कों को अवश्य चक्कर में डाला होगा क्योंकि वे चतुरता पूर्व्वक उसका अर्थ "अच्छा कवि" समझते होंगे, वे बेचारे क्या जानें कि "सुकवि" किसी सुकवि का उपनाम वा तखल्लुस है " सुकवि मिल्योरिझवार यहै तोहि मूरखहियधरि " इस पद का बोल चाल कैसा है सो पाठक ही विचार करलें.

" धरि "—क्रिया के इस रूप से जाना जाता है कि " तू " (लुप्त कर्त्ता) की क्रिया आगे आवेगी परन्तु आगे है " फूटे तेरे भाग " ! " अधो मुख " को " अधमुख " बनाना भी अधो भाग अथवा अहो भाग की वात है. हिन्दी कविता में "अध" "आधे" के अर्थ में आता है जैसे:-

> होहु परीक्षक क्यों न तुम पूर्ण प्रशंसापात्र
> प्रश्न पत्र के पढ़तही भये अधमरे छात्र !

जो हो ! ऐसे २ दोषों के कारण बेचारे छात्रों के छै नम्बर तो यौं छै हुए. दूसरी कुण्डिलिया इस दोहे पर है:—

> कालि दसहरा बीति है धर मूरख हिय लाज
> दुरयो फिरत कतद्रुमनि में नील कंठ विन काज।

वह कुण्डिलिया न सुन्दर है न असुन्दर इसलिये उसके विषय में मैं कुछ नहीं कहता, सिवाय इस के कि जैसे "द्रुमन" को "द्रुमनि" लिखा है उसी तरह " कुंजन कुंजन " को " कुंजनि कुंजन " लिखा है, एकही शब्द को एकही पंक्ति में दो प्रकार से लिखना विद्यार्थियों के चित्त में व्यर्थ भ्रान्ति उत्पन्न कर सकता है, तौ भी इन छै नम्बरों में से चतुर विद्यार्थी चार नम्बर ले ही गिरेगा (इस कुण्डिलिया में भी " सुकवि फेरि पछतै हैं जै है कालिदसहरा " में " सुकवि " " पछितै है " का कर्त्ता बनकर गड़बड़ मचा सकता है " तै है " में यतिभंग भी है)

तीसरा वाक्य यह दोहा है:—

जाचक कहा न मांगई दाता कहा न देइ।
गृह सुत सुन्दरि लोभ नहि तन धन दे जस लेइ॥

परीक्षक महाशय पहिले स्वयं इसका अन्वय कर देखें फिर सोचें कि मिडिल के विद्यार्थियों से इस के अर्थ के समझने की आशा करना दुराशा मात्र है वा और कुछ.

पाठकों को यह तो विदित ही होगा कि ये सब वाक्य उन पुस्तकों में से नहीं लिये गए जो मिडिल में पढ़ाई जाती हैं. यह पर्चा ही unseen अदृष्ट कहलाता है.

निदान इस दोहे के दो नम्बर भी दुर्लभ हुए!

अब अन्तिम वाक्य देखिये और कहिये कि वह विद्यार्थियों के रहे सहे साहस का अन्त करने वाला है या नहीं:—

इहि छबि मुख अलकावली रही लपट इक संग
मानहुं सीस भूतल पर्‍यो पीवत अमी भुजंग.

नहीं जाना जाता कि यह दोहा किस कविकुलरत्न के काव्यकोश का रत्न है ! " इहि छवि " कैसा अनूठापद है ! " इहि " क्या है ? ' इह ' का हिन्दी रूपान्तर ? अथवा इसको " अलकावली " की उपमा " अहि " समझें ? आदि में ' अहि ' और अन्त में 'भुजंग', होने से दोहा दोमुही सांप होगया, क्यों न हो, वर्णन भी तो किसी स्वरूपवती के चेहरे का है जिसके दोनों ओर दो अलकावली हैं. मैं पूँछता हूं कि क्या परीक्षक को अंगवर्णन का विषय छोड़ दूसरा विषय ही न रुचा जो ऐसा विषमय दोहा विद्यार्थियों के सामने रख दिया ? और यदि ऐसा ही करना था तो यदि वे मधुर पदों में उस विष को रखते तो भी कुछ संतोष होता जैसे अलकावली दंश करने वाली बांधी गई है वैसे ही यह कविता भी काटे खाती है. मैं नहीं समझता कि इस अशुद्ध दोहे का अर्थ कोई लड़का वा सयाना ही कैसे समझ सकता है अब तक उसके लिपि दोष, छन्दो भंग दोष, और व्याकरण दोष न निकाल डाले जावें ।

कवि कदाचित् यह कहता है कि ' मुख और अलकावली एक संग लिपट रहे हैं' यदि ऐसा है तो 'रही' के स्थान में 'रहे' होना चाहिये और यदि 'रही' शुद्ध है तो ' मुख ' की विभक्ति में अस्पष्ट रहने के अतिरिक्त ' इक संग ' का अर्थ बिगड़ता है और ' इक संग ' के स्थान में ' मुख संग ' होना चाहिये. दोहे का दूसरा अद्धा तो पढ़ते ही नहीं बनता जब तक उसके सीस का (' सीस ' शब्द का अथवा आदि शब्द ' मानहुं '

का) तोड़ फोड़ न किया जावे ! विद्यार्थियों को हिन्दी मि-डिल पास करने के लिये रसिक भी होना चाहिये और कवि भी होना चाहिये जिससे वे प्रसंग को समझ कर अशुद्ध वाक्य को (ठीक परीक्षक के हृदय स्थित भाव के अनुकूल) शुद्ध करलें तब उसका अनुवाद करें ! कठिन परीक्षा है भगवन्! सरस्वती सहाय रहो !

इस अद्धे में एकही मात्रा अधिक होने से छन्द बिगड़ता है, तब तो 'मानहु' को 'मनहु' कर देने से छन्द ठीक हं गया, बस अब क्या देर है अर्थ भी बन गया:-

'मानौ सीस भूतल (पर) पड़ा और भुजंग अमृत पीता है.'

परीक्षक महाशय ! आप इस अर्थ पर पूरे नम्बर देवेंगे वि नहीं? यदि नहीं तो क्यों नहीं? विद्यार्थी का क्या दोष है यदि आप कहें कि सीस का भूमि पर गिरना अमंगल बात है, तो विद्यार्थी से तो आपका 'मंगल' का व्यवहार ही नहीं है. आप उटपटांग प्रश्नपत्र बनाकर निष्प्रयोजन ही उसका अमंगल करते हैं. वह बेचारा विवश होकर आप के खुले खुले शब्दों का खुला खुला अकृत्रिम अर्थ करता है। अब यदि 'सीस' में कुछ गड़बड़ है और 'मानौ' ठीक है तो 'सीस' काटकर वहां क्या जमाया जावे? विद्यार्थियों को तो यह सूझा होगा कि 'सीस' के आगे 'भूत' है और भूत सीस ही पर सवार

होता है इसलिये ' सीस भूत ' इतना पद तो अवश्य ही ठीक है, एक मात्रा और चाहे जहां उड़ा दीजावे और उसने ' ल ' को काट कर यह अर्थ किया हो तो आश्चर्य नहीं:–

" मानों भूत सिर पर सवार है और वह भूत भुजंग अर्थात् विकराल है और अमृत पीता है " (अलक भी काली, भूत भी काला, ' उपमा एकदेशस्य ') अथवा

' मानो भूत के सीस पर भुजंग अमृत पीता है '

लड़के ही तो ठहरे, वे बेचारे परीक्षक के समान रसिक वा कवि थोड़े ही हैं.

विद्यार्थियों ने दोहे की मरम्मत इस भांति भी की हो तो उनका दोष नहीं:—

' मनहु सास भूतल परी ' (वही जिसका मुख वर्णित है बच्चे ही तो ठहरे)

' मनु सीसा भूतल परयो ' (अमृत का भाजन सीसा)

' मानहु सस भूतल परयो ' (सस खरहा भूतल पर पड़ता ही है)

' मीन सीस भूतल परयो ' (कच्छ मच्छ पर पृथिवी धरी ही है अथवा मीन का सीस पृथिवी पर पड़ाही करताहै)

' मानहुं संभूतल परयो ' (शंभू और भुजंग का संग प्रसिद्ध ही है)

' मनउ सीस भूतल परयो ' (अनुमान ही तो ठहरा) इत्यादि इत्यादि अधिक कहां तक कल्पना करें.

क्या ऐसे अर्थ करने वालों को परीक्षक ने कुछ नम्बर दिये होंगे ? आकाश वाणी होती है ' नहीं ' ।

परीक्षकजी सौन्दर्य्यरसिक जनाई देते हैं, कोई सुन्दर अर्थ बनना चाहिये; तब तो केवल यही उपाय है कि (सीस) की मरम्मत कर के (ससि)पढ़ा जाय. तब क्या अर्थ हुआ ? ' मानौ चंद्रमा भूमि पर पड़ा है और भुजंग अमृत पीता है ' इस अर्थ में भी ' भूमि पर पड़ने ' का भाव समझ में नहीं आता और न मुख से लिपटी हुई अलकावली के लिये चंद्र से अमृत पीते हुए भुजंग की उपमा योग्य हो सकती है. 'मानहु कंचन कलस तें अमरित पियत भुजंग' सदृश उक्तियों में भुजंग के मुख को और अमृत पीने को बड़ी चतुरता से निबाहा है ।

इस लेख को मैं अधिक नहीं बढ़ाना चाहता इतना ही कहना चाहता हूं कि पबलिक् और शिक्षा विभाग के अफ़सर न्याय पूर्व्वक विचार करें कि ऐसे परीक्षा पत्रों से (जिन के जन्म दाता योग्यों में योग्य होने के कारण ही परीक्षक बनाए जाते होंगे और जिन को लोग साहित्यांग संपन्न काव्य का नमूना मान सकते है) साहित्य के साथ और परीक्षित विद्यार्थियों के साथ कितना बड़ा और सन्ताप जनक अन्याय होता है ।

परीक्षक महाशय भी विचार करें कि साहित्य व्याकरण और लिपि सम्बन्धी त्रिदोषान्वित, कठोरता, असावधानता और अकविता के सन्निपात से निर्म्मित परीक्षापत्रों से न उनको यश मिल सकता है और न हिन्दी को कीर्त्ति मिल सकती है। यदि परीक्षक कहें कि प्रश्न पत्र छापे की भूल से अशुद्ध हो जाता है तो मैं कहता हूं कि क्या सब की सब त्रुटियां छापे ही के नाम डाली जांयगी ? और यदि छापे ही की भूल है तो उसका उत्तर दाता कौन है ? परीक्षकजी प्रश्न पत्र में कहते हैं "सुन्दर शुद्ध लेख के लिये सैकड़ा पीछे १० नम्बर नियत हैं" मैं पूछता हूं कि स्वयं परीक्षक जी ने भी प्रश्न पत्र को 'सुन्दर शुद्ध' लिखा था कि नहीं जिससे छापने में अशुद्धता न घुस पड़े ? और यदि प्रश्न पत्र का लेख 'सुन्दर शुद्ध' था तो प्रूफ के जांचने में ऐसी त्रुटि क्यों हुई जिससे गिनी २ पंक्तियों में इतनी और ऐसी जुगुप्सामयी अशुद्धियां आन विराजीं ?

हिन्दी अनुवाद ही के पर्चे में एक प्रश्न Hindi Composition 'हिन्दी वाक्य रचना' का है उसके पहिले लिखा है कि 'प्रश्न के नम्बर उसके आगे दाहिनी ओर लिखे हैं' परंतु दाहिनी ओर वा किसी ओर नम्बर नहीं लिखे ! यह भूल चाहे परीक्षक के आलस्य खाते में नाम पड़े चाहे Printer's Devil छापनेवाले शैतान के सिर मढ़ी जाय विद्यार्थी बेचारे को नम्बर न जानने से यह निर्णय करने का अवसर न मिला

कि वह अनुवाद वाले प्रश्नों में अधिक मस्तिष्क लड़ाने के बद-ले वाक्य रचना वाले भाग को अधिक समय देने से नम्बरों के लाभ में रहेगा वा नहीं ?

दूसरा प्रश्न पत्र 'भाषासार संग्रह और व्याकरण' का है उसकी कुछ पंक्तियां सुनिये:-

१ "हरख्यो बुद्धि विहीन वैठिकै फल चाखै"

२ "इकदिन तामधिस्वार लाग्यो गर काट न द्रुतगति"

(स्वार का अर्थ ?)

३ "गि रिधरदास साधुताई दे खि कहैं धू र त है"

१ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८ ९ १० ११ १२ १३ १४ १५ १६

पहिली पंक्ति में की २ मात्राएं कहीं खपगई हैं ! उसकी कसर कुछ तो दूसरी पंक्ति में निकल गई क्योंकि उस में एक मात्रा आवश्यकता से अधिक है ! रही एक मात्रा, उसकी कसर तीसरी पंक्ति में सूद और सूददरसूद समेत दूर होगई क्योंकि उस में दण्डक की रीति से केवल १६ वर्ण चाहिये थे परन्तु हैं उसमें १६ और २ = १८ ? राम राम ! साहित्य ! तेरी यह दु-र्दशा ! काव्य ! तेरी यह यमयातना ! पाठ्य पुस्तकों में, परीक्षापत्रों में, विद्वत्ता का दावा करने वालों की लेखनी से तेरी इस प्रकार हत्या ! हा हन्त !

"अहो कष्टं सापि प्रति दिन मधोधः प्रविशति" ! *

राय देवीप्रसाद "पूर्ण"

१५ दिसम्बर सन् १९०३

---

* यथा तिरश्चीनमलातशल्यं प्रत्युप्तमन्तः सविषश्च दंशः ।
तथैव तीव्रो हृदि दुःखशं कुर्मर्माणि कृन्तन्नपि किं न सोढः ?

([illegible])

सम्पादकीय टिप्पणी।

स्थानाभाव से अबकी संख्या में सम्पादकीय टिप्पणियां न छप सकी। प्रलम्ब लेखों के कारण हम धकेले गए इस बात से हमें प्रसन्नता ही है। उधर विहार के एक पाठ्यपुस्तक की दशा देखिये, इधर परीक्षकों की लीला निरखिए। जिस प्रणाली ने विद्यार्थियों को ऐसे बढ़िया ग्रन्थ पढ़ने पर बाध्य किया, वही प्रणाली उन्हें ऐसी परीक्षा में जोते तो क्या आश्चर्य है! भाग्य के सिवाय हम किसे दोष दें। क्या कोई परीक्षकों से इस पर्चे के बारे में पूछेगा? क्या हमारा आर्तनाद और परीक्ष्यों के विलाप परीक्षकों तथा अधिकारियों के हृदय को पिघला सकेंगे?

आगामि संख्याओं में विविध विषयों पर टिप्पणियां और नए नए लेख पाठकों को देने की प्रतिज्ञा करते हैं।

अत्र, तत्र, सर्वत्र ।

सन् १८७० में फ्रान्स और जर्मनी में बड़ी भारी लड़ाई हुई थी । उसमें सारे साम्राज्य कांप उठे थे । उन्हीं दिनों योरोप में संस्कृत के पढ़ने की चर्चा खूब चल रही थी । जर्मन सेना के एक सवार ने, १ सितम्बर के युद्ध का वृत्तान्त, ता. २ सितम्बर को, अपने एक स्वदेशी मित्र को, संस्कृत में लिख भेजा । उस में ऋग्वेद का एक अंश दृष्टान्त रूपसे कुछ बदल कर लिखा है । जिस देश में संस्कृत के अभ्यास का यह प्रेम है, वह देश धन्य है; जो मनुष्य युद्ध क्षेत्र में भी इस हमारी भाषा को नहीं छोड़ता था, वह मनुष्य धन्य है !! संस्कृत देव वाणी ही है, और उसके चाहने वाले 'देव' और उपेक्षा करने वाले 'पशु' बनही जाते हैं !!! पत्र यह है —

ह्यो महायुद्धं अभवत् । शत्रवः सर्वे निर्जिताः । सर्वा तेषां सेना, महाराजश्च स्वयं, बद्धः । त्वष्टा नो वज्रं स्वर्यं ततक्ष, अहन्माहिं स्वविले शिश्रियाणम् (ऋग्वेद १, ३२) । अहं सुकुशलोऽस्मि, युद्धे न महद्भयं गतोऽहम्, यद् एतस्मिन् क्षेत्रे सुपार्वते पदातय एव योद्धुं शक्नुवान्ति, तुरंगिणस्तु नार्हन्ति ।

महत्यां सेवायां भवतः शिष्यः
जुरिस वौन थीलमान ।

अर्थ—कल बड़ी लड़ाई हुई । शत्रु सब जीत लिऐ । सब उनकी सेना, महाराज भी, बांध लिए गए । इन्द्र ने हमारा दैवी वज्र बनाया, हमने अपने विल में बैठे अहि (वृत्र, सर्प, मेघ) को मारा । मैं प्रसन्न हूं, युद्ध में मैं बहुत डरको नहीं गया, क्योंकि इस पहाड़ी खेत में पैदल ही लड़ सकते है, घुड़सवार नहीं ।

बड़ी सेवा में तुमारा शिष्य,
जुरिस वौन थीलमान

अपनी बात।

सहयोगियों ने हमारे नए सन्दर्भ की जिस उदारता से समालोचना की है उस के लिए हम उन्हें अनेक धन्यवाद देते हैं। समालोचक के जो उद्देश्य हमने प्रकाशित किए हैं, या जो हमने सोच रक्खे हैं, उन्हें पूरे कराना हमारे सहयोगियों के ही हाथ है। यह इज्जत उन्हीं की दी है, और उसका निभाना भी उन्हीं का कर्त्तव्य है। भारत मित्र ने सम्पादक को कविता में कोरा कहा है। यदि "मालती" को पढ़कर यह राय दी गई है तो रसिकता का अन्त है! एसोसिएशन वाली कविता में कोई छन्दोभङ्ग वा रसभङ्ग बतावै तो हम 'कोरे' कहलावेंगे किन्तु भारत मित्र के लौटाए लेख को छापने वाले किस तर्क से कोरे कहे गये? आज कल 'सुदर्शन सम्पादक' हिन्दी बंगवासी में जो लिख रहे हैं, उस से "एसोसिएशन" ऐसा निर्दोष नहीं जान पड़ता कि भरतियाजी की कविता निकम्मी कही जाय॥ सरस्वती ने अपने सिंहावलोकन में बहुत अच्छी तरह आक्षेपों का उत्तर दिया है। हम बड़े खेद से प्रकाश करते हैं कि हमें पांचवें हाथ वाले श्लोक पर कुछ कहना पड़ा था। सरस्वती जैसी सर्वांगसुन्दर पत्रिका में इस कालिमा को हम न सह सके। द्विवेदीजी का संस्कृत साहित्य पर बड़ा अधिकार है, वे स्थूलदृष्टि से भी ५०० । ६०० श्लोक निकाल लेंगे जिनमें पांचवें हाथ की सी ग्लानि न उत्पन्न हो।

सुना है कि इण्डियन प्रेस के स्वामी वैसे श्लोकों को सरस्वती में न छापेंगे। अस्तु, अस्माभिर्यदनुष्ठेयं गन्धर्वैस्तदनुष्ठितम्।

सहयोगियों से हमारा एक और निवेदन है । वह यही, कि समालोचक के स्वामी और सम्पादक हिन्दी भाषा के प्रायः सभी लेखकों के मित्र हैं, और उन के सेवक होने का गौरव पाना चाहते हैं । समालोचक में जो कुछ लिखा जाय, वह द्वेष-मूलक और कुतर्क-मय न समझा जाय, यही हमारी हाथ जोड़ कर प्रार्थना है । 'मेहरवान' मिष्टर जैन वैद्यजी और समालोचकका सम्पादक (चाहे वह जयपुर का कोकशास्त्र वेचने वाला हो चाहे तिब्बत का लामा) जो कहते हैं उससे उन पर विद्वेष, वा अरुचि न हो । इसीसे वे सब मित्रों से क्षमा मांगते हैं और अपना व्यवहार यथावत् रखने का निवेदन करते हैं ।

आगामि संख्याओं से लेखों में, रंगरूप में, समालोचक को हिन्दी का सर्व प्रधान मासिक पत्र बनाने की चेष्टा की जायगी । इसमें ऐसे ऐसे महापुरुष लेख देंगे जिनके लिखने से हिन्दी भाषा का गौरव होगा । 'व्यय' के छप जाने पर विचार है कि एक फार्म सदा किसी ग्रन्थ का दिया जाया करे जिससे हमारे साहित्य में ग्रन्थों की भी पूर्त्ति होती जाय । ग्राहकों से भी निवेदन है कि आगामि मूल्य, वा वी. पी. भेजने की आज्ञा, देदें, क्योंकि जनवरी का अङ्क कल्पित ग्राहकों को नहीं भेजा जायगा ।

REGISTERED NO J 25.

समालोचक

भाग २] मासिक पुस्तक [संख्या १७,१८

वार्षिक मूल्य १॥)] जनवरी फरवरी १९०४ [एक संख्या ≡)

विषय

प्रोप्राइटर और प्रकाशक ।

मिष्टर जैन वैद्य, जौहरी बाज़ार, जयपुर ।

PRINTED AT THE SIDHESWAR PRESS BENARES

॥ शुद्धिपत्र ॥

	पृष्ठ	पांक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
टाइटल	१	३	संख्या १७, १८	संख्या १८, १९
		४	एक संख्या ≡)	यह संख्या ।=)
		७	३०३	२०३
		११	शङ्खनाद......	शङ्खनाद २३२
		१२	२६८	२३८
टाइटल	४	३	पसाद	प्रसाद
		३	विषयों मे	विषय मे
		४	मानहानिक	मानहानि का
		१८	छोटे लाटूश	छोटे लाट लाटूश
		२०	वहा दूर !	यद दूर !
	१९५	२३	माण्डार	भाण्डार
	१९८	८	कशी	काशी

पाठ्यपुस्तकों का सुधार—हिन्दी के पत्रों ने उपन्यासों पर बहुत कुछ लिखा। उपन्यास साधारणत: प्रौढ़ अवस्था वालों के पढ़ने के लिए होते हैं। ऐसे लोग समय काटने के लिए पढ़ते हैं और उनपर किसी विशेष पुस्तक के पढ़ने का वलात्कार नहीं होता। इसीसे यदि वे जान बूझ कर भद्दे उपन्यास पढ़ें, तो, भारतेन्दु के शब्दों में, 'उन्हे कौन जगा सकता है'? किन्तु शिक्षाविभाग की पुस्तक भला बुरा न जान सकने वाले कोमल बालकों को पढ़नाही पड़ती हैं। उन्हे जो कुछ रटाया जाय, वह अशुद्ध भाषामें न हो और बुरा न हो इस बात की सम्हाल शिक्षाविभाग के सिवाय संवादपत्रों को भी करनी चाहिए। मध्यप्रदेश की पाठ्यपुस्तकें कदाचित् अच्छी हों, किन्तु बङ्ग, विहार, युक्तप्रान्त और पञ्जाव में पुस्तकों का रोना ही है। रसायनाचार्य पैडलर साहब के शासन में न मालूम किन रसायन प्रकारों से मैकामिलन कम्पनी पुस्तकें ढालती हैं और न मालूम किस कीमिया के बल से वे "स्विकृत" हो ही जाती हैं। प्रयाग के इण्डियन पीपल ने मैकामिलन की जुगराफिया और सिटिज़न आफ इण्डिया के उर्दू अनुवाद की अच्छी क़लई खोली है। लखनऊ एडवोकेट के सम्पादक गङ्गाप्रसाद वर्मा नागरी प्रचारिणी सभा के आनरेरी मेम्बर चुने गए हैं, उन्हें युक्तप्रान्त की हिन्दी पाठ्यपुस्तकों पर कुछ लिखना चाहिए। मैकमिलन की वैज्ञानिक रीडरों की समालोचना नागरीप्रचारणी सभा करने वाली है। विहारवन्धु और प्रयाग समाचार वृथा की बातों में न पड़ कर इस आवश्यक विषय पर लिखें। मैकामिलन के इतिहास पर हम ने एक प्राप्त लेख छापा था। लेखक ने अपने सिद्धान्तों के विरुद्ध बातों पर बहुत जोर दिया है। जो हो, हम ने उस पुस्तक में एक भी पृष्ठ निर्दोष न पाया और

हमें परिडत पाण्डेय की समालोचना पर कुछ नोट जोड़ना पड़े। मेकमिलन कम्पनी की ऐसी ही वैज्ञानिक और साधारण पुस्तकों के लिए, युक्त प्रदेश का शिक्षा विभागभी, स्वच्छन्द-विहार-क्षेत्र बनने वाला है। विद्यार्थियों और उनकी भाषा का ईश्वर ही रक्षक है।

* * *

सिटीज़न आफ़ इण्डिया—लीवार्नर साहब की यह पुस्तक बलात्कार से, सभी यूनिवर्सिटियों में, कहीं मिडिल, कहीं एन्ट्रेन्स और कहीं एफ ए में घुसेड़ी गई। प्रयाग सीनेट में इस के विरुद्ध बड़े बड़े विवाद हुए, सर्व साधारण ने भी पत्रों में, सभाओं में, इस पुस्तक के मतों का विरोध किया। किन्तु पुस्तक है कि जोंक, हटती ही नहीं!! इसमें भारत वासियों की निन्दा है, पुस्तक बड़ी कठिन है, और *Imperialism* हठवाद का खासा नमूना है। उस के हिन्दी अनुवाद का नाम सुन कर हमने समझा था कि इस की कीर्त्ति भी मैकमिलन की अन्य पुस्तकों से काहे को कम होगी, किन्तु यह जान कर सन्तोष हुआ कि यह अनुवाद लाला सीताराम बी. ए ने किया है। सन्देह यही है, कि इस अनुवाद में "भूप" हं खिनी का कौनसा स्वरूप है? शुद्ध हिन्दी स्वरूप है, वा उस खिचड़ी उर्दू-मय हिन्दी का स्वरूप है जिसकी हिमायत करती बार भूप साहब ने आत्मश्लाघा करते करते नागरी प्रचारिणी सभा की निन्दा की थी?

* * *

यूनिवर्सिटाज़ बिल—पण्डित बालगङ्गाधर तिलक ने, अपने नए ग्रन्थ की भूमिका में, भट्ट मोक्षमूलर के ये वाक्य उद्धृत किए हैं—"मनुष्यों के ज्ञान के प्रत्येक विभाग का शाखा और प्रशाखाओं

में दिन दिन बढ़ते जाना, किसी विशेष विषय के शास्त्री को, चाहे वह चाहे, वा नहीं, अन्य शास्त्रों के सेवकों की बुद्धि और सहायता के अधिक अधिक अधीन करता जाता है। आज कल के भूतत्ववेत्ताओं को उन प्रश्नों का निर्णय करना पड़ता है जिनका कि सम्बन्ध धातुवेत्ता, रसायनवेत्ता, पुरातत्ववेत्ता, व्याकरणवेत्ता, और ज्यौतिषवेत्ता लोगों से, सूखे भूतत्ववेत्ताओं की अपेक्षा, अधिक है। जीवन बहुत थोड़ा होता है इस से उसे अपने साथियों की सहायता और सलाह लेने के सिवाय कोई उपाय नहीं रहता। विश्व विद्यालय जीवन का यह बड़ा भारी लाभ है कि यदि किसी को अपने विषय से बाहर की किसी बात का निर्णय करना हो तो वह अपने सहयोगियों से सबसे अच्छी मीमांसा पा सकता है। पेचीले प्रश्नों के सब से अच्छे विचार और अत्युत्तम समाधान, इस स्वतन्त्र सहवास से, हमारे विद्याकेन्द्रों के इस "लेन देन" से, उत्पन्न हुए है। यदि खोजी इन सब विषयों पर जाने हुए अधिकारियों की सहायता न ले, तो वह अपनी समझ में बड़ी खोज कर बैठता है जो विषय को जाननेवाले के फूत्कारमात्र से उड़ जाती हैं, और कई बातों को छोड़ जाता है जो विशेष-ज्ञ के हाथ में पड़ कर दूरव्यापी लाभों को पैदा करती हैं। हमारे विश्वविद्यालयों में, जहां हर कोई अपने सहयोगियों से सब से अच्छी सम्मति पा सकता है (चाहे वे उसे असम्भव कल्पनाओं से सावधान करें और चाहे ऐसे ग्रन्थ की ओर उस का ध्यान खैंचे जिस में उसकी जिज्ञासा की बात पूरी तौर से वर्णित हैं) प्रत्येक विज्ञानको, विचारों के स्वतन्त्र "लेन देन" से कितना लाभ होता है, इस बात को सर्व साधारण नहीं जानते।" यह लिख कर तिलक महाशय कहते है "किन्तु हा! ऐसी आवहवा में रहना हमारे भाग्य में नहीं है,

और इस से आश्चर्य नहीं कि भारतवासी ग्रेजुएट परीक्षा देने के सिवाय और किसी काम के नहीं होते। भारत वर्ष में एक भी ऐसी संस्था नहीं है, और यूनिवार्सिटी कमीशन के होने पर भी ऐसे संस्थान के होने की आशा भी नहीं है, जहां योरोप की तरह किसी विषय का पूरा ज्ञान प्राप्त हो सके।" यूनिवर्सिटीज़ बिल से उच्चशिक्षा के विस्तार की आशा नहीं होती। सीनेटों के सभ्यों की संख्या कम करदी गई है, प्राइवेट कालिजों की स्वतन्त्रता कई जटिल नियमों से बद्ध हो गई है, किन्तु पढ़ाने वाली यूनिवार्सिटीयों के बारे में कोई विशेष चेष्टा नहीं की गई। विज्ञान की उच्च शिक्षा के प्रस्ताव नहीं है, देशी भाषाओं की पढाई में गिनती की बात भी नहीं है, और सरकार केवल चार लाख रुपया वार्षिकही शिक्षा विस्तार में देना चाहती है। पाठकों को सर लाकयर के व्याख्यान से स्मरण होगा कि शिक्षाविस्तार सेना से कम आवश्यक नहीं हैं और सर लायकर कई सौ करोड़ रुपया इङ्गलेण्ड के विश्वविद्यालयों के बढ़ाने के लिएही चाहते हैं। इस बिल में विलायत से योग्य अध्यापकों को बुलाने की भी चर्चा नहीं है। ग्रेजुएटों को फैलो चुनने की अधिकार दिया गया है, किन्तु प्रयाग और पञ्जाब के ग्रेजुएटों को नहीं। सम्बादपत्र, कांग्रेस, और सभी विश्वविद्यालयों ने इस बिल का पूरा विरोध किया है। इस बिल के विचार के लिये जो नए मेम्बर वरिष्ठ कोन्सिल में चुने गए हैं उन में हिन्दुस्तानी एक ही हैं—और वे "वार्द्धके मुनिवृत्तीनां" की अवस्था को पहुंचे हुए, बम्बई यूनिवर्सिटी के भूतपूर्व वायस चैन्सलर डाक्टर भाण्डारकर हैं। कोई नवयुवक स्वदेशी होते, तो क्या कहना था। वृद्ध रामकृष्ण गोपाल भाण्डारकर को अपनी उस पुरानी करेर को काममें लेना चाहिए, जिससे उनने पतञ्जलि के समय-निर्णय

के रिपोर्ट लिखे थे, और वियाना कांग्रेस में बेण्डाल का खंडन किया था। उनका यह समय प्राचीन शिलालेख पढने का नहीं है; और न डाक्टर मुखोपाध्याय के लिए प्रघातमापकों की माप का है। दोनों को " यथा निदिष्टोस्मि तथा करोमि " से बचना चाहिये। गोपाल कृष्ण गोखले ने अपनी महाराष्ट्र वीरता काम में ली हैं और इसी से वरिष्ठ कौन्सिल के अधिवेशन रोचक बन गए है। जो होना है वह तो आक्सफोर्ड में कृतविद्य कर्ज़न महोदय ने सोच ही रक्खा है, तथापि देशी मेम्बरों का विरोध " दन्तभङ्गोपि नागानां श्लाध्यो गिरिविदारणे " तो होगा ही।

*　　*　　*

काशी के पण्डित—प्रयाग विश्वविद्यालय के कन्वोकेशन में (जिसके बारे में प्रयाग समाचार में एक पङ्क्ति न निकली और राजस्थान समाचार ने कई कालम रंगे) छोटे लाट लाटूश साहब ने काशी संस्कृत कालेज के पण्डितों की स्तुति की। उनका सा सच्चा विद्या का प्रेम और जोश कहीं नहीं मिला। आज कल जब ब्राह्मणों को सब तरफ गालियां दी जाती हैं, भला यह बात जानी तो गई कि इनने पूछ न होने परभी भीख मांग मांग कर संस्कृत पढ़ना न छोडा। आज कल उत्तर भारतवर्ष में उच्च संस्कृत शिक्षा की दुर्दशा ही है। काश्मीर तो कई दिनों से विद्या पीठ नहीं रहा है। पञ्जाब में पण्डित जैसरामजी के पीछे चर्चा ही घट गई, और अब जो कुछ पण्डित और पाठशालाएं हैं वे ओरियन्टल कालेज, धर्म-सभा और आर्यसमाज की कृपा से हैं। रामगढ में कुछ काशी के पण्डित जमे थे, किन्तु रुद्री और शीघ्रबोध में ही उनके यत्न पूरे हो जाते है। जयपुर में काशी और मिथिला के पण्डितों की अच्छी

कलम लगाई गईथी, किन्तु उनके पुत्रों के सिवाय वहां की मरुभूमि मे कलम टिकनाही मुश्किल है। पण्डित हरजसरायजी के स्वर्गवास से युक्तप्रान्त में काशी के सिवाय कहीं पण्डित न रहे। मैथिल पण्डितों की दीनता बढती जाती है और बङ्गदेश की न्यायमय टोलों के आचार्य पण्डितों को अब छात्रों को रखने लायक "बिदाया" नहीं मिलती। नए यत्नों की खोज में, काशी संस्कृत कालेज पढाता और उपाधियां देता है, कलकत्ता और लाहौर के कालेज भी ऐसा करते हैं। किन्तु कलकत्ता परीक्षाओं सेही लोगों को प्रेम है। विहार संस्कृत सञ्जीवन पण्डित अम्बिकादत्त व्यास के काल में काम करके शिथिल होगया है, और उडीसा में टोलही बहुत कम है। प्राच्य और पाश्चात्य ज्ञान में दुभाषिए पनेका काम पञ्जाब और प्रयाग के एम. ए. करते हैं। कलकत्ते में नदिया की प्रसिद्धि, प्रेमचन्द रायचन्द वृत्ति प्रभृति कई कारणों से कई एम ए. संस्कृत के पूर्ण पण्डित हैं। स्वर्गीय बालन्टाइन साहब को पण्डितों को नई शिक्षा देनी इष्ट थी, उन्होंने काशी में एङ्गलो क्लास खोला और मिल, बेकन के ग्रन्थों को सूत्र, वृत्ति क रूपमें लिखा। बर्कले प्रभृति के ग्रन्थोंका संस्कृतानुवाद कराया, किया। नैयायिकों के परमाणुवाद का खण्डन संस्कृत में लिखा। किन्तु उन्हे कुसंस्कार था कि पण्डितों का ज्ञान पश्चिमीय ज्ञान से हीन कक्षाका है। पण्डितों की उदारता देखिए कि उनने बाइबल के सिद्धान्तों को सुनने और नए विज्ञानों को संस्कृत में लिखवाने में कोई आपत्ति न की। इनने और बङ्गदेश के एडमस साहब ने पण्डितों से विज्ञान संस्कृत में लिखवाने की व्यवस्था भी ले ली थी। इनमें से एकपर बड़े गुरूजी (पण्डित काकारामजी) के भी हस्ताक्षर हैं। संस्कृत के लिए वर्तमान सरकारी सहायता बहुत कम है, और अब ग्रेजुएटों को

संस्कृत पढ़ने के लिए छात्रवृत्ति देने का जो प्रस्ताव है उसका हम स्वागत करते हैं; क्योंकि बड़े बड़े पण्डित अपने पुत्रों को शास्त्र न पढ़ाकर ग्रेजुएट बनाना चाहते हैं। जो सात समुद्र पार की भाषा को "चुलुकित" कर चुके हैं उनसे न केवल संस्कृत का उद्धार होगा, किन्तु कूपमण्डूकता का जो कलङ्क संस्कृत जानने वालों पर है वह भी हट जायगा। कश्मीरपाठशाला हिन्दूओं के हाथ से निकलगई है, दर्भङ्गा पाठशाला भी बदली जाने वाली है, किन्तु काशी में अब भी संस्कृत यूनीवर्सिटी का सामान विद्यमान है। प्रत्येक पंडित के घर में टीचिङ् यूनिवर्सिटी और प्रत्येक धर्मशाला बोर्डिङ् हाउस, प्रत्येक सत्र में छात्रवृत्ति और प्रत्येक सभा में इनाम, सब कुछ है, केवल काम नहीं, प्रबन्ध नहीं। सरकार को षट्शास्त्री ग्रेजुएटों को यजमानों पर ही न छोड़ना चाहिए, उन्हें भी डिपुटी कलेक्टरी मिलना उचित है। मथुरामण्डल का विद्याप्रचार-स्कीम कागजों मे ही है, दर्भङ्गेश्वर संस्कृत यूनिवार्सिटी की प्रतिज्ञा भूल गए। अब यदि हिन्दू यत्न करें तो जो शक्ति अवच्छेदकता प्रकारता की चक्की में वा फर्माइशी व्यवस्था गढने में, वा कागजी महामंडलों में, वृत्त रूप से खर्च होती है वही हिन्दू संस्कृत यूनिवर्सिटी के रूप में सरलरेखा में चल कर पहाड़भी फोड़ सकती है॥

* * * *

हिन्दी प्रदीप—बड़े खेद का विषय है कि स्नेह के अभावसे हिन्दी प्रदीप बुझा ही चाहता है। पंडित बालकृष्ण भट्ट ने धना भाव की आंधी से और बङ्गला बू के नए तेल से इस को बचाया भी, किन्तु कृतघ्न हिन्दी भाषा वाले जब इस के प्रकाश में काम ही न लें तो यह अनन्तता के अन्धकार में लीन न होतो क्या हो? समालोचक के स्वामी को इस दुःसम्बाद को सुनकर बड़ा शोक

हुआ है और वे एक प्रस्ताव उपस्थित करते हैं जिसे हिन्दी के प्रेमी और भट्ट जी अपनी सम्मति से उपकृत करें। भट्टजी जितना लिख सकें वा लिखना चाहें (प्रति मास २० वा ३० पृष्ठ) उतना लिख कर हमें दे दिया करें। हम अपने पत्र का नाम "समालोचक और हिन्दी प्रदीप" रख देंगे, और हिन्दीप्रदीप के सम्पादक भट्टजी ही कहलाएंगे। यों भट्टजी के लेखों को हम छाप देंगे, और भट्टजी का और उनके पत्र का नाम जीवित रह जायगा। अवश्य ही हानि लाभ के हम किसी और को दायी नहीं हैं। भट्टजी को यही सन्तोष रहेगा कि उनकी मातृभाषा की सेवा चल रही है, और यदि उन्हें लाभ नहीं है, तो प्रतिवर्ष जो हानि होती थी, वह तो अब नहीं होगी।

*　　*　　*　　*

महर्षियों की वृष्टि—आजकल वरसाती मेंडकों की तरह सब ओर महर्षि, महात्मा, राजर्षि, ब्रह्मर्षि, ग्रेजुएटर्षि वैश्यऋषि की भरमार है। कहीं इन पदों की मान-रक्षा की वहस में "राजर्षि मारतेन्दु" "ब्रह्मर्षि अयोध्यानाथ" भी न लिखा जाने लगे। सचमुच भारतवर्ष इनकी कृपासे ऐसाआश्रम न वन जाय जहां द्वन्द्व, शोक, द्वेष दूरसे ही किनारा करें। एक वार दो वङ्गाली सज्जन सेकण्ड क्लास में कश्मीर जा रहे थे। एक के चरणों में गेरुआ वूट, देह मे रेशमी कम्बल, और मुंहपर चिकनी दाढी देख, एक यात्री ने पूछा "आपका नाम क्याहै?" पास के धार्मिक मुसाहव ने तपाक से उत्तर दिया "महर्षि अमुकानन्द सरस्वती" और पूछने वाले का नाम पूछा। उनने गम्भीरता से कहा "अर्शी" तमुक। "अर्शीका क्या अर्थ है?" यह पूछने पर उत्तर मिला कि मुझे अर्श रोग है, अत एव मैं अर्शी हुआ, तीन चार मास में रोग वढ़ जाने पर म-

हर्षी कहलाऊंगा !!! यही नहीं, आजकल उपाधियों की बड़ी छीछालेदर हो रही है। ऐसे समय में, जब कि एक ओर ' जन्मना जायते शास्त्री " वाले दाक्षिणात्यों की, और दूसरी ओर चाह संस्कृत में चार पंक्ति भी लिखना न आवे, व्याकरण वा काव्य के पांच चार ग्रन्थ पढ़कर शास्त्री और आचार्य कहलाने का दावा रखने वाले कालेज कूष्माण्डों की, भरमार है, हम लोगों को अपनी उपाधियां लिखते भी लज्जा आनी चाहिए! यही नहीं, पांच सात समस्या पूर्त्ति करने से आप साहित्य-ज़मीकन्द, साहित्य-राजा, साहित्य-शम्बूक, और न मालूम क्या क्या बन सकते हैं; भारत के भास्कर बनकर अपने कुकाव्य किरणों से उसे जला सकते हैं!! और पांच छै रटे हुए व्याख्यान देकर मारवाडभूषण अवधभूषण, और न जाने किस किस अश्रुत विद्या के वारिधि बन सकते हैं!!! आनन्दकादम्बिनी ने विज्ञानाचार्य जगदीश बसु को भारतमार्तण्ड पद देने का प्रस्ताव किया है, वास्तव में इस पद के देने से भारत की प्रतिष्ठा है, न कि बसु महाशय की; किन्तु इस बात का क्या प्रमाण है कि कलही कोई घरऊ मुरऊ सभा जिसे तिसे यह उपाधि देकर इस उपाधि की अप्रतिष्ठा न कर दे? अपनी तरफ से हम तो डाक्टर बसु को सदा इसी पद से लिखेंगे।

* * *

पण्डित मण्डली का पत्र—इस भूगोल में, जिसकी शङ्कु च्छिन्न रूप छाया चन्द्रमा को भी उलांघ जाती है और रात्रि कहलाती है, ऐसी घटना कभी नहीं देखी गई थी, जैसी इन पत्रों मे झलकती है। भला पण्डित मण्डली किसी से शुद्ध हिन्दी तो लिखवा लिया करे!

* * *

सहयोगिसाहित्य—भारतमित्र में, बिलायती पार्लेमेण्ट, उर्दू अखबार, अपनी कहानी बहुत अच्छे लेख हैं, और भारतमित्र को ऊंचा आसन दिलाते हैं। उपहार का उद्देश्य भी उस का उपहार ही पूरा करता है। हितवार्त्ता की राज-नैतिक हितवार्त्ता अच्छी भी कुछ काम की नहीं क्योंकि भाषा में सुधार नहीं और उपहार का उपहास है। हिन्दी बङ्गवासी के जाग उठने के लक्षण हैं, किन्तु अभी आंख भी नहीं मली गई। श्री वेङ्कटेश्वर में रामजीवन नागर के शिल्प सम्बन्धी लेखों के अभाव से हम दुःखी हुए। यह पत्र भी उत्तम कक्षा का है, और वहीं रहने का यत्न करता है। प्रयागसमाचार कम्पोजिटरो की बीमारी और सम्पादक की बदल से बदल (या बिगड़ ?) गया। भारत जीवन का ढंग सुधर रहा है, किन्तु मोहनी क्यों ऊंघती है ? राजस्थानसमाचार में कोई कोई लेख बहुत अच्छा निकलता है किन्तु टूटा टाइप सब कुछ बिगाड़ देता है। राजपूत अलवर के उत्सव में रंग गया। चित्तौर चातकी का गंगाप्रवाह हो गया; बाकी पुस्तकों पर पञ्चों की पञ्चायत हो रही है; इसीसे भारतजीवन का जीवन तङ्ग है। सरस्वती की महिमा बढती जाती है, आशा है कि योग्य सम्पादक उसकी कोटि सदा उच्च करते जायँगे। साहित्य समाचारों को सरस्वती न छोड़े। इस वर्ष उस की आर्थिक अवस्था भी दृढ हो जाय। सुदर्शन फिर सो गया है, उस की चोदना होनी चाहिए। आनन्दकादम्बिनी के प्रबन्ध से हम सन्तुष्ट नहीं। काशी की सभा की कृपा से हिन्दी मनो-विज्ञान और नन्ददास जी की रासपञ्चाध्यायी पढने को मिली। फरवरी के मध्य में सभा का गृहप्रवेशोत्सव है। शुभचिन्तक ने लालमोहन घोष की जीवनी अच्छी लिखी है, किन्तु क्या छै तोले का नियम भी इनके जीर्ण

दरिद्र कागज को न बदलेगा? काशी के उपन्यास उसी ढंग से चले जाते हैं। बिहार-बन्धु कहीं "सरयूपारी बन्धु" न हो जाय। देखें सत्यवादी क्या कहता है।

* * *

हर्वर्ट स्पेन्सर——विलायत के वैज्ञानिक चूड़ामणि हर्वर्ट स्पेन्सर का "ज्ञानवान्मां प्रपद्यते" हो गया। उन के विषय में राजस्थान समाचार में अच्छा लिखा गया है। भारतवर्ष, जापान और अमेरिका में उनकी शिक्षाका अधिक प्रभाव पड़ा है। जगत् के बड़े बड़े शिक्षकों में, कपिल कणाद बुद्ध शङ्कर प्रभृति के बराबर, उन का आसन है। उन के शव का अग्निदाह हुआ और श्यामजी कृष्ण वर्म्मा ने १००० पाउण्ड दे कर उनका स्मारक नियत किया। भूखा भारत कृतज्ञ है। उनके अन्तिम ग्रंथ में 'अनन्तता' का जो वर्णन है, मृत्यु की संदिग्ध भविष्यत् का जो चित्र है, वह बड़ा भयावना और रोचक है। मराठी में उन के कई ग्रन्थों को अनुवाद हो चुका है। उन के '*Education*' का अनुवाद कोई करदे तो हम छाप देंगे। आगामि संख्या में इस "ज्ञानी त्वात्मैव मे मतः" के चरित्र और सिद्धान्तों का कुछ वर्णन देने की इच्छा है।

* * *

चार भाषाएं——प्रयाग की कायस्थ पाठशाला के प्रिन्सिपल और प्रवासी के सम्पादक रामानन्द चट्टोपाध्याय एक हिन्दी वङ्गला गुजराती मराठी का पाक्षिक पत्र निकालेंगे। चारो भाषाएं देवनागरी अक्षरों में छपेंगी। हिन्दी अंश के सम्पादक बाबू राधाकृष्णदास चुने गए हैं। इस योजना से चारो भाषाओं की अङ्गपुष्टिही नहीं, किन्तु राष्ट्र भाषा का प्रचार भी साधित होगा, इसी से हम इसका अनुमोदन करते है और यथायोग्य सहायता के लिए उपस्थित है। नागरी प्रचारिणी सभा से भी परामर्श ले लेना चाहिए।

इण्डियन नेशनल कांग्रेस।

पवेन खलुवा एते यन्ति विन्दन्ति खलुवा पवेन एतद्दृद्धमयनम्(१)

(तैत्तिरीयसंहिता ७।५।२।१-२)

ऐतरय ब्राह्मण में एक ' गवामयन ' नामक यज्ञ का वर्णन है। उस में होता को अर्धरात्र के पीछे प्रकाश होने के पहल पहले, प्राय १००० मन्त्रों के आश्विनशस्त्र का पाठ करना पड़ता है। होता उस का पारायण करने के पहले कुछ घी भी पी लेवें क्योंकि जैसे लोक में तेल या घी लगाने से गाड़ी ठीक चलती हैं, वैसे उसका पाठ भी ठीक चलता है। यही नहीं, यदि उस सूक्त को पढ़ते पढ़ते सूर्योदय न हो जाय, तो और कई सूक्तों का पाठ किया जाय, अथवा सारे ऋग्वेद का भी पाठ कर डाला जाय। तौभी सूर्य न उगे तो रंग विरंगे पशु का यज्ञ किया जाय, और कई बार सूर्य न उदय हुआ तो देवताओं ने उस के लिये प्रायश्चित्त किए!! अन्य शासकों के नीचे भारत वासियों की पराधीनता रात्रिका अर्धरात्र बीत चुका है, और अब, कांग्रेस और उसका व्यय, सूर्य्योदय के पहले के सूक्त,घी, और याग के समान हैं। (२)

एक बेर गौएं यज्ञ करने बैठीं। इस इच्छा से कि हमारे सींग और खुर उग आवें। दश महीने उनका यज्ञ रहा। कुछ के सींग निकल आए और वे सफल काम हो कर उठ खडी हुईं। बाकी अश्रद्धा से दो महीने और बैठी रहीं, और उन्हें ऊर्ज (बल) हो गया, किन्तु सींग न निकले। अस्तु, दोनों तरह की गौंए ही सब की प्यारी, और सुन्दर हो

(१) ये रस्ते से चलते हैं रस्तेही से अपने मन चाहे को पाएंगे, यही सफल वर्ष है।

(२) निरुक्त १२, १। होग का एतरेय ब्राह्मण ४, ७। आश्वलायन ६, ५, १-८। आपस्तम्ब १४, १-२।

गई। गोभक्त नि:शस्त्र भारत वासी श्रद्धा से, वा अश्रद्धा से दयामय सरकार से योंहीं सींग और बल पाकर सुन्दर होंगे (१)

ऋग्वेद में एक मण्डूकसूक्त है। उसके जप करने से अनावृष्टि हट जाया करती है। वासिष्ठ एक वार वृष्टि के लिए इन्द्र का स्तव कर रहे थे, कि मण्डूकों ने उनका अनुमोदन किया। वासिष्ठ प्रसन्नहोकर उनकीही स्तुतिकरने लगे (२) योरोपीय वेदवित् तो कहते हैं कि ब्राह्मणों के यज्ञ यागादिककी हंसी उड़ानेको यह सूक्त वना है, किन्तु सूक्त इतना सुन्दर है, और कांग्रेस की दशा को ऐसा जताता है कि हम उस का अनुवाद किये विना अगाड़ी नहीं बढ़ सकते (३)—

"वार्षिक व्रत करने वाले ब्राह्मणों की तरह वरस भर तक सोए हुए, अर्थात् मेघ वरसने के लिये तपस्या करते हुए मण्डूक, मेघ को प्रसन्न करनेवाली वोली वोलते हैं १

"जव सूखी खाल की तरह सूखे हुए इन मेंडकों पर, तालाय में सोए सोए, दिव्य जल गिरता है तव (वृष्टि होने पर) वच्चेवाली गौओं की तरह इनका वड़ा शब्द उठता ही है २

"चाहते हुए, प्यासे इन मेंडकों पर, वरसात आने से, जव मेघ वरसता है, तव 'अखखल' 'अख्खल' करके एक मेंडक दूसरे शब्द करते हुए मेंडक के पास, वाप के पास वेटे की तरह आ जाता है ३

"जव पानी के मौके पर दो मेंडक प्रसन्न हुए, तो एक दूसरे से मिलता है। पानी से छिडका हुआ, उछलता उछलता पृश्नि रंग का मेंडक हरित मेंडक के साथ वोली मिलाकर शब्द करता है ४

"हे मण्डूको! आप में से एक दूसरे की वाणी को, अध्यापक की वाणी को विद्यार्थी की तरह, अनुवाद करता है। जव सुवक्ता आप लोग जल पर उछलते हुए वोलते है तव आप का सारा

(१) ऐतरेय ब्राह्मण १४, १०, तैत्तिरीय संहिता ७, ५, १-२, १-२।
(२) निरुक्त ९, ६
(३) ऋग्वेदसंहिता मण्डल ७ सूक्त १०३।

शरीर (जो गर्मियों में सूख गया था) हुए पुए मालूम देता है ५

"एक की बोली बैल की सी, तो एक की बोली बकरे की सी! एक पृश्णि रंग का तथा एक हरे रंग का। भिन्न भिन्न रूप वाले होने पर भी एक नाम रखते हुए कई जगह बोलते हुए ये उठ खड़े होते हैं ६

"आतिरात्र सोमयाग में जैसे ब्राह्मण पारी पारी से स्तोत्र पाठ करते हैं, वैसे अब तुम भरे हुए तालाब के चौतरफ बैठ कर रात को बोलते हुए, बरसाती दिनों में, वर्तमान होते हो ७

"ये मण्डूक सोमयाजी ब्राह्मणों की तरह सालियाना स्तोत्र करते हुए शब्द करते हैं। घर्म नामक प्रवर्ग याग (होम) को करने वाले पसीजते हुए वैदिकों की तरह, गर्मियों के सूखे हुए, छिपे हुए कई मण्डूक अब भी प्रकट नहीं होते ८

"यही नेता (लीडर) मण्डूक देवताओं के बनाए ऋतुक्रम को रखते है, अतएव बारह महीने के ऋतुओं को नापते है, नहीं बिगाड़ते। साल बीतने पर बर्सात आने से गर्मियों के झुलसे हुए (अपने बिलोंसे) छुट्टी पाते हैं ९

"गौ की सी आवाज़ वाला मैंडक हमें धन दे! बकरे के से शब्द वाला हमें धन दे! पृश्णि रंग का हमें धन दे! हरा मैंडक हमें धन दे! जब हज़ारों औषधियां पैदा होती हैं, वा हज़ारों यज्ञ होते हैं, उन दिनों सैंकड़ों गौवें हमें देते हुए मैंडक अपनी और हमारी आयु बढ़ावें!" १०

कई शताब्दियों के अज्ञान और अत्याचारों की गर्मी से झुलसे हुए बृटिश राज्य की वृष्टि से अपनी सूखी खाल को पूर्ण करके वर्ष भर सो रहने पर भी हजारों कान्फरेन्सों की ऋतु में उस मेघ का स्तोत्र पाठ करते हैं जिसने रंग विरंगे भिन्न भिन्न, आवाज़ों वाले उन को एक नाम दिया है। चाहते हुए, प्यासे इन मैण्डकों का अखूखल शब्द, जो वसिष्ठ (ह्यूम) का अनुमोदन करता है, पर्जन्य स्तुति ही है। देवताओं के बनाए ऋतु क्रम को यही रखते हैं क्योंकि लोगों को बड़े दिन की छुट्टी और नए वर्ष का आरम्भ इन्हीं के द्वारा जान पड़ते हैं। इनमें से

कई अब भी प्रकट नहीं होते। यही नहीं, नवम मन्त्र भाष्य में सायणाचार्य लिखते हैं कि पर्जन्य की स्तुति कर के येही वृष्टि के हेतु होते हैं!! तथास्तु।

जैसे मेंडकों की फटी खाल का समूची होना मेघही की कृपा है वैसे कांग्रेस भी दयामय सरकार की परम दया का दृष्टान्त है। तीसरी मद्रास कांग्रेस की स्वागत-कारिणी सभा के प्रेसीडेण्ट राजनैतिक-कुल तिलक सर टी माधवराव ने ठीकही कहा था कि कांग्रेस वृटिश शासन का गुणगान है। हलाकू और चङ्गेजखांसे कौन अपने अधिकार मांग सकता है जिसे अपने कन्धों पर सिर भारी न हो? तैमूर और नादिर शाह से अपने अधिकार मांगने की किसको हिम्मत होती? चाहे कांग्रेसवाले सरकार का गुणानुवाद करके प्रतिक्षण पिष्ट-पेषण न करें, तथापि उनका प्रत्येक शब्द, और प्रत्येक चेष्टा, सरकार के महत्व का सूचक है। यदि मुसलमानी समय का कोई भारतवासी अंग्रेजी समझने की शक्ति पाकर स्वर्ग से उतर आवे, और कांग्रेस को देखै तो उसके मनमे क्या भाव होंगे? यह कब सम्भव है कि इतनी दूर दूर के आदमी, एक वासना से, एक मनसे यों इकट्ठे हों और अपने शासकों का छिद्रान्वेषण करें? और उनकी जीभ न काटी जाय और खाल कुत्तों से न नुचवाई जाय? कौन इस बात की कल्पना कर सकता था कि इतने बड़े महाद्वीप के अधिवासी, भिन्न-धर्मी, भिन्नाचारी, भिन्नभाषी यों मिलकर एक विदेशी भाषा में अपने सम्मिलितभावों को प्रकाश करेंगे? यह जादू किसने किया, यों मुर्दोंको किसने जिलाया? यह उस महात्मा जातिका काम है जिसने असभ्य और उजाड़ देशों का सभ्य और पूरित बनाया है, जिसने करोड़ों दासों की बेड़ियां काटी हैं और जो राष्ट्रों की माता कहलाने की पात्र है। साथही यह भी कोई न कहे की कांग्रेस राजाविद्रोह करती है, और असन्तोष फैलाती है। अंग्रेजी शिक्षाने वकील, अध्यापक डाक्टर, नौकर प्रभृति कई ऐसे मनुष्य उत्पन्न किए हैं जिन का जीवन वृटिशराज्य के होनेही में है। यदि, ईश्वर न करें, पुराना

काल लौट आवै तो ये सब टके सेर को भी न पूछे जांय। सरकार का राज्य शस्त्रवल से अवस्थित नहीं है, उसे प्रजा के प्रेम की वज्रभित्ति पर टिकना चाहिए, और इसी कारण, एङ्गलो इण्डियन - कर्मचारियों को, जो किसी को भी उत्तर-दाता न होने के कारण उद्दण्ड हो जाते हैं, शासन में लाना और देशवासियों को कुछ कुछ अधिकार देते जाना—पुराने वाइसराय उचित मान चुके है, और स्वर्गवासिनी महारानी का घोषणापत्र स्वीकार कर चुका है। विदेशीय राजा को देशीय बातें जतलाना और इन दो सिद्धान्तों को पूरा करना कि "(१) किसी जातिका कभी ऐसा शासन न हुआ और न होगा जिसमे 'परम सन्तोष वर्त्तमान हो और कोई नया अधिकार न पाना रहा हो और नई इच्छाएं न पूरी करनी हों और (२) कोई सरकार, वा शासक वर्ग ऐसे पूर्ण, निर्दोष और सर्वज्ञ नहीं हो सकते जिन्हें कुछ भी न कहना पड़े" राजविद्रोह नहीं है, राजभक्ति है। वास्तव में देखा जाय तो कांग्रेस का सा राजभक्त कोई नहीं होगा। पुत्रादिच्छेत् पराभवं के अनुसार कांग्रेस वालों से सरकार को प्रसन्न होना चाहिए, रुष्ट नहीं।

अब कांग्रेस अपने जीवन के उन्नीस वर्ष पूरे कर चुकी है और बालिग हो चुकी है। अतएव, उसके पुराने इतिहास पर सिंहावलोकित करके यह देखना अनुचित न होगा कि कौन कौन प्रवृत्तियां इसकी बढ़ती की ओर जाती हैं, और कौन कौन इसे रोक रही हैं।

लाट रिपन के काल के पूर्व पूर्व भारतवासियों के अंग्रेज अफसर आदर्श थे। कई उत्साही नवयुवक उन के आचार विचार की नकल करने में, उनके साथ खान पान में, अपना सौभाग्य समझते थे और उन्हें आदर्श मनुष्य मान कर पूजते थे। यद्यपि लिटन के प्रेस एक्ट ने उन्हें अपने अधिकारों से वञ्चित होने की सूचना दे दी थी, तथापि उनका वह भक्ति भाव नहीं हटा था। इल्वर्ट बिल के विरोध ने उनकी आंखें खोल दीं, और उन्हें अपने अधिकार और उनकी उपेक्षाका पूरा ध्यान

दिला दिया। उस के पीछे १८८४ में कलकत्ते की अन्तर्जातिक प्रदर्शिनी में दूर दूर के भारत वासी मिले। थियोसोफिकल सोसाइटी के वार्षिक अधिवेशनों में भी मिलते रहने से उन में परस्पर मिलने की इच्छा हो गई थी। लाट रिपन को विदाई का एड्रेस देने के लिये दूर दूर के भारतवासी उस अपने नेत्रामृत पूज्य प्रभु को धन्यवाद देते हुए वम्बई में मिले। वहीं भारतवर्ष के "वृद्ध" मनुष्य दादा भाई नौरोजी ने देश दश के प्रतिनिधियों के वार्षिक मिलन का प्रस्ताव किया। वम्बई तो अभी इतना व्यय कर चुकी थी, मद्रास मे वा पूना में सभा हो, यही विचार होता होता रह गया। कांग्रेस क पिता ह्यूम साहब ने यह बिचारा कि समाज संशोधन और शिक्षा बिचार के लिए भारत-वासी प्रति वर्ष प्रधान प्रधान नगरों में मिला करें और वहां के शासक सभापति वनाए जाया करें। जब यह प्रस्ताव ह्यूम साहब ने लाट डफरिन से शिमले में कहा तो उन ने इस का विरोध कर के और ही सलाह दी। उन ने कहा कि इस देश में Opposition सरकार का विरोधी दल नहीं है, और सम्वाद-पत्र इस काम को कर नहीं सकते अतएव तुम राज नैतिक सभा करो। मेरी इस बात से पूर्ण सहानुभूति है किन्तु जब तक मैं भारत वर्ष में हूं तब तक यह बात न खोलना। ह्यूम साहब ने इस बात का वचन दिया और प्रान्त प्रान्त के नेताओं के पास प्रस्ताव फिराया जाकर सन् १८८५ में पूना में कांग्रेस करना बिचारा गया। पूना में हैजा होने पर भी मान्यवर तैलङ्ग, मेहता और दादाभाई नौरोजी को कृपा से वम्बई में प्रथम इण्डियन नैशनल कांग्रेस नामक जातीय यज्ञ का, उमेशचन्द्र वनर्जी (डब्ल्यू सी. वनर्जी) के सभापतित्व में, १८८५ के वड़े दिनों की छुट्टियों में सुमुखश्चेकदन्तश्च हो गया।

डफरिन साहब का विचार सत्य था। कांग्रेस के नेताओं ने सात वर्ष तक उच्छृङ्खल समाज सुधारकों के प्रस्तावों से पृथक रहने का झगड़ा किया। सोश्यल कानफरन्स अब भी कांग्रेस से पृथक है, किन्तु उस

ने कांग्रेस के दलमें में बखेड़े, विवाद और फूट डाल दी है। समाज सुधार राष्ट्रीय महासभा द्वारा हो नहीं सकता। मान लीजिए कि कांग्रेस के मुसलमान कृस्तान और सुधारक डेलीगेट प्रस्ताव पास कर दें कि "जाति भेद उन्नति का विघातक है" तो क्या फल हो? महाराष्ट्र और मद्रास के हिन्दू पड़दा उठादेने का प्रस्ताव अधिक सम्मति से पास कर दें तो मुसलमान भाई क्या करें? दूसरे, समाज नीति और है, राज नीति और। हमारी विधवाओं का व्याह नहीं होता, इस से क्या हम शस्त्र उठाने के योग्य नहीं है? हमारी कुमारियों को शिक्षा नहीं मिलती, इस से क्या हम शासन करने योग्य नहीं है? हमारे कृस्तान भाई हम से व्याह शादी नहीं कर सकते, इस से क्या हम इस्तमरारी बन्दोबस्त के पात्र नहीं रहे? समाज सुधारकों के दल में भी फूट है। वे कहते तो हैं, किन्तु स्वयं संशोधन करके चलने वाले डा० भाण्डर कर के एसे उन में विरले मिलते हैं। पूना कांग्रेस में सर्वसाधारण के विरोध ने सोश्यल कान्फरैन्स को कांग्रेस के स्थान में न होने दिया और कलकत्ता सोश्यल कान्फरेन्स के प्रेसीडेन्ट ने भी उस के प्रस्तावों का अनुमोदन नहीं किया!! अवश्यही इस कान्फरेन्स से एक बड़ा भारी लाभ यह है, कि जिन सरकारी नौकरों को कांग्रेस से स्नेह है वे भी इस में आने के मिस से कांग्रेस को परामर्श आदि से सहायता दे सकते हैं।

बम्बई के प्रथम अधिवेशन में प्रतिनिधि चुने नहीं गए थे, और वे सौसे अधिक भी न थे। इन मुष्टिमेय प्रतिनिधियों से किसे आशा थी कि "जातीय महासमिति" की जड़ जम जायगी? दूसरे वर्ष कलकत्ते में ४३६ प्रतिनिधि जुटे थे, राजा डाक्टर राजेन्द्रलाल मित्र अभ्यर्थना कमेटी के सभापति और त्यागशील, कर्मपटु, विलायत में भारत के प्रतिनिधि, दादाभाई नौरोजी सभापति थे। डाक्टर मित्र ने कहा था कि सम्पूर्ण भारत वर्ष के प्रतिनिधि यों मिल सकेंगे यह उनका एक स्वप्न था, जिसके सत्य होने की उन्हें आशा न थी। मद्रास में तीसरी जातीय महा-

समिति की बैठक हुई थी, जिस में राजनैतिक मुकुट सर टाञ्जोर माधवराव स्वागतकारी थे, और बम्बई के मुसलमानों के नेता बदरुद्दीन तैयबजी सभापति। प्रतिनिधिसंख्या ६०७ थी। उन दिनों यूरेशियन, एङ्गोइण्डियन और देशी कृस्तानों की पूर्ण सहानुभूति थी, और ह्वाइट, गैञ्ज, नार्टन प्रभृति ने कांग्रेस की पूरी सहायता की थी। सर टी. माधव राव ने कहा था कि कांग्रेस अंग्रेजी राज्य का सर्व प्रधान गौरव है। इन दोनो कांग्रेसों ने सिद्ध किया कि कांग्रेस वकीलोंका तितिम्मा नहीं है, भारत वर्ष के सुशिक्षित मात्रका प्रयत्न है। विज्ञ-गौराङ्ग-पूजित-चरण डाक्टर मित्र, और चार प्रधान देशी राज्यों के बनाने वाले सर-टी माधवराव क्या वह वकील थोडेही थे जिन्हे इक्के का किराया नहीं मिलता और जो बकवाद में नामवरी पाना चाहते है? उस कांग्रेस में हिन्दी भाषा के इतने प्रतिनिधि उपस्थित थे— राजा रामपालसिंह और पण्डित मालवीय (हिन्दोस्थान) पं० प्रतापनारायण मिश्र (ब्राह्मण) देवकीनन्दन त्रिपाठी (प्रयाग समाचार) रामकृष्ण वर्मा (भारतजीवन) पं० गोपीनाथ (मित्र विलास) पं० बालकृष्णभट्ट (हिन्दी प्रदीप)। उस समय राज पुरुषों को कांग्रेस से चिढ नहीं थी। मद्राज के गवर्नर लाट कनेमारा ने सब प्रतिनिधियों को एक गार्डनपार्टी दी थी। चौथी कांग्रेस प्रयाग में हुई। उस में बड़े बडे विरोध उठ खड़े हुए। लार्ड डफरिन की सहानुभूति एक सम्पादक की भूल से हट गई थी और उनन सेन्ट एड्रूज डिनर में कांग्रेस कर्त्ताओं को *Microscopic minority* कह दिया। बकवादी बङ्गालियों ने 'वाह वाह' और करतलध्वनि के लोभ से अपने व्याख्यानों में संयम का अतिक्रम कर के राजपुरुषों का विरोध पैदा कर लिया। ऐसी भूलें कांग्रेस से कई हुई है! उन दिनों प्रधान कांग्रेस-विरोधी सर आकलेण्ड कालविन का पश्चिमोत्तर प्रदेश पर राज्य था। उनने *Democracy not suitd to India* नामक ग्रन्थ लिख कर भिनगा महाराज के नाम से छपवाया। मिष्टर नार्टन और ह्यूम ने इस का खूब मुंहतोड़ उत्तर दिया।

उस समय कई "जो हुकुम" खुशामदियों ने कांग्रेस का विरोध कर दिया। अलीगढ कालज के संस्थापक सर सैयद अहमद ने एन्टी—कांग्रेस की दोहाई मचाई, और भाई भाई को लड़ाया। कांग्रेस के लिए स्थान नहीं मिलता था, और पण्डित अयोध्यानाथ अपना मकान खुदवाने को तैयार थे, कि स्वर्गीय दरभङ्गा नरेश ने एक कोठी मोल ले कर कांग्रेस को अर्पण कर दी। यदि उस समय पंडित अयोध्यानाथ न होते तो कांग्रेस का नाम निशान न रहता। सर सैयद और खुशामदियों की शक्ति, सरकार का कोप, और मुसलमानों का बिरोध, उस वीर ब्राह्मण के तेज के आगे न ठहर सका। जैसे उत्साह से वह चौथी कांग्रेस हुई थी, वैसा उत्साह फिर कभी न देखा गया। मुसलमानों में दो टुकड़े हो गए एन्टि कांग्रेस, और कांग्रेस वाले। आयर्लैण्ड निवासी जार्ज यूल साहब सभापति थे और उनका भाषण मुर्दों की भी नसें फड़काने वाला था।

पांचवीं कांग्रेस सन् १८०४ में बम्बई में हुई। इस में अभ्यर्थना-सभापति फिरोजशाह मेहता और सभापति सर विलियम वैडरवर्न थे। ऐसे अकृत्रिम भारत सुहृत् के सभापतित्व में वैसेही अकृत्रिम मित्र सर चार्लस ब्राडला कांग्रेस में आए। प्रतिनिधि १८८९ आए थे। न्यायकारी कौन्सिलों के विचार में दो मुसलमान मेम्बरों ने यह औंधा प्रस्ताव किया कि जितने हिन्दू चुने जांय, उतने ही मुसलमान। पीछे विलायत में आन्दोलन करने के लिये चन्दा हुआ जिस में मांगने से दूना रुपया आया। उसी समय स्वामी आत्माराम सागर ने अपना कम्बल उतार कर चन्दे में दिया था। ब्राडला साहब को एड्रेस दिया गया। कौन्सलों के सुधार का जो बिल वे पेश करने वाले थे वह किसी औरने और तरह पास करा लिया। छठी कांग्रेस कलकत्ते में ६७७ प्रति निधियों के साथ, मनोमोहन घोष के स्वागत से फिरोजशाह मेहता के अधिपतित्व में हुई। उन दिनों सहवास सम्मति के पचड़े ने शत्रुओं को आशा दिलाई थी कि दो पार्टी हो कर कांग्रेस टूट जायगी, किन्तु ईश्वर ने इस सामाजिक

तूफान को दूर कर दिया। एक हिन्दी पत्र ने वृथा ही "निशाखीन काकरस" का विरोध आरम्भ किया, जो उसने अब छोड़ दिया है। कांग्रेस का सातवां अधिवेशन नागपुर में हुआ। प्रतिनिधि ८१२, अभ्यर्थक नारायणस्वामी नायडू, सभापति श्री युक्त पी० आनन्द चार्लू थे। सुगृहीतनामा पण्डित अयोध्या नाथ ने आगामिवर्ष के लिए कांग्रेस प्रयाग में बुलाई, किन्तु कांग्रेस के विराट परिश्रम के मारे उस कर्म-वीर का देह पात हो गया। यदि किसी ने कांग्रेस को अपने प्राण दिए हैं तो पंडित अयोध्या-नाथ ने। ६२५ प्रति निधि थे, पण्डित विश्वम्भर नाथ अभ्यर्थक, और डबल्यू सी बनर्जी सभापति।

नवीं कांग्रेस १८९३ में लाहौर में हुई। ८६१ प्रति निधि, सिख सर्दारों के नेता दयाल सिंह अभ्यर्थक और दादाभाई नौरोजा सभापति थे।१८९४ में मद्राज में ११६३ प्रतिनिधि, गङ्गिया नायडू अभ्यर्थनासमितिके सभापति और अल्फ्रेड वेब सभापति थे। दूसरे वर्ष पूना में १५८४ प्रतिनिधि, राय बहादुर भिड़े अभ्यर्थना समिति के सभापति थे और सभापति वाग्मिवर सुरेन्द्र नाथ बनर्जी ने सात घण्टे तक व्याख्यान दिया। १८९६ में कलकत्ते में महासभा भरी। प्रतिनिधि ७८४ सभापति बम्बई के रहमत उल्ला सयानी और स्वागत सभापति हाइकोर्ट प्रधान न्यायपति सर रमेशचन्द्र मित्र और डाक्टर रासविहारी घोष। १८९७ में बराड़ की राजधानी अमरावती में गणेश श्री कृष्ण खापर्डे की अभ्यर्थना, और अवस्था में सब से छोटे प्रेसिडेन्ट शङ्कर नैयर के सभापतित्व में ६९२ प्रति निधि समवेत हुए। अगले वर्ष फिर मदराज में मेलन हुआ, प्रति निधि ६१४, अभ्यर्थक सुब्बाराव पान्तलू, सभापति श्रीयुक्त आनन्द मोहन बसु थे। १८९९ में लखनऊ में ७३९ प्रतिनिधियों के सभापति अर्थशास्त्रवित् रमेश चन्द्र दत्त महोदय विलायत से आए थे, उनकी अभ्यर्थना वृद्ध श्री युत वंशीलाल सिंह ने की थी। रमेशबाबु ने भूमि कर सम्बन्धी विषयों पर ऐसी सारगर्भ वक्तृता दी थी कि बायसराय ने उन्हें शिमले बुलाया।

आगामि वर्ष लाहौर में अधिवेशन हुआ जिस में श्रीमान् कालीप्रसन्न राय की अभ्यर्थना में बम्बई के श्री युक्त चन्द्रावरकर सभापति थे। जिस, सप्ताह में ये कांग्रेस के सभापति चुने गए उसी सप्ताह बम्बई हाइकोर्ट के न्यायपति बनाए गए। १९०१ में कलकत्ते में अधिवेशन हुआ जिसमें दिनशा ऐदुलजी वाचा सभापति थे, और नाटौर के महाराज अभ्यर्थक। १९०२ की कांग्रेस अहमदाबाद में हुई, उसमें अम्बालाल साकरलाल देसाई की अभ्यर्थना में बाबू सुरेन्द्रनाथ बनर्जी सभापति बनेथे और इस साल मद्रास में बाबू लालमोहन घोष सभापति की अभ्यर्थना नवाब सैयद मुहम्मद ने की थी।

इस देशमें राजनैतिक आन्दोलन नई बात है। सारे देशभर में सुप्त जातीयता को जगाने में कांग्रेस सफल मनोरथ हुई है। उसकी प्रार्थना से व्यवस्थापक सभाओं का सुधार हुआ, जूरी विचार प्रवृत्त हुआ, और आमदनी टैक्स और नमक टैक्स घटाया गया। यह कुछ कम गौरव की बात नहीं है। विचार और शासन विभागों का पृथक् होना, सिविल सर्विस परीक्षा का इस देश में होना, सारे भारतवर्ष में चिरस्थायी बन्दोबस्त होना, सैनिक शिक्षा का प्रचार यह भी कांग्रेस की प्रार्थनाओं मे से कुछ है।

कांग्रेस की त्रुटियां भी कम नहीं हैं। यदि इसके नेता संयम से रहते तो यह सरकार की चक्षु शूल न होती। न इसके अपव्यय की इतनी धूम मचती। यदि उसके नेता कुछ होशियारी से चलें तो देशवासी सभी अंगरेज, यूरशियन और देशीकृस्तान इनके सहायक हो जांय। मुसलमानों का विरोध अब हटही सा गया है, क्योंकि एन्टीकांग्रेस केवल शिक्षासमितिहा रहगई है। मुसलमानों मे शिक्षा कम होनाही इसका कारण है, किन्तु नेताओं की उच्छृङ्खलता ने वारिष्टर हामिदअली जैसे कांग्रेस पक्षपातियों को भी अलग कर दिया। मुसलमान लोग यदि समझें कि हिन्दुओं की बहुतायत से नगण्य होकर हमारी क्षति होगी तो यह भूल है। निर्वाचन प्रणाली मिलतेही बङ्गदश और मद्रास के हिन्दूओं ने मुसलमानों कोही प्रतिनिधि चुना था।

शिक्षित हिन्दुओं में वह भाव नहीं है। पार्सी मुसलमानों से भी थोड़े है, उन्हें यह भी वहकाया गया कि वे भारतवासी नहीं है, तथापि वे कांग्रेस के प्राण हैं। यह देखकर बड़ा दुःख होता है कि मुसलमान जमीन्दार का अपनी हिन्दूप्रजा से प्रेम है, हिन्दू राजा मुसलमान प्रजा को पुत्रवत् मानते हैं तो मुसलमान ग्रेजुएट और हिन्दू ग्रेजुएट लड़ रहे हैं। अस्तु, सर सैयद अपने पोते पड़पोते तक की पैन्शन करा गए। विलायत में सरचार्लस डिल्की, डिगवी, ह्यूम, वेडरवर्न प्रभृति कांग्रेस के सुहृत हैं। केन और ऐनलिका स्वर्गवास हो चुका। वहां कांग्रेस कमेटी आन्दोलन करती है और "इण्डिया" नामक साप्ताहिक पत्र निकालती है। यह अपव्यय है, किसी विलायत के प्रधान दैनिक पत्र में एक कालम पालेने से प्रभाव भी ज्यादा होगा, व्यय भी कम। कांग्रेस का कुप्रबन्ध भी कुछ कम नहीं है। वर्ष भर तक सो कर चारही दिन में देश भर का फैसला किया जाता है। जब कांग्रेस अपनी जान में स्वतन्त्र सरकार को प्रजामत दिखाने का दावा करती है तो उस में लीडरों की उछृङ्खलता क्यों? वे तो प्रजातन्त्रका दावा करें। वास्तव में प्रतिनिधि सभाओं का और पार्लेमेन्टों का काम बक बक करना ही है। असभ्य ज़मानों में एक दूसरे से राय न मिल सकने पर मनुष्य एक दूसरे को तलवार से काट कर देश को लाल रंगते थे, अब वह कटाई का काम जीभ से ही हो जाता है। ये भी एक प्रकार की *tyrrany* ही है, जहां 'शून्य' 'कुछ नहीं' इस फल को उत्पन्न करने के लिए जबानी जमा खर्च हो कर काट पीट, अनुमोदन और खण्डन, होते है। अच्छी बात है। आगे शून्य उत्पन्न करने की कला देशों में होती थी, अब पण्डाल ही में, तलवार और कवच के बदले जीभ और प्लेटफार्म से, काम हो चुकता है और शासक मज़े में शासन करते हैं, किसान; वेरो के खेती करते है। अधकचरे, ठग और धकेलने वाले मनुष्यों को बधाई है,—जिसे कुछ भी गुस्सा, गुस्ताखी, हठ, चालाकी और गला फाड़ना आता हो, वही नेता बन बैठे। तलवारों से

शत्रुओं को हटा दें, किन्तु आदमियोंकेगलों को कौन हटा सकता है ? आकाश के नीचे खड़े होने को जगह बहुत है, कुर्सी मूढा नहीं तो ओंधा पीपा ही सही, पत्थर ही सही, सुनने वाले भी कम न होंगे। महापुरुष नेताओं के लिए नियम बनाने की जरूरत नहीं; उन का एक तन्त्र भी प्रजातन्त्र से अच्छा होता है। ह्यूम साहब अपनी इच्छा बलात्कार से चलावें, औरों को फटकार दें, तौभी ठीक है, किन्तु उन के यहां न होने पर कांग्रेस बिना सूंड़ के हाथी की तरह न चले। यदि कांग्रेस को काम करने वाले मिले हैं तो पञ्जाबी मिले हैं। उन ने ही शिल्प प्रदर्शिनी आरम्भ की, जिस में नाटोराधीश, गायकवाड़ और माइसोर के राजा, क्रम से प्रधान बन चुके हैं। उन के प्रस्ताव से एक स्टेंडिङ्ग कांग्रेस कमेटी बनी थी, जो सभापति चुनने प्रभृति प्रबन्ध के कामों को सम्हालती थी। १९०० की लाहौर कांग्रेस के लिए उन ने विष्णुनारायण धर को चुना किन्तु वे अस्वस्थ थे, अतएव चन्द्रावकर का नामकरण हुआ और किसी ने आपत्ति न उठाई। दूसरे वर्ष कमेटी ने वाचा को चुना और देश भर ने स्वीकार किया। वातौनी वीरों को यह बात भाई नहीं। कमेटी तोड़ी गई। अहमदाबाद और मद्राज की कांग्रेसों में प्रेसीडेण्ट चुनने में क्या क्या खटराग हुए हैं, उन्हें सब जानते हैं। कालीचरण बनर्जी का नाम तीन दफे लिया गया। किन्तु सुरेन्द्र बाबू अहमदाबाद में दर्बार करने गए। इधर भी स्टेड, काटन, प्रभृति कई लोगों के नाम लिए गए, किन्तु किसी के स्वीकार न करने पर राजनैतिक योगी लालमोहन घोष अंधेरे में से निकाले गए। पञ्जाब के लोग इसी से कांग्रेस से पृथक हो गए थे। उनका प्रस्ताव यह भी था कि एक दिन भर शिक्षा और शिल्प के प्रस्तावों को दिया जाय। अब उनकी उदासीनता हट गई है, किन्तु प्रबन्ध नहीं हुआ।

जातीय कान्फरेन्सें, बड़े दिन की छुट्टियों में हो कर कांग्रेस में योग देने से लोगों को रोकती हैं। लोग कांग्रेस को बच्चे खाने वाली बिल्ली की उपमा देते हैं जो प्रादेशिक कान्फरेंसों को

नष्ट करती है। उत्साह भङ्ग होना हमारे देश का गुण है। अहमदाबाद कांग्रेस तो प्रादेशिक कान्फरेन्स ही मालूम देती थी। पुराने कांग्रेस के बन्धु सुस्त हो गए हैं। कुछ को फूटने अलग किया है। कुछ स्वेच्छा से हटे हैं। उन को जगाने के लिए सेनापति वैडरबर्न, दादाभाई, डबल्यू. सी बनर्जी और ह्यूम ने "शङ्खनाद" हिन्दुस्तान रिव्यू, में प्रकाशित किया है। वैडर बर्न और ह्यूम के पत्रों का अनुवाद समालोचक मे छपैगा। अब फटी थेगली को सीने का समय है. नहीं तो उपहास होगा। कांग्रेस भारत वासी मात्र की सम्पत्ति है और प्यारी सम्पत्ति है। जो लोग कांग्रेस को—

अज्ञात में कूदना

कहते हैं वे देखें कि हाईकोर्ट के न्यायपति, व्यवस्थापक सभाओं के मेम्बर, सभी कांग्रेस के पक्षपाती हुए हैं। तथापि कांग्रेस का प्रभाव सर्वसाधारण पर नहीं पड़ा है। पहले तीन चार वर्षों में जिसे उत्साह से अंग्रेजी और देश भाषाओं में ग्रन्थ लिख कर बांटे गए थे, वह बात अब स्मर्तव्यशेष है। कांग्रेस को देशी भाषाओं से घृणा है, वह उन के व्याख्यानों को भी नहीं छापती। काशीनाथ खत्री ने कांग्रेस पर हिन्दी उर्दू में लिख कर उसे सर्व प्रिय बनाया था। यदि कांग्रेस की रिपोर्ट और ट्रेक्ट हिन्दी भाषा में बांटे जाय, यदि कांग्रेस के नेता शहरों में देश भाषा मे व्याख्यान दें, यदि कांग्रेस में भी ई व्याख्यान भाषा में हों, तो कांग्रेस का प्रभाव कई गुना बढ सकता है। कांग्रेस का सभापति होना, भारतवासी के लिये बड़ा भारी सन्मान है। जब कई सज्जन उस के पात्र बैठें है तो सोने पर सोना चढाने अर्थात् एक ही सज्जन को बार बार सभापति करने का क्या लाभ है? अभी यूरेशियन और देशीय क्रस्तानों में से कोई सभापति नहीं चुना गया है। युक्तप्रान्त और पञ्जाब का भी कोई सभापति न बना। इन बातों से असन्तोष हो सकता है।

प्राचीन हिन्दुओंमे से अबतक आनन्द चार्लू ही सभापति बने है। आगामि बम्बई कांग्रेस में सच्चे हिन्दू जष्टिस गुरुदास बनर्जी को सभापति बनाना चाहिए, या देशी क्रस्तानों के लीडर का-

लीचरन बनर्जी को, जिससे कि दो बार चुने जाकर न चुने जाने का उनका दु ख मिटै।

कांग्रेस को मिस सरला घोषाल का जातीय खेलों का भी प्रस्ताव हाथ में लेना चाहिए। परीक्षाओं में नम्बर पाना, बकवाद करना, मेज पर कलम रगड़ना, फूटी आंखें, टूटी कमरें, यही अधिकार पाने की निशानियां नहीं है। आस्तीनें चढाना सीखना चाहिए, क्योंकि कार्लाइल के मत में राज दण्ड हथौडे का (जो सिर समझाने न से मानें उनको तोड़ने के लिए) रूपान्तर है। हथोडा उठा सकने वाले राज दण्ड भी उठा सकते हैं।

जब परमेश्वर ने हमें ऐसी दयालु सरकार दी है तो अवश्य ही अन्त में देश का भला होने वाला है। कांग्रेसकर्त्ताओंकी पुष्पिता वाणी भी इस बात को नहीं छिपा सकती कि उनके दल में फूट है। मद्राज कांग्रेस में इन्द्र के कोप से जल प्लावन की बात पढकर न केवल तालाब के चौतरफ बैठे मेंढकों का स्मरण होता है किन्तु कांग्रेस के नाटक मय खिलौने पर परमेश्वर की अप्रसन्नता ही जान पड़ती है। फ्रान्स के विप्लव के दिनों मे बक्र वादी फरासीसियों ने कई गज ऊंचा रङ्ग मञ्च बनाकर उसमें "न्याय, राजा, प्रजा," की ओर सच्चे होने की भक्ति की शपथ की थी, उस दिन वृष्टि ने सब मज़ा बिगाड़ दिया था (१) हां, कांग्रस के नेताओं ने यह तो जाना होगा कि सुखम चाहे वे लर्डे किन्तु दु'ख में वे एक है, क्योंकि उनके कपड़े वाटरप्रूफ नहीं है तो उनकी खाल तो वाटरप्रूफ है!!

अस्तु। कांग्रेस के नेताओं को अपना सुप्रबन्ध करना चाहिए, क्योंकि इस लेख के ऊपर लिखी श्रुति कहती है कि रस्तेसे चलने से ही सब कुछ होता है। (२) नहीं तो कार्लाइल के मत में हम भी यह कहेंगे—*God confound you, your paper constitutions and theory of irregular verbs* परमेश्वर तुम्हारे कागजी प्रबन्ध और असमाप्त क्रियाओं की परिपाटी को नष्ट करे!

---

(1) *Carlyle's History of the French Revolution, Vol II, Book-I chap XI, XII*

(२) इस लेखमें, और और पुस्तकों के सिवाय, बङ्गला मासिक पत्र साहित्य के एक लेखकी सहायता ली गई है।

लाखा फूलाणी का मारा जाना।

चन्द्रवंशी यादव क्षत्रियों की एक शाखा जाडेजा अथवा जाड़ेचा नामसे प्रसिद्ध है। उक्त शाखाके जाम (राजा) मोड़ने ईसवी सन् की ९ मी शताब्दी में सिन्धसे आकर अपने मामा कच्छ के राजा वाघम चावडे को मार कच्छ देशको अपने अधीन किया। उसका पौत्र फूल हुआ, जिसका पुत्र लाखा फूलाणी[1] बड़ाही समृद्धिवान[2] और उदार राजा था। उसकी ख्याति राजपूताना, गुजरात आदि देशों में अब तक चली आती है इतनाही नहीं, किन्तु उसका नाम धनाढ्यता और उदारताके विषयमें एक साधारण कहावतसा हो गया है।

हमारे यहां प्राचीन कालमें इतिहास लिखने की प्रथा न होने के कारण अनेक प्राचीन राज वंशियों आदि के समय तकका भी ठीक पता नही चलता, और उनके इतिहासके लिये भाट लोगोंकी मनमानी घड़ंतों पर ही निर्भर रहना पड़ता है। यही हाल लाखा फूलाणी के समय का है।

---

१ फूलाणी=फूलका पुत्र (जैसे जाडाणी=जाडा का पुत्र, आदि)

२ माया माणी वगड़ावतां. (के) लाखे फूलाणी।
रहती सहती माणग्यो हरगोविन्दराणी ॥ १ ॥
लाखा पुत्र समुद्र का, फूल घरे अवतार।
पारेवां मोती चुगे, लाखारे दरबार ॥ २ ॥
पह्लांणी हीरे जड़ी, सूरत पश्चाणी।
पच्छम हिन्दो पातशा, लाखो फूलाणी ॥ ३ ॥

कर्नल टाड लिखते हैं कि—"कन्नौजके राठोड राजा जयचन्द जी के पौत्र सियाजी के हाथसे लाखा फूलाणी मारा गयाथा"[3]; और ऐसा ही राजपूताना में प्रसिद्ध है। राम नाथजी रत्नू अपने 'इतिहास राजस्थान' में लिखते हैं कि—"कन्नौजके राठौड़ राजा जयचन्दजी के पौत्र सेतराम जी के बेटे सियाजी ने द्वारिका की यात्रा के लिये प्रस्थान किया, जहांसे लौटते समय अन्हलवाडा पाटन के सोलङ्की राजा मूलराजने इनको सत्कार-पूर्वक कुछ दिन अपने यहां रक्खा, और सियाजीको अपनी पुत्री ब्याही, जिसके पलटे में सियाजीने सौलकियोंके शत्रु किलैकोट के साडेचा राजा लाखा फूलाणी को मार कर उनका पीछा छुडाया"[4]।

इन दोनों ग्रन्थकारों के लिखे अनुसार विक्रम सम्वत् १३०० के आस पास लाखा फूलाणी का माराजाना मानना पड़ता है, क्योंकि वि० सम्वत् १२५० (ई० सन् ११९७) में कन्नौज के अन्तिम राठौड़ राजा जयचन्दजी शहाबुद्दीन गौरीसे लडकर युद्ध में मारे गये थे, जिनके पोते (कर्नल टाडके अनुसार), या पडपोते (इतिहास राजस्थान के अनुसार) सियाजी थे[5]।

---

३ टॉड राजस्थान जिल्द दूसरी, पृष्ठ १४ (कलकत्ते की छपी हुई)

४ इतिहास राजस्थान पृ १३८

५ सियाजी का जयचन्द जी के साथ क्या संबन्ध था, इस का अभी तक ठीक निर्णय नहीं हुआ। कर्नल टाड़ एक स्थान में ता सिया जी को जयचन्द जी का पुत्र (टा रा जि १ पृ. ९५), और दूसरे स्थान में पौत्र होना प्रगट करते हैं; और ख्यातों की पुस्तकों में जयचन्द जी के पुत्र वर्दाई सेन, जिनके सेतराम, और सेतराम के सिया जी होना लिखा है, परन्तु ये पुस्तकें भाटों की यड्डतोंके आधार पर लिखी गई है, जिन में उक्त राजाओं के जो

जब ऐतिहासिक प्राचीन पुस्तकों आदिकी तरफ़ दृष्टि देते हैं तो ऐसे प्रमाण मिलते हैं, जिनसे यह पाया जाता है, कि उपर्युक्त दोनों ग्रन्थकारों ने इस विषय में जोकुछ लिखा है वह केवल राजपूताना के भाटों की कल्पित कथाओं पर विश्वास करके लिखदिया है, और उसमें कुछ भी सत्यता नहीं है। लाखा फूलाणी सियाजी के जन्मसे २०० से भी अधिक वर्ष पूर्व वि० सम्वत् १०३६ (ई० सन् ९८०) के आसपास आन्हिलवाडा के सोलंकी राजा मूलराज के हाथ से मारा गया था। इस विषय के जो प्रमाण मिले हैं वे पाठकों के विनोदार्थ नीचे उद्धृत किये जाते हैं:—

(क)—"द्व्याश्रय[६] काव्य" से पायाजाता है, कि—"गुजरात के चौलुक्य (सोलंकी) राजा मूलराज ने सौराष्ट्र (सोरठ–

राज्याभिषेक संवत् दिये हैं वे बिल्कुल बनावटी हैं (जयचन्द जी वि० सं ११५१, वर्दाई सेन वि० सं ११६५, सेतराम वि० सं. ११८३ और सियाजी वि० सं. १२०५), जिनसे उक्त नामों की सत्यता पर भी शंका होती है। दूसरा कारण यह भी है, कि जयचन्द जी के दान पत्रों से उनके पुत्र हरिश्चन्द्र होना पाया जाता है, जिनका जन्म वि० सं. १२३२ भाद्र पद कृ १२ रविवार को, और नामकरण भाद्रपद शु. १३ रविवार को काशी में हुआ था; परन्तु कर्नेल टॉड के पुस्तक और ख्यातों में हरिश्चन्द्र का नाम नहीं है। कर्नेल टॉड को वरदाई सेन का नाम मिलाथा, जिस को उन्होंने राजाओं की नामावली में दाखिल नहीं किया, किन्तु उसे कन्नोज के राजा जय चन्द्र जी का खिताब अनुमान कर उसका अर्थ 'सेना का भाट' किया है। 'चन्द वरदाई' कवि को 'चन्द भाट' भी कहते हैं, इस से शायद उन्होंने 'वरदाई' को भाट का पर्याय समझ कर ऐसा अर्थ किया हो तो आश्चर्य नहीं।

६ प्रसिद्ध जैन सूरि हेम चन्द्र ने गुजरात के सोलंकी राजा

दक्षिणी काठियावाड) के राजा ग्राहरिपु पर चढ़ाई की, उस समय कच्छका महा प्रतापी राजा लक्ष (लाखा) जो फुल्ल (फूल) का पुत्र था, अपने मित्र ग्राहरिपु की मददपर चढ़ा, और मूलराज के कुन्त (भाले) से मारा गया[७]। "

(ख) " कीर्त्ति कौमुदी[८] " मे लिखा है कि—"मूलराज ने शत्रु के अगमें पूरे प्रवेश करने वाले अपने बाण बड़ी इच्छावाले राजा लक्ष (लाखा) पर ताके[९] "।

(ग) प्रबन्ध चिन्तमणिकार[१०] कहता है कि—" अपने प्रताप

कुमारपाल के समय वि० सं० १२१७ (ई० सन् ११६०) के आस पास ' द्व्याश्रय काव्य ' नामक भट्टीकाव्य की शैली का पुस्तक रचा, जिसमें उक्त सूरिके रचे हुए ' सिद्ध हैम ' नामक संस्कृत व्याकरण के सूत्रों के क्रमश. उदाहरण, और गुजरात के सोलंकी राजा मूलराजसे कुमारपाल तकका इतिहास दोनो आशय होनेसे ही उसका नाम ' द्व्याश्रय काव्य ' रक्खागया है।

७ 'द्व्याश्रय काव्य' के दूसरे से पांचवें सर्ग तक मूल राज की उक्त चढाईका, और पांचवें सर्गमें लाखा के मारे जाने का हाल विस्तार से लिखा है। ऊपर केवल उसका सारांश मात्र उद्धृत किया गया है। (कुन्तेन सर्वसारेणावधील्लक्ष चुलुक्यराट्) द्व्याश्रय, सर्ग ५।१२८)।

८ गुजरात के सोलंकी राजाओं के पुरोहित महा कवि सोमेश्वर ने वि० सं० १२७७ (ई० सन् १२२०) और १२९२ (ई० सन् १२३५) के बीच ' कीर्त्तिकौमुदी ' नामक ऐतिहासिक काव्य रचा, जिसमें गुजरात के सोलंकी राजाओं का इतिहास है।

९ सपत्नाकृतशत्रूणां सपराये स्वपत्रिणाम्।
महेच्छकच्छभूपाल लक्ष लक्षीचकार यः ॥ (सर्ग २।४)।

१० जैन सूरि मेरुतुङ्गने वि० सं० १३६१ (ई० सन् १३०५)

रूपी अग्निमें लक्ष (लाखा) को होमने वाले मूलराज ने उसकी (लाखा की) स्त्रियोंके आंसुओं की वृष्टि कराई, और कच्छ के उक्त स्वामी को अपनी विस्तृत जाल में फांसकर संग्राम रूपी समुद्र में मारा, और अपनी धीवरता प्रगट की[११]"।

(घ) प्राचीन गुजराती कविता में लाखा के जन्म और मृत्यु का वृत्तान्त इस तरह दिया है[१२] कि—" शक सम्वत् ७७७ (वि०

में 'प्रवन्ध चिन्ता मणि' नामक ग्रन्थ रचा, जिसमें अनेक ऐतिहासिक कथाओं का संग्रह किया है।

११ स्वमतापानले येन लक्षहोमं वितन्वता।
सूत्रितस्तत्कलत्राणां बाष्पावग्रहनिग्रहः ॥ १ ॥
कच्छपलक्षं हत्वा सहसाधिकलम्बजालमायातं।
संगरसागरमध्ये धीवरता दर्शिता येन ॥ २ ॥
(बम्बई की छपी प्रवन्ध चिन्तामणि पृ. ४७)

१२ ॥ दोहा ॥
शाके सात सतोतरे, (शुद) सातम श्रावण मास।
सोनल लाखो जनमियो, सूरज जोत प्रकास ॥ १ ॥
॥ छप्पय ॥
शाके नव एकमें, मास कार्त्तिक निरंतर।
पिता वैर छल ग्रहे, साहड़ दाखवे अतसधर (?) ॥
पडे सभा सो पनर, पडे सोलंकी सो खट।
सो ओगणिस चावड़ा, मुवा राज रक्षण वट॥
पातले गाववा मगल गई, हाथमल सेलसिहंना आगरे (?)।
आठमे पक्ष शुक्र चांदणे, मूलराज हाथ लाखो मरे ॥ १ ॥
(रासमाला गुजराती-जिल्द १ पृ ८३)

सं० ९१२=ई० सन् ८५६) श्रावण (शुक्ला) ७ को सोनल राणी के गर्भ से लाखा का जन्म हुआ, और शक संवत् ९०१ (वि० सं० १०३६=ई० सन् ९८०) कार्त्तिक शुक्ला ८ शुक्रवार के दिन अपने पिता का वैर[१३] लेने वाले मूलराज के हाथ से वह मारा गया। इस लडाई में १५०० समा (जाड़ेचा), ६००, सोलंकी और १९०० चावड़े राजपूत राउपूराज्य की रक्षा के लिये लड़ कर काम आये"।

(ङ)—कच्छी भाषा की प्राचीन कविता में ऐसा लिखा

ऊपर के दोहे में जो शक संवत् ७७७ (वि० सं. ९१२) में लाखा का जन्म होना लिखा है वह संशय-युक्त है, क्योंकि इस हिसाब से उसका १२४ वर्ष की अवस्था में मारा जाना सिद्ध होता है, और ऐसी वृद्धावस्था में लड़ कर मारे जाने के उदाहरण बहुत ही कम मिलेंगे।

१३—मूलराज ने लाखा फूलाणी को मारा जिस का कारण गुजरात के भाट लोग ऐसा प्रगट करते हैं कि—"किसी समय मूलराज का पिता राजा सोलंकी द्वारिका की यात्रा से लौटता हुआ लाखा के दर्बार में गया, और वहां पर लाखा की बहिन रायांजी से उस का विवाह हुआ, जिससे रखायच नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। फिर किसी कारण से विवाद हो जाने पर राज सोलंकी लाखा के हाथ से मारा गया, जिस का वैर लेने की इच्छा से मूल राज ने कच्छपर चढ़ाई कर लाखा को मारा"। परन्तु उन का यह कथन भी विश्वास योग्य नहीं है, क्योंकि यदि ऐसा हुआ होता तो उस का चबूतरा (जहां वह मारा गया) कच्छ में होना चाहिये था परन्तु वह सोरठ में आटकोट के पास बना हुआ है, जिस से यही पाया जाता है, कि वह सोरठ के राजा ग्राहरिपु की मदद पर चढ़ कर वह वहीं मारा गया, जैसा कि हेमचन्द्र सूरिने लिखा है।

मिलता है कि[१४]—" लाखा फूलाणी ने आकर अभिमान किया, परन्तु वह लड़ाई में मूलराज के हाथ की सांग लगने से मारागया"।

इन प्रमाणोंसे स्पष्ट है कि, लाखा फूलाणी राठौड़ सियाजी के हाथसे नहीं, किन्तु मूल राज के हाथसे मारा गयाथा। और कर्नल टॉड ने तथा इतिहास राज स्थान के कर्त्ताने इस विषयमें जो कुछ लिखा है वह ठीक नहीं हैं। ऐसेही मूलराज सोलंकी की पुत्री से सियाजीका विवाह होना इतिहास राजस्थान में लिखा है वह भी निर्मूल है। क्यों कि सियाजी के राज्यका प्रारंभ वि० सं० १३०० (ई० सन् १२४३) के आसपास, और मूलराज सोलंकी

१४—अची फूलाणी फरोरचो, रारो मंडाणूं ॥
मूलराज सांग उखती, लाखी मराणूं ॥ १ ॥

१५—कर्नल टॉडने ई. सन् ९३१ (वि. सं. ९८७) में, और फार्वस साहिब ने ई. सन् ९४२ (वि० सं. ९९८) में मूलराज का राज्य पाना निश्चय किया है और पिछले लेखकों ने टॉड साहिब के दिये हुए समय को स्वीकार न कर फार्वस साहिब का निश्चय किया हुआ संवत् ही उद्धृत किया है (गुजरात राजस्थान पृ ३. इंडियन ऐंटिकेरी जिल्द ६ पृ. २१३)। परन्तु फार्वस साहिब का निर्णय किया हुआ संवत् भी सही नहीं माना जा सकता, क्योंकि उक्त साहिब ने यह भी लिखा है कि " ई. सन् ९३५ (वि० सं. ९९१) में चावड़ा वंश का अन्तिम राजा सामन्त सिंह अनहिलवाड़ा की गद्दी पर बैठा। उस के समय में सोलंकी वंश के राज, बीज, और दण्डक नामी तीन भाई सोमनाथ की यात्रा से लौटते हुए उस के दर्बार में आये. उन में से राज की योग्यता पर प्रसन्न होकर उस ने अपनी बहिन लीलादेवी का विवाह उसके साथ कर दिया, जिस के गर्भ से मूलराज उत्पन्न हुआ. जो अपने मामा के पास ही रहा और ई० सन् ९८० (वि. ९९८) में उसने अपने मामा को मार

का राज्याभिषेक संवत् १०१७ (ई० सन ९६१) में हुआथा। इस लिये सियाजी का मूलराज के समयमें विद्यमान होना कैसे संभव हो सकता है ?

गौरीशङ्कर हीराचंद ओझा।

कर उसका राज्य छीन लिया।" विचार का स्थान है कि, सामन्त सिंह के मारे जाने के समय फार्बस साहिब के हिसाब से मूलराज की अवस्था अधिक से अधिक पांच या छ: वर्ष के लग भग हो सकती है, तो ऐसी अवस्था में उस का एक राजा को मार कर राज्य छीन लेना कैसे संभव हो सकता है? अत: मेरुतुङ्ग सूरि ने जो अपने रचे हुए 'विचार श्रेणी' नामक पुस्तक में मूलराज की अनहिलवाड़ा की गद्दी पर वि० सं १०१७ में बैठना लिखा है वह ठीक माना जा सकता है, क्योंकि उस समय मूलराज की अवस्था बीस वर्ष के क़रीब होना संभव है। इसी तरह उक्त सूरि ने अपने 'प्रबन्ध चिन्ता मणि' नामक ग्रन्थ में चावड़ा वंश के अन्तिम राजा सामन्तसिंह (भूयगड़देव) का वि० सं ९९० पौष शुदि १ को गद्दी बैठना, और २७ वर्ष राज्य करना लिखा है, उस से भी मूलराज का वि० सं० १०१७ में राज्य पाना सिद्ध होता है, और यही सम्वत् शुद्ध मानने योग्य है।

हमारी आलमारी ।

Annual Report on the Search for Hindi Manuscripts for the year 1900 by Syam Sunder Das B.A
(Government press, Allahabad, 1903 Rs 5-8or 8s)

सरकार (युक्त प्रदेश की) काशी नागरी प्रचारिणी सभा को प्रति वर्ष ५००) प्राचीन हिन्दी पोथियों की खोज के लिए देती है। उस सहायता से सभा ने सन् १९०० में क्या काम किया, इसकी रिपोर्ट, खोज के सुपरिन्टेन्डेन्ट बाबू श्यामसुन्दर दास बी ए की लिखी सरकार ने अब छपवाई है । इससे ज्ञान पड़ता है कि १६९ पोथियों की नोटिस की गई है, जिन में १५७ पोथी ९० ग्रन्थकारों ने रची थीं। बाकी के कर्ताओं का पता नहीं। ज्ञात कर्त्ताओं में दो बारहवीं शताब्दी के, दो चौदहवीं, एक पन्द्रहवीं, बाईस सोलवीं, अठारह अठारह सत्रहवीं और अट्ठारहवीं, और बारह उन्नीसवीं शताब्दी के हैं। इस खोज से जो प्रधान बातें सिद्ध हुई वे ये हैं—(१) तुलसी दास जी की रामायण की १६८४ की लिखी एक प्रति मिली, जिस के आधार से इण्डियन प्रेस का नयनाभिराम संस्करण हुआ है (२) मौलिक मुहम्मद जायसी के मुकाबले में शेख कुतबन की मृगावती के मिलने से सिद्ध हुआ कि प्राचीन हिन्दी कविता में देवचरित्र युगही नहीं,-उपाख्यान युग भी था। रासौ-युग (मार वाड़ी सदृश) उपाख्यानयुग (जायसी और उर्दू

से मिलता हुआ) और भक्ति युग (वृज भाषा) की कई नई पोथियां मिली है। (३) चन्द वरदाई के रासौ की कई प्रतियों और पृथ्वीराज के कालके पट्टों से उस भारत वर्ष के अन्तिम महाराज के समय निर्णय की नई सामग्री मिली है (४) वीसल देव रासा से वीसल देव और विग्रह राज एक व्यक्ति नहीं थे, यह सिद्ध हुआ। बाबू साहब की भाषा बहुत सरस और प्राञ्जल है, और इस रिपोर्ट के स्वर को देख कर पूरी आशा होती है कि वे अच्छे ऐन्टिक्वेरियन (पुरातत्ववित्) बन जायंगे। इस रिपोर्ट में लिखे कई ग्रन्थों को नागरीप्रचारिणी ग्रन्थमाला में प्रकाशित करने का विचार है। विशेषत• पृथ्वीराज के काल निर्णय में जो अनन्द सम्वत् वाली युक्ति दी गई है, उससे अन्तिम हिन्दू नरेश और प्रथम हिन्दी महाकवि के समय निर्णय का मार्ग प्राय निष्कण्टकही हो गया है, और तब तक ऐसा रहेगा जब तक रासौ–कृत्रिमता–वादी बाबू साहब के मत को खण्डन न कर सकें रासौ और वीसल देव के काल निर्णय के लेख नागरीप्रचारिणी पत्रिका में छप चुके है, और अंग्रेजी न जानने वाले इतिहास प्रेमियों को वहीं से अवश्य पढने चाहिएं। सभा का यह कार्य बड़ा लाभदाई है और आशा है कि सरकार की सहायता से १०। १२ वर्ष का काम झट पट हो कर हिन्दी साहित्य के इतिहास लिखने की सामग्री मिल सके। जब प्राचीन राजपूतानी भाषाओं को भी हिन्दी का प्राचीन रूप माना गया है, तो तिर्हुता और पुरानी बङ्गला की वृजभाषा सदृश कविताओं का अनुसन्धान क्यों नहीं किया जाता जिस से कर्म क्षेत्र का विस्तार हो? इस खोज में हम कोई दोष निकाल सकते है तो यही कि रिपोर्ट बड़ी देर से छपी है।

* * *

बैठ कर सैर मुल्क की करनी, यह तमाशा किताब में देखा।*

जिस समय बोअर युद्ध के होते होते टाइम्स ने उस का प्रकाण्ड इतिहास प्रस्तुत किया उस समय हम चुप रहे। उर्दू में स्पेन की मुसलमान बादशाहत का हाल देख कर हमने नेत्र नीचे कर लिये किन्तु जब बंगला में ट्रान्सवाल युद्ध का वर्णन और पन्ना नरेश की राज्यच्युति छपी, तो हम हाथ मल मल के पछताने लगे और आंखे मल मल के सोचने लगे कि जगत् का क्या होगा। चीन में गतवार जो बाक्सरविद्रोह हुआ था, वह हमारे लिए अच्छाही हुआ, क्योंकि वहां जाने से दो भारत वासियों ने हिन्दी भाषा को दो ग्रन्थ रत्न उपहार देकर भषा का कङ्कला मिटाया है। ठाकुर गदाधर सिंह ने "चीन में तेरह मास" लिखे और डाक्टर महेन्द्र लालगर्ग ने आखों देख कानों सुन और पुस्तकों में पढ कर "चीनदर्पण" लिखा। चीन की इस चर्चा के चतुर चितेरों ने बड़े चाव से अपने प्रवास का बदला अपनी - जन्म भूमि और मातृभाषा को दिया, इस का हम उन्हें क्या प्रत्युपकार करें? अब भी कई भारतवासी विदेश यात्रा करते है, किन्तु अपनी रिपोर्ट देना उचित होकर भी नया काम है। बङ्ग देश के एक सन्यासी स्वर्गवासी रामानन्द भारती ने हिमालय और तिब्बत की यात्रा का अपूर्व विवरण 'साहित्य' में छपवाया था। वह द्वन्द्वातीत व्यक्ति एषणात्रय के त्याग में भी, अपनी मातृ भाषा को न भूला और उस के पास "एक खानि क्षुद्र नोट बुक छिलेन"। हिन्दी बोलने वालों में साधु, सन्यासी, कनफटे, भिखमङ्गों के काफिले के काफिले

* चीनदर्पण, डाक्टर पण्डित महेन्द्रलाल गर्ग लिखित। ठनवे . न० पल्टन झेलम, के पतेसे प्राप्तव्य। पृष्ठ २७९, मूल्य १।) सुखसंचारक प्रेस, मथुरा।

मौजूद है, किन्तु उन्हें मुफ्त की भीख डकारने और न देने वाले को गाली देनेके सिवा काम ही क्या है ? अस्तु।

चीन दर्पण वास्तव में चीन दर्पण है। इस ग्रन्थ के दोष हम पहले कहलें। छापे की भूलें रह गई हैं और छपाई साफ नहीं हुई। ग्रन्थ कार ने भूमिका में कहा है कि "मेरे मिलने वालों में अपढ लोगों की संख्या अधिक है इसी लिए इसकी भाषा ऐसी सरल रक्खी है कि स्त्री और बच्चे तक समझ सकें" उनका यह यत्न सफल न हुआ। खिजा के दिनों (पृष्ठ १०) को कौन स्त्री और बच्चे समझेंगे ? सक्त (१२) खपा (१४) मश्शाक (२१) जिल्लत (३२) तफावत (९५) परिश्तिश (५८) मखलूक (१८७) जवाल, तनज्जुली (१९८) प्रभृति शब्दों को जो बालक और स्त्रियां समझ सकें वे उनके पर्यायों को पहले समझ सकते। एक आध जगह वाक्यरचना भी साफ नहीं है यथा—हाकिम इखितियार को पाकर मगरूर और रैयत को दुख देते थे (पृ. २५०)

किन्तु इस से कोई यह न समझै कि हम इस ग्रन्थ की निन्दा कर रहे हैं। हम सब लोगों को इस ग्रन्थ के पढने और संग्रह करने की सम्मति देते हैं। इस में चीन के सब दर्शनीय स्थानों का वर्णन है, सब विलक्षण रीतियों का वर्णन है, वहां का पूरा इतिहास है और इतनी सामग्री है जिस से नेत्रों के सामने चीन का पूरा चित्र खिच जाय। मनुष्य को मनुष्य का वृतान्त जानने की इच्छा होती है। चीनी केवल मनुष्य ही नहीं, हमारे परिचित हैं, सभ्यता में, रस्म रिवाज में, धर्म में, हमारा उनसे मेल जोल है। और अब गर्ग महाशय के ग्रन्थ ने हमारी उन से मित्रता करा दी है। इस ग्रन्थ के वर्णन का ढग बहुत अच्छा है, भाषा सरल है और ऐसे वर्णनों का मुख्य गुण संक्षेप भी विद्यमान है। निर्जीव उपन्यासों

के पढने में जो आनन्द आता है उस से अधिक आनन्द इसे पढ़ने में होता है। इस रोचक पुस्तक को उपन्यासों के पढने वाले भी पढें, क्योंकि ऐसा आनन्द और कहीं मिलना कठिन है, गम्भीर लेखों के पढने वाले भी पढें क्योंकि ये सत्य घटनाएं, और तथ्य वृन्तान्त मनोरञ्जकही नहीं, ज्ञानप्रद भी हैं। ग्रन्थकार को ऐसा उत्साह मिले जिससे वे ऐसे ऐसे और भी नए ग्रन्थ लिखें।

* * *

"भारत वर्ष का इतिहास । मध्य हिन्दी । चित्र और छवि सहित। बंगाले के साधारण शिक्षा विभाग के डाइरेक्टर स्विकृत, १९०२। चार आना"

जिस ग्रन्थ के टाइटल पेज पर इतनी अशुद्धियां विराजमान हैं उसे देखने की उत्कंठा को हम न रोक सके। सूची पत्र से जाना कि इस ग्रन्थ में और और विषयों के सिवाय "मुहम्मद गोरी" "मुग़ुल शाहिनशाह" "अकबर आजिम (महान्)" और "फ्रांसीसों (अ. !) की अन्त्यम हार" का भी हाल है। स्पेलिङ तो शुरू हुआ। फिर "लार्ड कार्नवालिस और सर जान शोर दूसरा और तीसरा गवर्नर जनरल" वर्णित है वा हैं। नीचे "लार्ड मिंटो छटवां (छटा हुआ ?) गवनर जनरल" लिखा है। आगे क्या है सो ज़रा देखें—"मारहट्टों की ताकत टुटन" (वजन फिटन ?) फिर जाना जाता है कि इस ग्रन्थ रत्न में "म्युनिसिपलिटियें" और "देसी रियासितें" भी वर्णित हैं। नकशों में अमुक नमुक के "समय की वृटिश इंडिया" भी है। टाइटल के चौथे पेज ने कहा कि "ऊपर लिखे हुए पुस्तकें मैकमिलन एण्ड कं० लि० ७ नं नया चीना बाजार ट्रीट कलकत्ते में मिलते हैं"।

इस पुस्तक में हमने कई चित्र ऐसे देखे जैसे कभी नहीं दिखाई पड़े थे। इस के लिए प्रकाशकों को धन्यवाद है। किन्तु कुछ आदमियों के नाम हम न समझ सके, जैसे—"मानसिंघ", "नुरजहां" "गांव की सावधानता" (घास के बनाए एक छज पर कुछ आदमी बैठे हैं। पुस्तक कहती हैं कि यहां गांव की रक्षा के लिए बैठा "मनुष्य द्वार परे की उड़ती हुई गर्द देख कर जान जाता था कि कोई लुटेरा आ रहा है" तो इस फिकरे का क्या अर्थ है? गांवकर्तृक सावधानता, वा गांव के लिए सावधानता?) शायद यह "विलेज आउटलुक" का तर्जुमा है! "बाहादुरशाह" "ड्यूप्ल" "क्वार्ट क्लाइव" (क्वसेआर्त?) "शाह आलम दिवानी क्लाइव को दे रहा है" (यहां दीवानी "दे रहा है" का कर्म है, वा शाह आलम या क्लाइव का विशेषण) "रघुवा" (महाराष्ट्र इस सज्जन को "राघव" कहते हैं और, अंग्रेज "रघोबा"। इस ग्रन्थ ने तीसरा नाम बताया है) "फंरनवीस" (क्या किसी फिजी द्वीप वासी का नाम है? इतिहास मे फड्नवीस तो हुए है) "टीपु" "ठग मंडलि" "सत्ती" (कितना भत्ता मिला?) रंजीतसिंघ (पञ्जाब केसरी को दो घाव) "डफरन"। चित्रों में भी यह स्पैलिङ की बहार हुई।

ग्रन्थ में कई जगह "खांटी तरजुमा" (यज्ञाज्ञियों के "अक्षरानुवाद" का नाम) विद्यमान है। ठीक जैसे मक्षिका स्थाने मक्षिका चिपकाई हो। आउटलुक की जगह 'सावधानता' 'मिडल वर्नाक्युलर' की जगह "मध्य हिन्दी" "जाइण्ट ईष्ट इण्डिया कम्पनी" की जगह 'मिली हुई पूर्वी हिन्दुस्तानी कम्पनी' तो पाठकों ने यहीं पढा होगा। ये तर्जुमे ऐसे हैं जैसे कोई एलेग्जेण्डर पैडलर का तर्जुमा सिकन्दर बिसाइती करे।

ग्रन्थ कारों का नियम है कि जिन विषयों पर मत भेद हो वहां दोनों पक्षों का कथन दिया करते है। चाहे अपने मत को प्रबलता दिखावें, किन्तु विपक्ष मत को विना दिए नहीं रहते। किन्तु वहां मानो हुक्म दिया जा रहा है कि आर्य मध्य एशिया से आए थे! विधवा स्त्रियां विवाह कर लिया करती थीं! उन हिन्दुस्तानी आर्यों के मूर्त्तियां न थी!!! अव तक हिन्दू हनुमान को वड़ा बन्दर देवता समझ कर पूजते हैं (पृ. ८)

प्रति पृष्ठ में स्पैलिङ की भाषा की, भाव की गलती एक न एक मौजूद है। कयी (१८) इत्नी (१५) मस्हूर (१५) गलतियां है कि अपने यहां (३५) उनका चलन नहीं चाहिए।

"शाहजहांन् को उत्ता तुर्क नहीं कहना चाहिए जित्ता कि राजपूत,, (२७-२८) नहीं समझे। लार्ड रिपन को देसी वहुत चाहते थे और वह भी इन पर वहुत मेहरवानी करता था (९०) क्या इस से यह ध्वनि निकलती है कि अंग्रेज उन्हें नहीं चाहते थे?

कुछ मुद्दत वाद कलकत्ते की गवर्नमेंट इण्डिया ने जव वह हाल सुना (पृ. ५७) भिन्न टाईप के अक्षरोंका क्या अर्थ है? क्या ऊंटके मण्ड में भी न्यारी गवर्नमेन्ट इण्डिया है?

शिक्षा विभाग को उचित है कि ऐसी पुस्तकों से किनारा करे नहीं तो इन्हें सुधरवा लेवै।

* * *

वेडरबर्न का शङ्ख नाद !!!

कई जानकार मित्रोंने मुझे कहा है कि भारतवासी राष्ट्रीय कामकी ओरसे उदासीन होगए है, और समय के कोडे और घृणा सहने में सन्तुष्ट हैं ; दु खोंके प्रतीकार के लिए नियमित आन्दोलन में उनका विश्वास हट गया है और वे झगडे को छोड देना चाहते हैं ।

" हमें अकेलाही रहने दो । बुराई से लडने में हम क्या
" सुख पा सकते हैं ? चढती हुई लहरों पर सदा
" चढ़ते रहने में क्या कोई शान्ति है ? "

चैम्बरलेन के शब्दों में वे लेटे ही लेटे सहना चाहते हैं , और उनके अधिकारी स्वामी के मेज़ परसे जो टुकड़े गिर पड़ें, उन्ही के लिए हीनता से रेंगना चाहते हैं ।

यदि यह सत्य है, यदि जातीय तेज वास्तवमें यों टूट गया है तो वास्तव में खेदकी बात है भारत वर्ष के लिए अकथनीय खेद की बात है, इङ्गलेण्डके लिए लज्जा की बात है । यह दिखाएगी कि हम अपने कर्तव्यमें निष्फल हुए हैं ; और भारतवर्ष में हमारा शासन, इस बडी और प्राचीन जाति को उच्चतर जातीय जीवन के लिए जगाने के बदले उनके जीवन को पीस चुका है, और बेहोशी और निराशता ही छोड रहा है ।

---

(१) जाग ज़रा ए सोने वाले ! (अनुवादक)

किन्तु अपनी तरफसे मैं इस निराश विचारमें साझी नहीं हूं। मैं भारत माता के भले और सच्चे पुत्रों को जानता हूं जो इस बात पर दृढ़ हैं कि वह आधी बेहोशीही में राज नैतिक मृत्यु में नहीं डूबने पावै। जो हो, हम जो अपने को उसका मित्र कहते हैं उनका यह काम नहीं है कि झगड़े को छोड़ दें। हम कई बार पढ़ते हैं कि कोई पथिक बरफ के बहावों में थक कर गिर जाता है, बेहोशी में (जो झटही मृत्यु में अन्त होने वाली है) डूब मरता है। उसे कष्ट नहीं जान पड़ता, उसकी एक-मात्र इच्छा सोने को होती है और वह चिढ़कर अपने मित्रों को उसे शान्ति में छोड़कर अपने रस्ते लगने को कहता है। क्या वे उसकी प्रार्थनाओं को मानेंगे और उसके क्रोधसे डरेंगे? बिलकुल नहीं।

वे उसे पैरों पर खड़ा करते हैं, चाहे उसमें मित्रता से बलात्कार ही करना पड़े; उसमें बेआशा और ढाढ़स डालेंगे और कहेंगे कि तूफान घट रहा है, सहायता पासही है और आराम का स्थान पासही दिखाई दे रहा है। यह सच्ची उपमा है। भारतवर्ष के मनुष्य बड़ी बड़ी और कई आपत्तियोंसे घबरा चुके हैं। वे बहुत काल तक थकने थकते युद्ध, अकाल और रोग को सह चुके हैं और किसी को आश्चर्य नहीं होना चाहिए यदि दुर्बल मनुष्य जातिके लिये यह बोझ बहुत अधिक हुआ हो; यदि उनका उत्साह मुरझा गया हो, और उनकी इच्छा को लकवा मार गया हो। किन्तु यह समय उसके नेता और मित्रोंको हाथ समेट कर बैठने का नहीं है। एक बड़ा मौका आने वाला है। अन्धेरे की शक्तियां छिन्न गई हैं;

(२) बचने का झगड़ना ?

और यदि भारतवर्ष केवल अपनी वातका सच्चा रहै, तो अब भी सब कुछ ठीक हो सकता है ।

" यह न कहो की झगड़ा किसी प्रयोजन का नहीं है
" और परिश्रम और घाव वृथाही है , शत्रु न वेहोश होता
" है और न हारता है और सब बातें जैसी हैं वैसी ही
" चल रही हैं ।

" यदि आशा ओं नेचमका दिया है, तो भय भी झूठ
" हो सकते हैं , यह हो सक्ता है कि सामने के धुएमें छिपे हुये
" तुमारे मित्र भगेडुओं का पीछा कर रहे हैं, और तुम्हारी
" सहायता की ही कसर है, की उन ने मैदान मार ही लिया

" थकी हुई लहरें, वृथा सिर तोड़ कर यहां
" तो कठिनाई से इञ्च भर भी जगह नही पाती हैं, किन्तु पीछे
" वहुत दूर पर, कोने में होता हुआ, धीरे धीरे, महा समुद्रही
" वढता हुआ आ रहा है ।

तो दशा क्या है ? वास्तव काम क्या करना है ? मैं कह चुका हूं कि इस देशमें एक वडी मार्केकी घटना होने वाली है ; और हिन्दुस्थान के मनुष्यों को एक वडा मौका मिलने वाला है । हमें जो करना है वह यही है कि इस मौके को दृढता से पकड़ लें । गत आठ वर्ष में इस देश (इङ्गलेण्ड) पर वाहर को वलात्कारी और घर में स्वार्थी सकीर्ण विचार वालों का शासन रहा है । अव राज नैतिक दोला वडे वेगसे दूसरी ओर झूमने वाली है, वाहरको जातीय न्याय की ओर, और घर में सवकी सह्याल की ओर । और जैसे भारतवर्ष वलात्कार और जातीय सकीर्णताके कारण

सबसे अधिक दुःख भोग रहा है; वैसे ही वह सबसे अधिक लाभों वाला भी होगा जब कि हमारी जाति उन स्वतन्त्रता, न्याय और उन्नति की बातों पर लौट आएगी जिनने इङ्गलैण्ड को इतना बडा बनाया है। नई पार्लेमेण्ट और जागे हुए जातीय कर्तव्य ज्ञान के साथ (भारत वर्ष के लिए) अपील की कचहरी खुल जायगी। यदि न्याय की डिक्री पानी है तो सुस्ती नहीं होनी चाहिए। भारतवर्ष का मामला प्रतिनिधि चुनने वालों के सामने प्रभाव डालने की रीति से और बार बार सुझाना चाहिए। और इसका अर्थ है—परिश्रम का और स्थायी काम, उत्साह और आत्मोत्सर्ग (स्वार्थत्याग)। उस आयर्लेण्ड की तरफ देखो जो अब नियमित आन्दोलनका फल पा रहा है। भारत वर्ष के मार्ग में कण्टक वैसे विकट नहीं है जैसे कि वह थे जिन्हे आयर्लेण्ड के साहस और आयर्लेण्ड के हठीलेपन ने उखाड़ दिया है।

इससे मैं भारतवर्ष के देशप्रेमियों से कहता हूं "चलो और जीतो। तुम्हारी सहायता की तरफ बहुत कुछ है। ब्रटिश सर्व साधारण प्रजा का भारतवासियों की ओर अच्छा भाव है। वह उसके अकाल के दुःखों के कारण उसकी ओर दया से भर गई है, भारतके सिपाहियों की वीरता और काम से उसपर प्रभाव पड़ चुका है; और दक्षिणी एफ्रिका के बीमार और घायलों को जो सहायता दी गई है उसके लिए वह कृतज्ञ है। किन्तु, वह साम्राज्य के बोझ से पीड़ित है, उसकी स्मरण शक्ति दुर्बल है, वह भारतवर्ष की जरूरतों से अनभिज्ञ है। भारतवर्ष के शिक्षित मनुष्यो! उसके इस अज्ञान को हटाना तुमारा काम है। यहां

सब कुछ तुम्हारे लिए खुला है, समाचार पत्र भी, पार्लेमेण्ट भी, व्याख्यान का प्लेटफार्म भी। सत्य के प्रचारक बनकर उनका पूरा उपयोग करो। तुम रूस में नहीं हो, और बिना भयके बोल सकते हो। सबसे अधिक आवश्यक तो यह है कि अपनी सेना को इकट्ठी करो, जुडकर रहो, तितर बितर न होओ, आपस में झगडे न रक्खो[२] इङ्गलेण्ड में तुम्हें जो कुछ सहारा मिल सकता है उस सबकी तुम्हें आवश्यकता है। अत एव इङ्गलेण्ड के अपने पुराने मित्रों के पास खड़े हो और जितने नए मित्र पा सको उतने इकट्ठे करो। ऐसा मौका तुम्हारे लिए फिर कभी न आएगा; सो जागो, उठो, या सदा के लिये गिरे रहो॥

(सर) डबल्यू. वेडरबर्न।

---

(२) मूरख हृदय न चेत, जो गुरु मिलहिं विरञ्चि सम।

महाकवि भूषण।

(१) हमारी भाषा के साहित्य पर वीर, रौद्र तथा भयानक रसोंका सर्वोच्चपद है कारण यह कि भाषा की कविता इन्हीं रसों का अवलम्ब ले पृथ्वी पर अवतीर्ण हुई है—सब से प्रथम जिस ग्रन्थ के निर्म्मित होने का हाल हम लोगों को ज्ञात है वह चन्द कृत पृथ्वी राज रासा शेष है और वह विशेषतया इन्हीं रसों के वर्णनों का भण्डार है उसके पश्चात् वीसलेदेव रासा आदि जो ग्रन्थ निर्म्मित हुए उन्हों ने भी विशेषतया इन्हीं रसों को आदर दिया—मालिक मुहम्मद जायसी ने भी यत्र तत्र उपर्युक्त ग्रन्थों की भांति इन्हीं रसों का समावेश अपनी पद्मावत में किया है—तदनन्तर जैसे कहा जाता है कि "चौथेपन जाइय नृप कानन" उसी प्रकार हमारी भाषा काव्य चौथे पन को कौन कहै श्रीराम चन्द्र जी की भांति पहले ही पन में कानन चली गई और भगवत भजन करने लगी-अत इन उपर्युक्त रसों का वर्णन समाप्त कर के तुलसीदास सूरदास, कबीरदास, तथा उसी समय के अन्यान्य कवीश्वरों की सहायता से इसने शान्त रस के बड़े ही मनोरञ्जक राग अलापे परन्तु असमय की कोई बात चिरस्थाई नहीं हो सकी इसी अटल नियम के प्रभाव से हमारे साहित्य का चित्त शान्त रस में न लगा शान्त का प्रादुर्भाव तो शृङ्गार के पश्चात् होता है-जब सब विषयों का भोग कर प्राणी थक जाता है तभी उस के चित्त में राजा ययाति की भांति उन विषयों से तृष्णा हट कर निर्वेद का राज्य होता है—तो हमारे साहित्य ने अपना पुराना उत्साह तो छोड़ही

दियाथा अब वह निर्वेद को भी तिलांजलि दे अपना शृंगार करने में पूर्णतया प्रवृत्त हुआ और हमारे कवियों ने पुण्यात्मा सरस्वती देवी को नायकाओं के गुण कथन में लगाया और इस कार्य्य में (जैसा कि हम हिन्दी काव्य अलोचना में लिख चुके हैं) उन कवियों को उद्योग शून्य राजाओं से विशेष सहायता मिली इस शृङ्गार के वर्णन में हमारी कविता उसी समय से अद्यपर्य्यन्त ऐसा कुछ उलझ पड़ी है कि उसका छुटकारा होना कठिन दिखाता है—जहां देखो पति पत्नी का विहार, मान, दूतीत्व, पश्चात्ताप, विरह की उसासें, उप पतियों की ताक झांक, शरद पूनी का रास गणिकाओं के अधिक धन वसूल करने के प्रयत्न आदि ही हमारी कविता अब हम को दिखा रही है—पूछा जा सकता है कि यदि हम अपना समस्त समय इन्हीं बातों में नष्ट करें तो सेना की शिक्षा, शिल्प वाणिज्य की उन्नति, कृषि कर्म्म इत्यादि करने का हमें कब अवकाश मिलेगा ? हमारे इस प्रबन्ध के नायक भूषण महाराज ऐसे समय मे उत्पन्न हुए थे जब सरस्वतीजी इन्हींउपर्युक्त अनुचित वर्णनों से उदास हो चुकी थी इन महाशय को ऐसे वर्णन पसन्द नहीं थे अत. वे लिखते हैं।

ब्रह्म के आनन्द ते निकसेते अत्यंत पुनीत तिहू पुर मानी—
राम जुधिष्ठर के बरने बलमीकिहु व्यास के संग सोहानी।
भूषन यों कलि के कविराजनि राजनि के गुण पाय न सानी-
पुण्य चरित्र शिवा सरजै बरन्हाय पवित्र भई पुनि बानी ॥

हमारे भूषण महाराज का यह भी एक बड़ा गुण है कि; ऐसे समय में जन्म ग्रहण करने पर भी कि जब उनके अधिकांश प्रसिद्ध प्रसिद्ध समकालीन कविगण शृङ्गारादि अनुपयोगी विषयों पर

अपना समय नष्ट कर रहे थे इन्हो ने एक अत्यन्त उपयोगी वर्णन की ओर लोगों की रुचि आकर्षित की यहां तक कि सिवाय एक एक छन्द के और कुछ भी शृङ्गार रस के वर्णन मे न कहा और, मानों प्रायश्चित्तार्थ इन्होंने उस एक छन्द में भी युद्ध का ही रूपक बांधा है। यथा—

मेचक कवचय साज वाहन वयारि वाजगाढे दल गाजे रहे दीरघ वदन के,

भूषन भनत समसेर सोई दामिनी है हेतु नर कामिनी के मान के कदन के।

पैदल वलाका धुरवान के पताका गहे घेरियत चहू ओर सूते ही सदन के,

नाकर निरादर पियासों मिल सादर पे आयेनीर वादर वहादर मदन के॥

हर्ष की वात है जैसे इन्हों ने शृङ्गार रस को लात मार वीर रौद्र, भयानक रसों हीं को प्रधानता देकर अन्य कवियों को सदुपदेश सा दिया वैसेही परमेश्वर की कृपा से इन का आदर भी ऐसा हुआ जैसा इन से श्रेष्ट तर कवियों को भी उस समय अथवा उस के पश्चात्, भी कभी स्वप्न तक में न हुआ—विहारी लाल जी सदैव कलियुग के दानियों की निन्दा करते रहे यथा "तुमहूं कान्ह मनो भये आजु कालिह के दानि" परन्तु यह न विचार किया कि हमारे ही समकालीन भूषण कवि किस प्रकार की कविता करने से किस स्थान को पहुँच गये हैं? अस्तु—

(२) शिव सिंह सरोज तथा अन्य पुस्तकों में इन महाशय के बनाए हुए चार ग्रन्थों के नाम दिये हुये है अर्थात् शिवराज भूषण

भूषण हजारा, भूषण उल्लास, भूषण उल्लास—इनमें से तीन अंतिम ग्रन्थों को अद्यावधि मुद्रण का सौभाग्य प्राप्त नहीं हुवा है और न हमको स्वंय इन में से निसी के अवलोकन करने का सौभाग्य प्राप्त है—प्रथम पुस्तक के भी अभी तक हमने केवल तीन मुद्रण देखें हैं एक मुंशी नवल किशोर सी आई. ई. के यन्त्रालय में प्रकाशित, द्वितीय श्री वेंकटेश्वर प्रेस में और तृतीय वंग वासी प्रेस में मुद्रित—इस तृतीय प्रति में शिवराज भूषण को छोड़ तीन ग्रन्थ और छपे हैं अर्थात, श्री शिवाबावनी, श्री छत्रशाल दशक, और फुटकल छन्द—इन तीनों प्रतियों में से वेंकटेश्वर वाली प्रति इस समय हमारे पास वर्त्तमान नहीं है—शेष दोनों प्रतियों में दुर्भाग्य वश कुछ कुछ अशुद्धियां रह गई हैं विशेष करके वंगवासी वाली प्रति में इतनी त्रुटियां हैं और छन्दों के चरणों में इतने अक्षर घट वढ गये हैं कि ग्रन्थ का पढना एक अत्यन्त कठिन विषय है यदि हमारे पास एक शुद्ध हस्त लिखित प्रति न होती तो इस लेख के लिखने में अधिक कठिनता पड़ती—यथापि वंगवासी ने भी यह नहीं लिखा है कि शिवाबावनी अथवा छत्र शाल दशक भूषण के पृथक ग्रन्थ हैं तथापि यह प्रश्न अवश्य उठता है कि ये ग्रन्थ अन्य ग्रन्थों से संग्रहीत होकर बने हैं अथवा स्वतन्त्र है—एक यह भी प्रश्न है कि शिव सिंह के कहे हुये उपर्युक्त चार ग्रन्थों के रचविता भूषण है या नहीं इस प्रश्न के उठने का कारण यह है कि किसी महाशय ने भूषण के चार ग्रन्थ होने का कोई कारण नहीं दिया केवल यही कह दिया कि चार ग्रन्थ हैं—यदि वह कह देते कि हम ने चार ग्रन्थ देखे हैं अथवा उनका प्रस्तुत होना किसी स्थान पर सुना है तो स्यात् उनका कथन अधिक प्रमाणनीय होता—साहित्याचार्य पंडित अम्बिका दत्त व्यास ने जो जांच परताल विहारी के

विषय की है वही रीति अन्य महाशयों के लिये नमूना है—बाबू राधाकृष्ण दास का " कविवर विहारी लाल " नामक ग्रन्थ पढ़ कर हमको कुछ कुछ विश्वास हो चला था कि विहारी केशवदास के पुत्र थे परन्तु व्यास जी की छान वीन देख कर निश्चय हो गया कि ऐसा नहीं है—अस्तु—

(क) प्रथम प्रश्न पर ऐसा अनुमान होता है कि ये दोनों ग्रन्थ स्वतन्त्र नहीं है बरन भूषण के अन्य ग्रन्थों से संगृहीत हुये है—छत्रशाल दशक में जितने छन्द हैं अत्यन्त चित्ताकर्षक हैं तब यह कैसे हो सकता है कि इन्हों ने शिवाजी के यश में कुछ अनुत्तम छंद बनाये परन्तु छत्रशाल के यश कीर्त्तन में एक भी अनुत्तम छन्द न कहा ? फिर कोई भूषण महाराज की श्रेणी का कवि सब छन्द एक प्रबन्ध में उत्तम ही उत्तम कैसे कह सकता है ? हमारा मत्त है कि छत्रशाल के छन्द इन्होंने बहुत से बनाए हैं और उन में से छांट कर ये चुने चुने छन्द और लोगों ने इस ग्रन्थ में रख दिये हैं—श्री शिवाबावनी के विषय बहुत लोगों का यह भी मत है कि जब भूषण पहेले पहेल शिवाजी के पास गये और उन्हें " इन्द्र जिमि जम्भ " वाला छन्द सुनाया तब परम प्रसन्न हो कर उन्हों ने कहा " फिर कहो " इस पर भूषण ने एक अन्य छन्द पढ़ा, पुन. " फिर कहो " की आज्ञा पाकर एक और छन्द सुनाया इस प्रकार एक एक करके ५२ बार ५२ छन्द पढके वे थक गये वही ये ५२ छंद शिवराज बावनी के नाम से विदित हुए—यह मत किसी अंश में शुद्ध नहीं है—कारण यह कि इस ग्रन्थ में करनाटक की चढ़ाई का भी वर्णन है जो सन् १६७८ ई० के लग भग हुई थी—अतः इस मता नुसार यह सिद्ध होता है कि भूषण पहले पहल शिवाजी

के यहां सन् १६७८ ई० के पश्चात गये थे परन्तु वे स्वय लिखते है कि उन्होंने सन् १६७४ ई० में शिवराज भूषण ग्रन्थ समाप्त किया फिर इस बावनी में एक छन्द सलंकियों की प्रशंसा में भी कहा गया है—यदि यह शिवाजी को सुनाई गई थी और उन्हीं के यश कीर्त्तन में बनी थी तो यह छन्द इस में कैसे आ गया? इस के स्वतन्त्र ग्रन्थ होने के विरुद्ध यह प्रमाण है कि इस की वन्दना वाला छन्द ही शिवराज भूषण से लिया गया है और दो एक छन्द और भी ऐसे ही है फिर इस में आद्योपान्त कोई प्रबन्ध नहीं वर्णित है—किसी ग्रन्थकार ने इन्हें स्वतन्त्र ग्रन्थ कहा भी नहीं है।

(ख) द्वितीय प्रश्न के विषय में हमारा यह सिद्धान्त है कि यह तो अभी हम नहीं कह सकते कि भूषण महाराज के कौन कौन ग्रन्थ और हैं परन्तु इतना अवश्य कहेंगे कि इनके कुछ अन्य ग्रन्थ निर्म्मित अवश्य हुए थे-इस ग्रन्थ के पुष्टिकर कई कारण है जो नीचे लिखे जाते है

—० इन महाराज ने शिवाजी के राज्याभिषेक के वर्णन में जो सन् १६७४ ई० में हुवा था एक भी छन्द नहीं लिखाया यों कहें कि इन के प्रस्तुत ग्रन्थों में ऐसा एक भी छन्द नहीं है—यदि यह कहें कि ये महाशय युद्ध काव्य में ही आनन्दित होते थे और साज सामान का वर्णन नहीं कर सकते थे तो हमारा कथन असत्य होगा क्योंकि इन्ही ने राज गढ़ का बड़ा ही उत्तम वर्णन किया है—यदि कहा जाय कि ये उस समय अपने देश चले गये होंगे सोभी नहीं प्रमाणित हो सक्ता क्योंकि ऐसे प्रधान उत्सव के समय कवि भला कैसे अनुपस्थित रह सक्ता है? फिर यदि इस असम्भव बात को सम्भव भी मानलें तो लौट कर भूषण ने उसका पूर्ण वृत्तान्त अवश्य

सुना होगा तो क्या वे इस उत्सव के विषय एक भी छन्द न लिखते ? यदि कहैं कि भूषण जी तो शिवराज को सदाही से महा राज और राजाधिराज कहते चले आये थे तो फिर अन्त में उनका राज्याभिषेक कैसे वरणन करते परन्तु यह कथन भी युक्ति संगत नहीं जान पड़ता क्योंकि यद्यपि स्वयं शिवाजी अपने को सदैव से राजा कहते थे तथापि उन्होंने अपना अभिषेक किया-फिर शिवाजी ने यह अभिषेक बड़ी ही धूम धाम से किया था और शास्त्रानुसार जो जो रीति थे उसमें होनी उचित थीं सब कराई थीं तो फिर भूषण उन्हीं के कवि हो कर किसी न किसी प्रकार इसका वरणन कैसे न करते ? क्या यह भी सम्भव है कि कोई मनुष्य आज तक का इतिहास वरणन करने बैठे और विशेष करके कवि और फिर भी दिल्ली दरबार का नाम तक न ले—यह तो निश्चय है कि भूषण उस समय जीवित थे क्योंकि सन् १६७८ ई० वाली करनाटक की चढाई का वरणन इन्होंने किया है—जब यह असम्भव है कि इन्हों ने अभिषेक का वरणन न किया हो तो अवश्यमेव इन्हों ने किसी ग्रन्थ में उस का वरणन किया होगा जो ग्रन्थ अभी तक हम को नहीं मिला है

८० इन महाशय ने कितनी ही ऐसी घटनाओं को अपने ग्रन्थों में समावेश नहीं किया है कि यदि इनके अन्य ग्रन्थों को प्रस्तुत होना न मानें तो आश्चर्य सागर में मग्न होना पड़ेगा—इसी प्रकार उस समय के कितने ही प्रसिद्ध प्रसिद्ध व्यक्तियों का नाम इनके प्रस्तुत ग्रन्थों में नहीं आया है-यथा 'चौथ' एंव सरदेशमुखी का नाम इन के ग्रन्थों में नहीं आया है इसी प्रकार छत्रसाल और शिवाजी के साक्षात्कार का वरणन इनके प्रस्तुत ग्रन्थों में नहीं है

इन के ग्रन्थों में शिवाजी के अनुयायी युद्ध करताओं का नाम नहीं लिखा है यहां तक कि गुरुवर श्री रामदास जी तथा कविवर श्री तुकाराम जी तक का वरणन नहीं मिलता है—शम्भा जी के सब से प्रधान कृपा पात्र कुलूष नामक एक कान्य कुब्ज ब्राह्मण थे जिनको औरंगजेब ने पकड़ कर मरवा डाला था-भूषण स्वयं कान्यकुब्ज ब्राह्मण थे तथापि इनके किसी छन्द में कुलूष का वर्णन नहीं है-शिवाजी के शील गुण बनाने में उनके पालक दादा जी सोन देव तथा उनकी माता जीजी बाई का बड़ा प्रभाव पड़ा था तथापि भूषण जी के किसी छन्द में इन में से किसी का वर्णन नहीं है-ऐसा सम्भव नहीं है कि कोई व्यक्ति ब्राह्मण होकर महात्मा रामदास का वर्णन न करें अथवा कवि होकर मराठी कवियों के शिर मौर तुकाराम जी का नाम तक न ले—

इन सब बातों से स्पष्टतया विदित होता है कि इन महाशय के कई ग्रन्थ देखने का अभी हम लोगों को सौभाग्य नहीं प्राप्त हुवा है—(विदित हो कि हमने इस कारणावली में सब के सब अन्तरंग प्रमाण दिए हैं वहिरंग एक भी नहीं दिया है—' अन्तरंग प्रमाण ' उन्हें कहते हैं जो उसी ग्रन्थ से निकलते हैं और ' वहिरंग उन्हें जो किसी अन्य ग्रन्थ से या किसी दूसरे प्रकार से विदित हो हमारे किसी वहिरंग प्रमाण (*Ekternal Evidence*) न देने का कारण यही है कि प्रायः ऐसे प्रमाण हमें बहुत कम ज्ञात रहते हैं और अन्य कई प्रस्तुत लेखक गण जो विषयों की छान बीन में अपना समय अधिक देते हैं वहिरंग प्रमाण हम से कहीं अच्छे दे सकते हैं) (क्रमश)

सूचना

अजमेर में मनीषि (?) समर्थदान जी का एक "राजस्थान-समाचार" प्रेस है। उसी से राजस्थान-समाचार नामक अर्धसाप्ताहिक पत्र निकलता है। उस प्रेस की कृपा से समालोचक का दिसम्बर का अङ्क न निकल सका। कापी प्रेस में नवम्बर के मध्य में दी गई थी, और आशा की जाती है कि दिसम्बर का समालोचक अप्रैल में निकल सके। लाचार हमने यह युग्म संख्या अन्यत्र जलदी से छपवाई। भविष्यत् में समय पर निकलने का पूरा प्रबंध कर दिया गया है। खेद का विषय है कि "व्यय" नामक क्रमिक लेख भी न छप सका।

मूल्यादि

समालोचक का अग्रिम वार्षिक मूल्य १॥) एक संख्या का ≡) विज्ञापन प्रति प्रकाशन प्रति पंक्ति =) एक पृष्ठ बारह प्रकाशनों में २०) उधार का हिसाब नहीं।

तकाजा

ग्राहक मूल्य भेजते जांय, अथवा वी पी स्वीकार करें। वी पी का लौटाना बड़ा गर्हित काम है, और उसकी फलस्वरुप अप्रतिष्ठा से सभी लोगों को बचना चाहिए।

REGISTERED NO J 25.

क्षमाप्रार्थना

बाबू अयोध्याप्रसाद ने नारायण पांडे के विषयों में जो पैम्फलेट निकाला था, उस पर पांडे जी के मानहानिक मुकद्दमा दायर करने पर बाबू साहेब ने जन्ट मजिष्टर इमर्सन साहब के इजलास में क्षमा मागली। अच्छा हुआ।

धन्यवाद

दूर दूर से समालोचक की स्तुति हो रही है। इन सब उदार महानुभावों को हम हार्दिक धन्यवाद देते है और दिसम्बर की संख्या में जो लिखा है वही उद्धृत करते है कि "इस प्रतिष्ठा का निभाना उन्हीं सब महोदयों के हाथ है"

एक और बात

अब के फार्मों की कमी देखकर पाठक घबड़ांए नहीं। गत तीन मास मे हम नियत से अधिक पृष्ठ देते आए है। भविष्यत में भी हम इसी मूल्य मे आकार वृद्धि करने का यत्न करते रहेंगे।

उत्सव
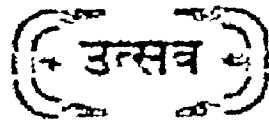
हमारी चक्षुष्य नागरीप्रचारिणी सभा का शुभ गृहप्रवेशोत्सव ता० १८ फरवरी को है जिस में छोटे लाट्ट्रश पधारेंगे। साथ में विशेष अधिवेशन में भाषा सम्बन्धी कई प्रश्नों का विचार भी होगा चश्मे बद्दा दूर!!!

REGISTERED NO J 25

समालोचक

भाग २] —मासिकपुस्तक— [संख्या २०, २१

वार्षिक मूल्य १॥)] मार्च अपरैल १९०४ [यहसंख्या।=)

विषय

प्रोप्राइटर और प्रकाशक।

मिष्टर जैन वैद्य, जौहरी बाज़ार, जयपुर।

PRINTED AT THE SIDHESWAR PRESS BENARES

प्राप्तिस्वीकार

पण्डित गौरी शङ्कर हीराचन्द ओझा	टाड़ का जीवन चरित्र
बाबू राधाकृष्ण दास	भारतेन्दु का जीवन चरित्र
पण्डित केशवराम भट्ट	हिन्दी व्याकरण
पण्डित भुवनेश्वर मिश्र	बलवन्त भूमिहार
पण्डित गणपति जानकी राम दुबे, बी. ए.	मनोविज्ञान
मुन्शी देवीप्रसाद मुन्सिफ, जोधपुर	जन्तरी १९०४ (लिथो दिल्लीदरबार का वृत्तान्त है। तिथि और उत्सव ठीक लगाए है)
मनोरञ्जक ग्रन्थ प्रसारक मण्डली	नवयुग (मराठी उपन्यास)
पण्डित किशोरीलालगोस्वामी	मस्तानी
नारायण पांडे बी. ए	कचहरी कोश ('ए' अक्षर के अंग्रेजी शब्दों के हिन्दी अर्थ देने का यत्न। परिश्रमसे काम पूरा होने पर इस पर कुछ लिखा जा सकता है। नागरी प्रचारिणी सभा इसे छपाने वाली थी न ?)

उपहार

मई मास में जो महाशय समालोचक के सब से अधिक ग्राहक बनावेंगे उन्हे प्रसिद्ध ग्रन्थ भारतभ्रमण का प्रथम भाग और उनसे कम बनावेंगे उन्हें उसी ग्रन्थका पञ्चम खण्ड उपहार दिया जायगा और उनके नाम धन्यवाद पूर्वक समालोचकमे छाप जायँगे।

वी पी लौटानेवाले महाशयोंको हम धन्यवाद उसी संख्या में देंगे जिसमें मूल्य दे देने वाले सज्जनोंके नाम निकलेंगे।

समालोचक

२ भाग } मार्च, अप्रैल { २०, २१ संख्या
१९०४

भारत बारह मासा ।

लाग्यो असाढ़ सुहावना सब देस मिलि आनँद करैं ।
योरप, अमेरिक, फ्रांस, जर्मन मोद जियमें नहिं धरैं ॥
इक हम अभागे देसभर के वैठिके रोवत रहैं ।
नहिं काम कोउ करनो हमैं वास व्यर्थ दिन खोवत रहैं ॥
आयो सुसावन मन वढावन सवहि के आनँद भयो ।
घनगरज चमकन विज्जुकी अंधियारचारहुदिसिछयो ॥
सो चमक गरज गँभीर मो कहँ अतिहि हाय डरावहीं ।
भए नारि सम डरपत रहैं धिरज न हियमें लावहीं ॥
भादों लग्यो आधो भयो मन कौन विधि जीवन धरैं ?
इक तो रह्यो अँधियार मो मन और चहुदिसि घूमरैं ॥
जहँ वोलते दादुर पपिहा मेरा सव मन मोहते ।
अव रटत आठहु जाम उल्लू अतिहि सुन्दर सोहते ॥

आयो कुआर तुषार लाग्यो पास कपड़ा हू नहीं ।
जब देहिं भिच्छा यूरपी तव काम कछु चलिहै कहीं ॥
अब और कछु बाकि नहिं इक नामही बस बचि रह्यो ।
करि श्राद्ध पितरन याद करि अँग अंग शोकानल दह्यो ॥
कातिक पुनीत लग्यो महा दीपावली हू आगई ।
करि याद पिछले दिनन के वे सुख सवै आनँदमई ॥
अब कहाँ धनतेरस रही बचि ? हारि जूआमें गए ।
अब बालिकै तन आपनो दीपावली हमही भए ॥
अगहन महिना गहन सों लगि नास हमरो सब भयो ।
वह तेज वह उँजियार सबही एक छिनमें नसि गयो ॥
अचरज ! भए गोरे सुराहु औ चन्द्रमा कालो भयो ।
अब भीख माँगत देस सबही दानमें धनवल गयो ॥
अब पूस आयो रूस आयो सुनत जिय औरहु डर्‌यो ।
थोडो वहुत जो कछु बच्यो इन आगमन सोऊ जर्‌यो ॥
जानूँ नहीं क्यों रूस बैठे श्यामसुन्दर मोहना ।
भए हूस हम खंडहर भयो सब देस सुन्दर सोहना ॥
माघ मास बसन्त आयो हम वसन्त निजै भए ।
खोइ सब धन मान विद्या फूलिकै उमगे नए ॥
पतझार धन को होइगो अरु पीयरे सब अँग भए ।
अरु आम से बौरे हमीं दुख रोग चारहु दिसि छए ॥

फागुन लग्यो आगुन लग्यो हिय आइ होली सिर चढी ।
लहू टपकन लगे आँखन मनु नदी रँगकीबढी ॥
रह्यो जो कछु बच्यो थोरो सोऊ सब इकठा कर्‍यो ।
झोंकि होलीकामें दियो तेहि एक छनमें सब जर्‍यो ॥
चैत लाग्यो चेत नहिं जिय तनिकहूँ अजहूँ भयो ।
वीरता साहस पराक्रम द्रव्य सबहि नसि गयो ॥
अब बच्यो नहिं कछु पास सबहीखोइ बैठे हाय हम ।
जानूँ नहीं अब का रह्यो जासौं अजहुँ नहिं लेत जम ॥
वैसाखमैं ग्रीषम लग्यो गरमी चहूँ दिसि छै गई ।
का करूँ कैसे जीव राखूँ दुःख मय काया भई ॥
मोहि छोडि करुना नाथ हरि नहिं जानिए कितकौं गए ।
भजि भूत प्रेत,रु सीतला, वैसाखनन्दन हम भए ॥
जेठमैं दूनो भयो दिन कटत कौनहु विधि नहीं ।
जग ढूँढि डार्‍यो मिल्यो नहिं साँचो कोऊ साथी कहीं ॥
ग्रीषम जरावै तनहिं मनको हाय शोकानल दहै ।
हाय नहिं कोउ मीत निज मन वेदना कासों कहै ॥
इमि रोइ बारहमास जिय भरि हरिकै चुप ह्वै रह्यो ।
समुझि अपुनो मीत भल सन्तोष अति गाढ गह्यो ॥
राजधन ऐश्वर्य बल सब भाँतिसो भूलत भयो ।
हाय आपुहि भूलिकै यह दास भारत बनि गयो ॥

श्रीराधाकृष्णदास ।

अत्र, तत्र, सर्वत्र ।

भाषा की भाषा —सरकार तो हिन्दी उर्दूमें अक्षर मात्र का भेद रखना चाहती है ही, किन्तु युक्त प्रान्त के कई सुयोग्य मनुष्यभी उधर झुकते दिखाई देते हैं। प० किशोरी लाल गोस्वामी ने, चन्द्रकान्ताकारकी तरह, शिवप्रसादी हिन्दी के झण्डे के नीचे खडा होना स्वीकार किया है। बाबू अयोध्याप्रसाद, पण्डित लक्ष्मीशङ्करमिश्र, और लाला सीताराम बी ए. भी हिन्दी के मुन्शी स्टाइलकी ओर झुके हुए हैं। नागरीप्रचारणी सभा के विशेष अधिवेशन में सभापति के आसन से वाग्मिवर पण्डित मालवीय ने भी सरल, और ठेठ हिन्दी की बहुतही स्तुति की। लोग इससे पण्डितजी को भी उर्दूमय हिन्दीका पक्षपाती न समझें, उनका यह कथन अर्थ वाद ही था, क्योंकि उनके भाषण की भाषा असल और पवित्र हिन्दी थी। नागरीप्रचारिणी सभा ने अपने एड्रेसमें भी अपने को "उच्च हिन्दी के पक्षपाती नहीं है" कह कर पालिसी चली है, किन्तु सरलहृदय लोगों के मनमें इससे धोखा हो सकता है। लोग पालिसी में चाहे कुछ कह जांय, किन्तु अपनी लेखिनी की गतिको नहीं बदल सकते। पवित्र हिन्दी के कुएं का सोता सदा संस्कृत ही रहेगा। एक बात और बड़ी मज़ेदार है। बङ्गभाषा के वैयाकरण संस्कृतकी भरमार का सदा विरोध करते आए हैं। हिन्दी वालेभी ठेठ और तदभव शब्दोंके पक्षपाती रहे

हैं। मराठी लेखक भी 'देशज' पदों की स्तुति किया करते हैं। फिर क्या कारण है कि तीनों भाषाए संस्कृत से पेट भर शब्द लिए जाती हैं ? इसका कारण ढूँढने को दूर नहीं जाना होगा। इन भाषाओं की नैसर्गिक प्रवृत्ति संस्कृत की ओर है, और बच्चे को माताका दूध छुड़ा कर "मैलन्स फुड" पर पालना कदापि ठीक नहीं होगा।

* * * *

काशी के पण्डित (२) काशी में कितना अनुपयुक्त और दुरुपयुक्त सामान है, इसका जानना बहुत सहज है। आ-जकल जब सरकार और कृत विद्य देशियों की दृष्टि इस ओर है, तो हिन्दी हिन्दूसंस्कृत युनिवर्सिटी का प्रस्ताव उतना असम्भव नहीं मालूम पडता। सभाभवन खोलने के समय लाटूश साहब ने मध्यम परीक्षा पास करके आचार्य के लिए पढने वाले अंगरेजी जानने वाले छात्रों को २५) मासिक देना प्रतिश्रुत किया है। आचार्य निपुण छात्रों को भी पांच वा तीन वर्ष विद्या भ्यास के लिए १००) वा १५०) प्रतिमास देने की आशा दिलाई है। साथही एक अच्छे बोर्डिङ्ग की आवश्यकता भी जतलाई है। काशी में कई राजाओं के विशाल मकान खाली पडे हैं जिन में प्रत्येक में ५०। ६० छात्र रह सकते हैं और जिन में नेपाल, दीघापटिया, दरभङ्गा, ग्वालियर, इन्दोर, मेवाड और जयपुर के भवन मुख्य हैं। इनमें से प्रत्येकको आक्सफोर्ड के होस्टलों के स-मान छात्रावास बना कर एक धार्मिक ग्रेजुएट और एक पट्शास्त्री को उसका अध्यक्ष बनाया जाय। उन सत्रों को भी, जिनमें सह-

स्त्राधीश भी मुफ्त की खीर उडाते हैं, इन के अधीन किया जाय। विद्यार्थियों को लट्ठ चलाना और कुश्ती करना आवश्यक हो। अवश्यही यात्रियके हल्ले और 'रांड सांड सीढ़ी सन्यासी' से इनमें रहने वाले छात्रों को विक्षेप पडेंगे, किन्तु जब तक विपुल धन सम्पत्ति से गङ्गातट में हिन्दू यूनिवर्सिटी का शान्ताश्रम स्थापन न हो, तब तक इन स्थानों को भी कब्जे में लेना चाहिए। ये सब होस्टल आक्सफोर्ड के कालेजों की तरह काशी की पाठशालाओं को अन्तर्भूत करके पढावें भी, और सस्कृत कालेज से पढें और पदवियां भी पावें। काशी की पण्डित मण्डली भी अब नई बातों से उतनी घृणा नहीं करती और प्रबन्ध से नहीं चिढ़ती। उनके द्वाराही पूर्व पश्चिम का सम्मिलन होना चाहिए।

*　　*　　*　　*

चतुर्भाषी—जिस पत्र की बात से हम पुलकित हुए थे, वह कदाचित् कथा शेष हो गया "दूरसे आए थे साकी! सुन के मैखाने को हम। बस तरसतेही चले अफसोस! पैमाने को हम"।

*　　*　　*　　*

सहयोगिसाहित्य—नागरी प्रचारणी सभा के एक पुराने अधिवेशन में बाबू श्यामसुन्दर दास ने ठीक ही कहाथा कि यूनिवर्सिटीबिल पर हिन्दी सम्पादकों ने अपनी स्वतन्त्र राय यों न लिखी कि कदाचित् उनमें से किसी को भी विश्वविद्यालय में पैरर खने का सौभाग्य न मिला हो। ऐसे सम्पादकों के लिए रूस जापान का युद्ध मानो ईश्वर ने भेजा है, क्योंकि इधर उधर से पत्र को भर कर पुरानी रुखासको पूरा करनेका अच्छा मौका मिलेगा। हितवा

तोंका आकार बदला, किन्तु भाषा नहीं। महामण्डल का विवाद कुछ ढीला पड़ा है, और उसका स्थान, मिसेज बेसन्ट के हिन्दू-कालेज की चर्चाने ले लिया है। हर्षकी बात है कि वेङ्कटेश्वर में एक तिब्बती परिव्राजक ने यात्रा लिखकर हमारे सिरका बोझ उतारा। सत्यवादी का ढग अच्छा है, यदि वह पायदारी करै और चटकै नहीं। डाक विभाग का नया नियम रोचक बिहार बन्धु को १६ पेज का क्यों नहीं कर देता ?

*　　*

नागरी भवन का उत्सव—अभी हिन्दी की कान्फरैन्स का समय नहीं आया है तथापि सभा के उत्सव में जो सहानुभूति और प्रेम दिखाई देरहाथा, उससे भविष्यत् के लिए अच्छी आशाएं होती हैं। बड़े खेद की बात है कि सामयिक पत्रों ने उचित सहानुभूति नहीं दिखाई। सभा के कल्पित दोषों पर चटकने वाले पत्रों के प्रति निधि नहीं आए थे। पण्डित बद्रीनारायण चौधरी की सांवली सूरत और घुँघराले केशोंमे भक्तों को आलेख्य शेष हरिश्चान्द्रजी का दर्शन होता था। सभा के वार्षिक सम्मिलन का विचार किया गया है,और परिश्रमी "गोरे श्याम सांवरी राधे" की युगल मूर्त्ति ने इस उत्सव को अपने और हिन्दी के स्वरूप के योग्य बनाया।

*　　*

दो पदार्थ ऐसे हैं जिनको हम जितना अधिक विचारैं उतना अधिक ही वे मनको नई और बढती हुई भक्ति और आदर से पूरित करते हैं—बाहर का तारामण्डल और भीतर का सदाचार नियम।

कान्ट।

सहयोगिसाहित्य प्रयाग समाचार में "अवला वाला" का "खून" होगया और चाहे सम्पादक का अनुभव काम चलावै, किन्तु पुरानी महिमा नही आई। भारतभगिनी औरों के लेखों की नकल करके कबतक चलेगी ? सरस्वती की नई सख्या बहुत अच्छी आई है और उसमें दो लेख अच्छे होनेके सिवाय मौके के भी हैं-कोरिया और तिलक महाशय के ग्रन्थ का वर्णन। सरकार की पाली नई भाषा को बहुत ठीक मुखन्नस भाषा कहा है। हिन्दी वालों का सम्मिलित जीवन कितना है और कैसा है इसका पूरा पता उस लंगडी चालसे लगताहै, जिससे, भारतमित्र के सिवाय, हिन्दी पत्रोंने काशी की सभाके उत्सव का हाल लिखा है। हम नहीं समझते कि भारतमित्र की नैपोलियन की जीविनी साप्ताहिक पत्र में छपने लायक है। हिन्दी वङ्गवासी होली पर तो अपने पुराने रूप पर आगया, किन्तु अभी कुछ ठीक नहीं बना। ष्टेड साहब के आदर्श दैनिक पत्रके सृष्टि, स्थिति, विनाश को देख हिन्दी के आदर्श पत्र वालोंको अधिक दृढ़ होना चाहिए।

* * *

विश्वविद्यालय बिल। कलकत्ता युनिवर्सिटी के अध्यक्ष के भाषण में लाट साहब ने "अन्तिम विश्वविद्यालय के अन्तिम अध्यक्ष" बनकर विश्वविद्यालयों के मुहमें गङ्गाजल और तुलसी डालही दी है। कहाभी जाता है कि विश्वविद्यालयों ने काम किया है, तोभी उनके बदलने की जरूरत समझी जाती है। उनमें अभी प्राचीनता न होने से मिलित जीवन नही है, तोभी क्यों उन्हे और भी नवीन किया जाता है। उसी दिन

रेल साहबने स्पन्सरकी समालोचाना करके वेलियल कालेज वालों के उथलेपनका प्रमाण दिया और कदाचित् कर्जनी यूनिवर्सिटियों के नए और विरले ग्रेजुएट ऐसी ही अनभिज्ञ स्वयं सतृप्तता वतलावेंगे । सरकारने अपनी शिक्षा पालिसी पर भी वहुत कुछ लिखा है जिसकी वात आगे कहगे । गोपन विधिका सा विरोध इसका होना ही नही और भाण्डारकर के भाण्डार की मोहर वन्द है, इससे आश्चार्य नही कि यह विल, अपने स्वरूप में इन टिप्पणियों के प्रकाश होनेके पहले ही वज्रलेप होजाय और वृटिश राज्यकी सर्व प्रधान नियामत शिक्षा का मार्ग सकडा करने लगै ।

* * *

डाक्टर महेन्द्रलाल सरकार—वैज्ञानिकों, और लेखकों मे वेन, हर्वर्ट स्पेन्सर, मोम्सेन, लीकी और लेस्ली ष्टिफन को इस वर्ष जगत खो चुका है । भारत वर्ष को एक ऐसे मनुष्यका भी शोक है जो न केवल वैज्ञानिकही था, किन्तु जिसके जीवन का परम यत्न इस अर्धशिक्षित देशमें विज्ञान का प्रचार रहा । डाक्टर सरकार उस समय के मनुष्य थे, जव असन्तुष्ट वी० ए० से घृणा न थी इससे उनने उचित सम्मान पाया । उनने विज्ञान की शिक्षाके विस्तार के लिए जो यन्त्रालय स्थापन किया है उसमें उपाधि के लोभियों ने चान्दा नही दिया, तोभी वह भारतवर्ष में प्रथम होकर भी जर्मनी के सव से भद्दे यन्त्रालय सेभी भद्दा है । कुछ वर्ष हुए, उनने वडे हृदय विदारक स्वरमें अपने उद्योगकी निष्फलता स्वीकार की थी । गतवर्ष जव विश्वविद्यालय कमीशन

के उलटे प्रस्तावोने देशको हिला डाला था, उनने यह उद्गार निकाला था—

"मैने कई वार कहा है कि बृटिश राज्यमें हम अपने राज्य से स्वतन्त्रता, काम और विचार की स्वाधीनता, अधिक भोग रहे हैं। किन्तु हा! बृटिश राज्यके सवसे वड़े वर इस स्वतन्त्रता को इस तरह टूटने की धमकी पाते हुए देखने को मैं जीता रहा! यह कहते मेरा कलेजा फटता है कि कमीशन के प्रस्ताव साधारण शिक्षा की जड़ काटते और विज्ञान की शिक्षा को निरुत्साह देते दिखाई देते हैं"। भाग्यवान् थे, के कमीशन के यत्नोंके फल को देखने के पहले ही वहां चले गए जहां सब विज्ञानों का विज्ञेय विराजता है और जहां की वैज्ञानिक शिक्षा को कोई नही धमका सकता। डाक्टर प्रफुलचन्द्र राय और जगदीश वसु को उन का चोगा उठाकर साइन्टिफिक एसोसिएशनको पूरा वनाने का यत्न करना चाहिए।

* * * *

उपन्यास और कहानियों के लेखक पाठकों की दूनी हानि करते हैं, उनका रुपया भी नष्ट करते हैं और समय भी। मनुष्य, चाल और चीजों को ऐसा बनाते हैं जैसे वे कभी न थीं, न होगीं। उपन्यास या तो सत्य और इतिहास को मरोड़ते हैं वा नाश करते हैं, मन को फुला देते हैं, वा बुद्धिपर अत्याचार करते हैं।

लेडी मान्टेग।

* * * *

हिन्दी के ग्रन्थकार (१)

कविरनुहरति च्छायां, कुकविः शब्दं, पदानि चाण्डालः ।
अखिलप्रबन्धहर्त्रे साहसकर्त्रे नमस्तुभ्यम्[१] ॥

(उद्भट)

गत आश्विन महीने के "प्रवासी" में "हिन्दी सामयिक साहित्य" इस नाम के एक लेख को पढ़ कर हिन्दी साहित्य के सम्बन्ध में दो दो बातें कहने की मुझे भी इच्छा हुई। उक्त प्रबन्ध के लेखक महाशय एक स्थान पर लिखते हैं "अनुवाद करने में कुछ बुराई नहीं है। किन्तु बंगला मूल ग्रन्थ के लेखक वा स्वत्वाधिकारी की अनुमति न लेकर हिन्दी में अनुवाद करने की प्रथा हमलोगों ने देखी भी है और बहुधा ऐसा कार्य्य करने वालों को सावधान भी कर दिया है।"

ग्रन्थ लेखक की आज्ञा न लेकर अनुवाद करना तो आधुनिक हिन्दी लेखकों को एक ऐसा रोग हो गया है कि जिसकी कोई दवा नहीं मिलती। किसी तीव्र औषधि का प्रयोग न होने के कारण व्याधि भी दिन दिन बढ़ती जाती है। बंगभाषा के भण्डार से चोरी कर के ही इन लोगों की ग्रन्थकार कहलाने की विकट लालसा पूर्ण हो रही है।

मैं अनुमान करती हूं कि परलोक वासी बाबू गदाधर सिंह

१—कवि छाया लेते हैं, कुकवि शब्दों को, और चण्डाल पदों को उड़ाते हैं। जो सारे प्रबन्ध ही को उड़ा लें, उस साहसकर्त्ता को प्रणाम है।

बंगला के पहले अनुवादक कहे जासकते हैं। उन्होंने पहले 'कादंबरी' उसके पीछे "दुर्गेश-नन्दिनी" और उसके पीछे "बंग विजेता" का अनुवाद किया था। इन तीनों पुस्तकों में ग्रन्थ कर्ताओं का नाम है, और "बंगविजेता" का "निवेदन" पाठ करने से तो मन में बड़ाही आनन्द उदय होता है। स्वर्गीय भारतेन्दु महाशय के अनुवादित बंकिम बाबू के दो एक उपन्यास देखे हैं उन में ग्रन्थ कर्त्ता का नाम आदर से दिया गया है। किन्तु उनके फुफेरे भाई साहब ने "स्वर्णलता" के अनुवाद में[२] ग्रन्थ लेखक का नाम नहीं दिया है। यही हाल 'मरता क्या न करता' का है। किन्तु हर्ष का विषय है उक्त बाबूसाहब ने खड्गविलास प्रेस से प्रकाशित दुर्गेश नन्दिनी में बंकिमबाबू का नाम बड़ी उदारता से शीर्षस्थान में दिया है। अवश्यही मैं यह नहीं कहती हूं कि हिन्दीके सब आधुनिक लेखकही हीन चरित्र के मनुष्य है। कितनेही लेखक ऐसे हैं जो इस भांति चोरी करने से घृणा करते हैं। काशी के "भारत जीवन" के सम्पादक महाशय की अनुवादित कई एक पुस्तकें हमने देखी है उनमें एक "पद्मावती" को छोड़ और सभी में मूल ग्रन्थलेखकों के नाम है। "सरोजिनी" को छपवा कर और "चातकिनी" को अनुवादित करके साहित्य समाज से इन्हें बहुत गालियां सहनी पड़ी है। गाजीपुर बासी मुन्शी उदितनारायण जी की अनुवादित "सती नाटक" "दीप निर्वाण" "अश्रुमती" "जीवन सन्ध्या" यह चार पुस्तकें देखी हैं, इनमें मूल लेखक और लेखिकाओं के नाम दिये गये है। "अश्रुमती" के लिये इन्हें भी बहुत कुछ चोट सहनी पड़ी

---

(२) मूल ग्रन्थ के प्रथम और द्वितीय संस्करणों में भी ग्रन्थ कार का नाम नहीं है। सुनते है, भारतेन्दु जी ने आज्ञा लेली थी।

है। काशी निवासी एक प्रवीण साहित्यसेवी के अनुवादित पाच उपन्यास " मधु मालती " " इला " " प्रमीला "दलितकुसुम" और "कुलटा" देखे है ।इन सभों में दलितकुसुम और कुलटा के व्यतिरिक्त लेखकों के नाम तो दिये ही नहीं गये, पर " परिमल " को बदल कर " प्रमीला " कर दिया गया है। मे आशा करती हूं कि अनुवादक महाशय ने ग्रन्थ कर्त्ताओं से आज्ञा अवश्यही लेली होगी क्योंकि वह हिन्दी साहित्य के दूरदर्शी लेखक हैं; उनके द्वारा ऐसे काम के होने को सम्भावना नहीं है। इस स्थान पर खेद के साथ कहती हू कि अनुवादक महाशय रचित " दीनानाथ " उपन्यास भी बंगला ही के आधार पर लिखा गया है। बङ्गला उपन्यास " अदृष्ट " और वङ्गला मासिक पत्र " साहित्य " में प्रकाशित " दादार काण्ड " नामक कहानी की छाया लेकर " दीनानाथ " की सृष्टि हुई है, यह बात मैं जोर देकर कह सकती हूं। किन्तु " दीनानाथ " में कहीं इस बात का पता नहीं लगता। सरस्वती में " दामोदरराव की आत्मकहानी " में भी यह बात पचाई गई है कि वह बंगला " झांशीर राजकुमार "की उपजीविनी है। हां " महाराष्ट्र जाति का अभ्युदय " तो लेखक की आज्ञा से कृतज्ञता पूर्वक लिखा गया है। सरस्वती में " रोशनआरा " भी योंही नगेन्द्रनाथगुप्त के ग्रन्थ (गल्पावली) से लिखा गया है।

पण्डित शिवनाथ शास्त्री महाशय के "मेजवौ"का अनुवाद देखा है, अनुवादक ने उसका नाम " सास पतोहू " रक्खा है। इन्ही का अनुवादित " माधवी कंकण " भी देखा है। इन दोनों में लेखकों का नाम नदारद। बंगला उपन्यास " उदासिनी राजकन्यार गुप्त कथा " को कुछ उलट फेर कर अनुवादकजी ने " भानुमती " लिखा है और वे उसे स्वरचित कहते जराभी नहीं सकुचाते। इनकी

रचित " देवरानी जिठानी " पढने से भी यह ज्ञात होता है कि वह भी वंगभाषा के किसी पुस्तक का अनुवाद है। "डवल बीवी" तथा " बड़ाभाई " भी ऐसाही है। "योवने योगनी" तथा " दादा और मै " ग्रन्थकार द्वारा अनुवादित है, सम्पादित नहीं। सुनती हूं कि " जासूस " वंगला का अनुवाद नहीं है। अच्छा, नहीं है ता उस में पात्र पात्रियों तथा गाओं के नाम बँगला क्यों रहते हैं? इससे तो वह कहावत सिद्ध होती है कि "मुरगी तो नहीं खाया पर खोंस लिया "। प्रकाशक को चाहिये कि वंगला नामों को वदल दिया करें।

बंगला "देवीचौधरानी" के मुरादावादी अनुवाद का दर्शन कर चुकी हूं। प्रमथ संस्करण में नाम रहा " प्रफुल्ल "। शायद तब वंकिम वाबू जीवित थे। दूसरे संस्करण का नाम " देवी " हुआ; " चौधरानी " पर अनुवादक जी क्यों रुष्ट हो गये? "अनारकली" भी " साहित्य " कानन की अनारकली है। कलकत्ता निवासी एक चतुरानन ब्राह्मण कुमार रचित " वसन्तमालती " नामक उपन्यास देख चुकी हूं। रचयिता उसे स्वरचित कहते हैं। किन्तु मैं स्पष्ट कहती हूं कि वह वंगभाषा के एक क्षुद्र उपन्यास " धीरेन्द्र विनोदिनी " का अविकल अनुवाद है। इस सम्बन्ध में एक कार्ड उनको लिखा गया था, उन्होंने उसका उत्तर देना शायद अनुचित समझा।

" भारत मित्र " के वर्त्तमान सम्पादक महाशय के अनुवादित

३–मै जहां तक जानती हूं स्वर्गीय वंकिमवाबू की कुल पुस्तकों के हिन्दी अनुवाद का अधिकार खड्गविलास प्रेस के स्वामी ने ले लिया था। न मालूम किस तरह से यह लोग विना अनुमति लिये उनकी पुस्तकें छापने का साहस करते हैं!

दो एक पुस्तकों में भी मूल ग्रन्थकारका नाम नहीं है किन्तु जब उक्त ग्रन्थोंमें बंग भाषाही में मूल ग्रन्थकारका नाम नहीं है तब अनुवादक महाशय कैसे दे सकते थे ? लाला बालमुकुन्द गुप्त महाशय पंजाबी होकर भी बंगभाषा की आलोचना करते हैं यह हर्ष की बात है ।

प्रवासी के प्रबन्ध लेखक ने जिस "सरस्वती" पत्रिका का नाम लिया है उसी की किसी एक संख्या में माइकेल मधुसूदनदत्त लिखित "वीरांगना" काव्य की "शकुन्तला" पत्रिका का अनुवाद प्रकाशित हुआ था, और उस के संग प्रसिद्ध चित्रकार राजा रविवर्म्मा का "शकुन्तला पत्र लेखन" नामक चित्र भी दिया गया था। यों चुप चाप पराई चीज को अपनी करने वाले अनुवादक एक उच्च वंशी 'राजा' उपाधि धारी महाशय हैं ! सुनते हूं कि इस कविता के लिये उन्होंने बहुत कुछ प्रशंसा साहित्य समाज में पाई थी। शायद तब हिन्दी पाठकों को विदित न था की यह बंगला का अनुवाद है। राजा साहब कदाचित् सरलस्वभाव से ही मूल ग्रन्थ का नाम देना भूल गए हों। पीछे मालूम होने पर भी छिपाने की चेष्टा होती थी। उस समय 'नागरी प्रचारिणी" सभा के मन्त्री महाशय "सरस्वती" के सम्पादक थे। उस कविता के छापने के लिये मैं उन्हें कुछ दोष नहीं दे सकती। मन्त्री महाशय "भाषा तत्ववेत्ता" तथा "पुरातत्ववता" भलेही हों; पर बंग भाषा से उनका विशेष सम्बन्ध नहीं है;यह बात उनकी अनुवादित "आलोक चित्रण" की भूमिका में साफ झलकती है। "सरस्वती" के वर्त्तमान सम्पादक द्विवेदीजी महाशय बंगभाषाभिज्ञ होकर भी भूले हैं। निज पत्रिका में माइकेल का संक्षिप्त जीवन चरित्र द्विवेदीजीने प्रकाशित किया था। जब उन्होंने जीवनी लिखी है, तब माइकेल की जीवनी तथा ग्रन्थावली अवश्य पाठ की होगी। अनुवादक राजा साहब का चरित्र भी

" सरस्वती " में प्रकाशित हुआ था। उसमें एक स्थान पर लिखा है राजा साहब की कई एक कविता " सरस्वती " में प्रकाशित हुई है। कौन ? वही " शकुन्तला पत्र लेखन " ही न ? मैं भी "सरस्वती " की एक पाठिका हूं और कोई कविता तो राजा साहब की तब लों नहीं दीख पड़ी थी।

लाला पार्व्वतीनन्दन नाम धारीजा ने भी " सरस्वती " में राजा रविवर्म्मा की जीवनी लिखी थी, उसमें भी कविता को ' ओरिजनल ' मान लिया है। सरस्वती पत्रिकाके मनेजर महाशय तो बंगाली हैं न ? वह वंगभाषा और हिन्दी भाषा दोनों ही की चर्चा रखते है तिस पर भी " शकुन्तला " पत्र लेखन की प्रथम पंक्ति " वन—निवासिनी—दासी नमे राज पदे " ज्योंकी त्यों रहने परभी उसे अनुवाद नहीं जान सके, यह एक सुयोग्य वंगाली साहित्य सेवी के लिए वड़ीही लज्जा की वात है।

आज " शकुन्तला " पत्र का अनुवाद हुआ, कल सारे "वीरांगना काव्य" काही अनुवाद हो जायगा, और वंग साहित्य सेवियों को कुछ खवर भी न होगी। क्या सम्पादकने पत्र का मान वढाने के लिए राजासाहव का लिखा मूल नाम छोड़ दिया ? [४]

हिन्दी पाठकों का सिद्धान्त है कि वंग भाषाके कितनेही उपन्यास अश्लील है। काशी के एक गोस्वामी महाशय का रचित "चपला" नामक एक उपन्यास हालही में प्रकाशित हुआ है। उस "चपला" की चपलता देखने से तो स्त्रियों की वात जाने दीजिये पुरुषों को भी लज्जित होना पडता है। "चपला" चार भागमें समाप्त हुई है

(४) हर्षकी वात है कि ठीक दो वर्ष पीछे राजा साहव ने निज कविता का अनुवाद मान लिया है। और जान्हवी पत्रिका के अनुवाद में माइकेल का नाम दे दिया है।

दो भागदेखकरही हमारे देवता कूँच कर गये। उक्त गोस्वामीजी का एक उपन्यास "तारा" है, जो बंगला "राजसिंह" से बहुत मिलता है। इसमें ग्रन्थकार ने शाहजहां बादशाह की बड़ी शाहजादी जहांनारा से, उसके पिता, और ज्येष्ठ भ्राता, दारा शिकोह से जो घृणित सम्बन्ध स्थापन किया है उस बात को कल्पना में लाने से भी पाप होता है। इतिहास के पाठक मात्रही जानते हैं कि जहांनारा दारा की तरफदारी करती थी। क्या संसार में भ्रातृस्नेह कुछ चीजही नहीं है? कि उसके वश होकर कोई किसी का पक्ष पात न करे?

"तारा" में तो स्त्री जाति मात्र काही अपमान किया गया है। इतने पर भी एक समाचार पत्र ने समालोचना करते समय इसे हिन्दी साहित्य का उज्वल "तारा" कहने में जरा भी संकोच नहीं किया है।

काशी के उपन्यासों के सम्बन्ध में प्रबन्ध लेखक जो कहते हैं मैं भी उसमें सहमत हूं। उन उपन्यासों में क्या अनाप सनाप लिखा जाता है, कुछ समझमें नहीं आता। "ऐयारी" और 'तिलस्म' के जोर से आधुनिक हिन्दी ग्रन्थकार जितने असम्भव हैं सबको सम्भव कर दिखाते हैं। केवल मृत मनुष्य का प्राण दान देने की क्षमता इन लोगो में नहीं है। मालूम होता है कि काशी के 'सुदर्शन' पत्र के स्वत्वाधिकारी महाशय ने ही इस भांति उपन्यास लिखने का मार्ग दिखलाया है। एक लेखक ने उनकी नकल की है, किन्तु धृष्टता से लिखा है कि यह किसी की छाया नहीं है। उसी लता में रत्ननाथ सरशार के लेखों के पृष्ठों के पृष्ठ कुसुम गूंथे गए हैं।

---

* हमारी सम्मति 'चपला' पर सितम्बर की संख्यामें देखिए (सं स)

उसी लेखक ने रिनाल्ड के एक उपन्यास का अनुवाद किया है। किन्तु वडी धृष्टता से उसके तृतीय भाग की भूमिका में इस वात का उल्लेख करके इसका प्रतिवाद किया है। कोई पूछे कि जनाव! यदि यह पुस्तक आपके मगज से निकली है तो " आत्माकेवेचने " का अर्थ आप क्या समझते हैं? यदि अनुवाद नहीं है तो पिशाच को आत्मा देना, भतीजी के विवाह की दल्लाली, कुल कन्याओं का दूषण प्रभृति क्या आपके पुण्य मगजमें विद्यमान थे? इन उपन्यासों के नाम में तो हिन्दी है और काम उर्दू है। इनमें मुसलमानी शब्द इतने रहते हैं कि उसे किसी हिन्दुस्तान की मातृ भाषा कहते लज्जा मालूम होती है*। क्या यह लेखक अपनी जननी वा सहधर्म्मिणी से ऐसी भाषा में वर्तालाप करते हैं? " ऐयारी " के उपन्यासों को छोड़ कर और यदि कोई पुस्तक इन लोगों की स्वरचित है तो वह प्राय. दो चार पृष्ठ से अधिक की नहीं होती।

अन्त में मैं नव्य लेखकों से साविनय निवेदन करती हूं कि वे लोग अपने मस्तिष्क और कल्पना की सहायता से निज भाषा की उन्नति की चेष्टा करें न कि दूसरे के धन से सराफी करने को ही अपना गौरव समझें †

एक प्रवासिनी बङ्गमहिला

* शिवप्रसादी हिन्दी के पक्षपाती ध्यान दें (स. सं.)

† बङ्ग महिला का यह लेख पढकर लज्जा आती है। बङ्गाली लेखक और सत्वाधिकारी अनुवाद की आज्ञा देने में वड़ी हुज्जत करते हैं। अंगरेजी से गुपचुप चीज उड़ाकर उनने हिन्दी वालों को भी यह कर्म सिखाया है। तथापि यह काम वहुत बुरा है, और हिन्दी के लेखक भविष्यत् में उपालम्भ सुनने का काम न किया करें सं०सं०

विद्यापति विल्हण ।

> प्रसन्ना कान्तिहारिण्यो
> नानाश्लेषचमत्कृता ।
> भवन्ति कस्यचित्पुण्यै
> मुखे वाचो गृहे स्त्रिय ॥
>
> भट्ट त्रिविक्रम ।

नाना प्रकार के श्लेषों से चमत्कृत सुन्दर और सरस वाणी बड़ पुण्य से किसीके मुखमें निवास करती है, हर एक के मुखमें नहीं बसती। इसी प्रकार ऐसा स्त्रियां भी विरल ही देख पड़ती हैं जिनके मुखमें मधुर शब्द हों और जो चित्त को प्रसन्न करें। संस्कृत साहित्य के भण्डार में ऐसे बहुत कवि उत्पन्न हुए हैं कि जिनके मुखमें उक्त लक्षण विशिष्ट सरस्वती का निवास था। तौभी ऐसे कवियों की गणना में प्रधान रूप से कालिदास, भारवि, माघ, भवभूति और श्रीहर्ष ही का नाम लिया जाता है। यह सब कवि विलक्षण कवित्वशक्ति और नानाविधविद्याओं के निधान थे, इसमें किसी प्रकार का सन्देह नहीं। इन सबके काव्य और नाटकों का आदर और अध्ययन सब करते चले आते हैं। विद्यापति विल्हण भी उक्त कवियों की श्रेणी में सर्वथा स्थान पाने योग्य विलक्षण कवि हुए हैं। ये प्राचीन कवियोंमें हैं, नवीनोंमेंनहीं, किन्तु इन का नाम हमारे बहुतसे देशी विद्वानों को नहीं ज्ञात है। राजपूतानाके अन्तर्गत जसलमेर नामक स्थान के जैनपुस्तक भाण्डार से परम प्रसिद्ध, विद्यानुरागी, डाक्तर बूलर साहब ने प्राचीन हस्तलिखित "विक्रमाङ्कदेव चरित" नामक काव्यका पुस्तक प्राप्त किया। और उसे बड़ी उत्तम रीति से संशोधन करके "बाम्बे संस्कृत सिरीज" नामक संग्रह में, बहुत दिन हुए, प्रकाशित किया। यह मनोहर काव्य विल्हण कृत है, और इस की सरस और सरल, अनेक उपमा और श्लेष युक्त कविता पढ़कर ऐसा असीम आनन्द मिलता

है, कि उस आनन्द को पकर हम विल्हण को कालिदास नहीं तो उनका अंश कहें तो किसी प्रकार अनुचित न होगा। यह डाकर बूलर ऐसे सच्चे विद्यानुरागियों की कृपा का फल है कि आज हम इस काव्य के रसका आनन्द लेकर कृतार्थ होते हैं, नहीं तो अबतक न मालुम कभी का इस काव्य का कालग्रास हो गया होता।

"विल्हण पञ्चाशिका" इस नाम से ५० श्लोक का एक छोटासा काव्य कहीं कहीं उपलब्ध होता है। किन्तु वह चोर कवि कृत "चौर पञ्चाशिका" नाम सेही इसदेश में अधिक प्रसिद्ध है। "विल्हण पञ्चाशिका" की लिखित पुस्तक में आदि में एक पूर्व पीठिका लिखी है वह किसी आधुनिक विद्वान की लगाई है ऐसा बहुतों का अनुमान है। उसका सारांश इस प्रकार है। गुजरात के राजा वीरसिंह[१] की कन्या चन्द्रलेखा नाम की थी। विल्हण उसके अध्यापक थे।

१ वीरसिंह नाम ठीक है। डाक्तर बूलर वैरिसिंह लिखते है।

कुछ दिन के बाद दोनों में परस्पर प्रेम हो जाने से उनका गन्धर्व विवाह हो गया। राजा ने इस गुप्त विवाह कथा को सुन क्रोधसे अधीर हो विल्हण के शिरच्छेद की आज्ञा दी। विल्हण जब वधस्थान पर लाए गए तब उनने पञ्चाशिका द्वारा अपने हृदयका भाव राजा पर विदित किया। राजाने दूत द्वारा इस पञ्चाशिका को पाया, पढ़कर प्रसन्नता पाई, एवं चन्द्रलेखा को विल्हण के हाथ समर्पित किया। बस इतनीही कथा है, पर यह कथा अनेक रूप में अनेक देशों में प्रचरित है। अनहिलवार नगर का राजा वीरसिंह विल्हण के समय से सौ वर्ष पूर्व राज्य करता था। इस लिए उक्त कथा में विल्हण का नाम होने से यह सब मिथ्या प्रतीत होती है। (See Dr Buhler's Introduction to Vikramankadeva charita P 6-7)

"The name of the king is according to the Ahmadabad Ms वीरसिंह, just as Aufrecht proposes to read for the वैरसिंह of the Oxford Ms. but the correct form of the name is, I think वैरिसिंह, as र and रि are often exchanged in Gujarat Mss and Vairisinh or Berisingh is a common Rajput name (See his Introduction, foot note P 7)

बिल्हण ने विक्रमाङ्कदेवचरित में जो अपना परिचय दिया है उसमें पञ्चाशिका का उल्लेख नहीं किया। एवं चन्द्रलेखा के साथ विवाह का भी कहीं उल्लेख नहीं है। शायद "पञ्चाशिका" चोर कविकृत है और वह चोर कविहमारेकवि बिल्हण से पृथक व्यक्ति हैं। इस लिये पूर्व पीठिका जो जोड़ दी गई है वह सब मिथ्या प्रतीत होती है। चोरपञ्चाशिका के श्लोक अति सरस और सुन्दर हैं इसमें किसी प्रकार का सन्देह नहीं। पढ़ने से ज्ञात होता है किसी सरस सहृदय कवि की रचना है। तौभी विक्रमाङ्कदेवचरित की रचना से उसका सादृश्य नहीं होता। बहुतों को सन्देह है कि बिल्हण कृतही है। पञ्चाशिका के मुद्रित पुस्तक से निम्न श्लोक लिखते हैं।

"अद्यापि तां कनक
चम्पकदामगौरीं
फुल्लार विन्दवदनां
तनुरोम राजिम्।
सुप्तोत्थितां मदन
विह्वल सालसाङ्गीं
विद्यां प्रमादगलिता
मिव चिन्तयामि॥"

इस श्लोक में विद्या नामक रमणी का नाम लिया है, चन्द्रलेखा का नहीं। ज्ञात होता है चोर कवि या और किसी का प्रेम विद्या से था। इस प्रकार इससे बिल्हण का कोई सम्बन्ध नहीं मालूम होता। शार्ङ्गधर पद्धति में पञ्चाशिका बिल्हण के नाम से उद्धृत की गई है। और भोज देव कृत "सरस्वती कण्ठाभरण" में पञ्चाशिका के श्लोक लिखे हैं, परन्तु विक्रमाङ्क देव चरित का एक भी श्लोक नहीं लिखा है। इससे अनुमान होता है कि भोज से चौर कवि प्राचीन था। एवं बिल्हण उसके पीछे के कवि हैं। कुछ भी हो, बिचार से यही स्थिर होता है कि पञ्चाशिका के कर्त्ता चौर कवि या और कोई कवि हैं, बिल्हण नहीं हैं। बिल्हण को उस के साथ मिलाना केवल भ्रम है।

विक्रमाङ्कदेवचरित के आन्तिम १८ वें सर्गमें हमारे काश्मीरक कवि बिल्हण ने अपना परिचय दिया है। इस सर्ग के प्रारम्भ में काश्मीर देशके जल, वायु, नदी पर्वत आदि की उत्तम वर्णना की है। काश्मीरके प्रसिद्ध स्थानों

में "प्रवरपुर" को मुख्य लिखा है। जहां वितस्ता नदी के तरङ्ग मनोहर शोभा देते है। जैसा—

" काश्मीरेषु प्रवरपुर
मित्यस्ति मुख्यं पुराणा
यत गौरीपारिणयविधौ
साक्षिता मिन्दुमौले ।
यस्यायान्ति प्रकृति
कुटिलास्ते वितस्तातरङ्गा
स्वेच्छाधावत्कलियुग
गजाधोरणस्येङ्कुशत्वम् ॥

विक्रमाङ्कदेवचरित सर्ग १८।

आगे वितस्ता नदी का उत्तम वर्णन है। काश्मीर देश किसी समय सरस्वती का निवास स्थान था। वहां ऐसे कवि, आलङ्कारिक और वैयाकरण उत्पन्न हुए हैं कि जिनकी विद्वत्ता की उपमा नहीं है। काश्मीर की स्त्रियां भी बहुत विदुषी होती थीं, उनकी वहां भूविद्याधरी नाम से ख्याति थी। वास्तव में वे सब भूविद्याधरी ही होती थीं। विल्हण ने उनके वर्णन में यों लिखा है—

" यत्र स्त्रीणामपि किमपरं
जन्म भाषावदेव
प्रत्यावासं विलसति वच
संस्कृतं प्राकृतं च ॥ "
विक्रमाङ्कदेवचरित, सर्ग १८

अर्थात् जहां स्त्रियां भी मातृ भाषा की तरह संस्कृत और प्राकृत घर घर बोलती हैं वहां विद्याके प्रचार का क्या हाल कहें? आगे चलकर और भी लिखा है, यथा—

" दृष्ट्वा यस्मिन्नभिनयक
लाकौशल नाटकेषु
स्मेराक्षीणा मसृणकरणासङ्ग
रत्ताङ्गहारम्।
रम्भा स्तम्भं भजति
लभते चित्रलेखा न रेखां,
नूनं नाम्ना भवति च
चिरं नोर्वशी गर्वशालि ॥ "

अर्थात् जिन काश्मीर रमणियों की कला चातुरी और अनेकविध सौन्दर्य शृङ्गार को देख कर रम्भा छिप जाती है, चित्रलेखा की रेखाभी नहीं दीखती, उर्वशी का गर्वभी क्षीण हो जाता है। वास्तव में यह सब सत्य है। पूर्व भारतवर्ष में शीला, विज्जा, मारुला, आदि आदर्श रमणियां हो चुकी हैं कि जिनको काव्य-साहित्य मे पूर्ण ज्ञान होने के सिवाय, कला, चातुरी में भी बहुत कुछ परिचय था। उक्त रमणियों के फुटकर श्लोक सुभाषितावली आदि संग्रह ग्रन्थों में प्राप्त होते हैं। उनको पढ़नेसे हृदय

में अपूर्व भाव और रसका उदय होता है। खेद है कि आजकल भारतीय स्त्रियां अशिक्षित ही हाती हैं। और उनके स्वामी शिक्षाके विरोधी होते हैं। उनका प्राय यह खयाल रहता है कि स्त्रियों को शिक्षा देना महा अनर्थ और पाप है।

विल्हण, काश्मीरके काव्यों की प्रशंसा करते हुए लिखते है—

> काव्य यस्य प्रकृतिसुभग
> निगत कुङ्कुम च।
> छायोत्कर्षाङ्कवति जगता
> वल्लभ दुलभ च॥"

अर्थात् इस स्थान से स्वभाव मधुर काव्य और केसर उत्पन्न हो कर जगत भर में वल्लभ और दुर्लभ हुआ है। वास्तव में दोनों वस्तु लोकप्रिय और दुर्लभ हैं और काश्मीरही की विभूति हैं।

काश्मीर की प्रसिद्ध इमारतों में भट्टारकमठ, अग्रहार, क्षेमगौरीश्वर मन्दिर, सग्रामक्षेत्र मठ, राजप्रासाद प्रभृति का वर्णन भी १८ वें सर्ग में है। इन स्थानों में अग्रहार, हलधर का वनवाया है। क्षेमगौरीश्वर मन्दिर, और संग्रामक्षेत्र मठ राजा अनन्तदेव का स्थापित किया है। राजप्रसाद अनन्तदेव की रानी ने वनवाया है। इन सबका वर्णन करते हुए राजा अनन्तदेव के विषय में लिखा है कि अनन्तदेव राम वंशीय थे। उन्होंने अपने असीम पराक्रम के प्रभाव से दरद और शक गणोंको दमन करके, गङ्गा तट तक युद्ध किया एवं चम्पा, विद्भसरऔर त्रिगर्त देशों में अपन राज्यशासन की प्रणाली प्रचलित की। राजा अनन्तदेव की रानी का नाम सुभट था। रानी वहुत पुण्यशीला थी। उसके द्वारा एक विद्यालय और वितस्ता नदी के तीर पर एक शिव मंदिर स्थापित हुआ है। रानी के भाई क्षितिपति वा लोहराखण्डल बड़े तेजस्वी और राजा भोज के समान विद्वान थे। वह विष्णुभक्त थे एवं सदा वैष्णवों से घिरे रहते थे।

राजा अनन्तदेव से रानी सुभट में कलशराज का जन्म हुआ। कलशराज पराक्रमी राजा हुये और जयापीड के समान काश्मीरमण्डलमें विख्यात होकर कुरुक्षेत्र तक उनने अपने अधिकार को वढ़ाया। कलशराजके हर्ष, उत्कर्ष और विजयमल्ल नामक नाना-

गुणनिधान पुत्र उत्पन्न हुए। उनमे हर्षदेव पिता के समान पराक्रमी, एवं कवितामें श्रीहर्ष कोभी मात करने वाले हुए। यथा-

" यस्य प्रेया न्मयमतनय
क न चक्रे सहर्षं ।
श्रीहर्षाद्प्यधिक कवितो
त्कर्षशान्हर्षदेव ।"

विक्रमाङ्कदेव चरित, सर्ग १८ श्लोक ६४।

श्रीहर्षदेव के भ्राता उत्कर्ष देव ने क्षितिपति के लोहार राज्य को अपने शासन में किया। ये सब राजा प्रवरपुर के राजसिंहासन पर स्थित हुए थे। इस प्रकार काश्मीर राजाओं का वर्णन करके विल्हण अपने वंश का विवरण लिखता है। वह इस प्रकार है। प्रवरपुर से दो कोस दूर "जयवन" नामक एक स्थान था। उस स्थान में नाग राज सर्प का एक कुण्ड था। उस कुण्ड के पास "खोनमुख" नामक ग्राम था। उसमें द्राक्षा और केसर उत्पन्न होते थे। उसमें कौशिक गोत्र में मुक्ति कलश नामक महात्मा का जन्म हुआ। वह सारस्वत ब्राह्मण थे। उनके पुत्र राजकलश और इनके ज्येष्ठ कलश जगन्मान्य महाभाष्य के टीकाकार हुए। उनकी स्त्री का नाम नागदेवी था। उसके गर्भ में विल्हण का जन्म हुआ है। यों अपना विवरण लिखकर अपनी विद्या का वर्णन करते हैं-

'साङ्गो वेद फणिपतिकृशा
शब्दशास्त्रे विचार
प्राणा यस्य श्रवणसुभगा
सा च साहित्यविद्या।
को वा शक्त परिगणयितुं
श्रूयतां तत्वमेतत्
प्रज्ञादर्शे किमिव विमले
नास्य सक्रान्त मासीत् ?॥

विक्रमाङ्कदेव चरित, सर्ग १९ श्लोक ८२।

अर्थात् जिसको वेद, वेदाङ्ग शब्दशास्त्र, साहित्य आदि विद्याएं भली भांति ज्ञात थीं; जिसके विज्ञान आदि की गणना कोई नहीं कर सकता, इस प्रकार नाना विध विषय जिसके बुद्धि पट में चित्रित थे। विल्हण के ज्येष्ठ भ्राता का नाम इष्टराम और छोटे का नाम आनन्द था। दोनों विद्वान और कवि थे।

विल्हणने काश्मीर में शिक्षा पाकर, नानादेशों में भ्रमण किया। वह प्राय एक स्थान में बहुत दिन तक नहीं रहे। देशाटन के लिए काश्मीर से प्रथम

मथुरा, कन्नौज, प्रयाग और काशी को गमन किया। उस समय उनसे और डहाल स्थान के राजा कर्ण से साक्षात्कार हुआ। वहां राज सन्मान पाकर वे कुछ दिन रहे। राज सभा पण्डित गङ्गाधर को शास्त्रार्थ में हराया और वहीं "रामस्तुति" नामक काव्य बनाया। यह काव्य इनकी प्रथम कृति समझना चाहिए। अनन्तर कर्ण राजा से बिदा होकर धाराधिप भोज राज से मिलने की इच्छा से वहां गए परन्तु संयोगवश भोज की मृत्यु हो जाने से मुलाकात न हो सकी। यह भोज सुप्रसिद्ध, सरस्वती कण्ठाभरण इयलीलावती, राजमृगाङ्क करण आदि[2] ग्रन्थोंके कर्त्ता मालुम होते हैं। फिर अनहिलवाद स्थान में पहुचे। वहां के भाषा, आचार व्यवहार की बड़ी निन्दा की है[3] उसके बाद सोमनाथ नामक स्थान में गए। यह प्रसिद्ध सोमेश्वर महादेव का नाम है। वहां बड़ी भक्ति से सोमनाथ शिव की उपासना की, और वहां के समीपवर्ती स्थानों को भी देखा भाला। अन्तमें सेतुबन्ध रामेश्वर तीर्थ को गए। इस प्रकार अनेक स्थानों मे भ्रमण करके शेष में विक्रम की राजधानी कल्याण को गए। वहां राज्याश्रय में रहे, और वहीं इन की विद्या और प्रतिष्ठा की पूर्वापेक्षा वृद्धि हुई।

(2) The date of Bhoja is unfortunately not yet satisfactorily ascertained Lassen places his reign between 997-1053 (J A 111 844), but the only certain date in his reign is the year 1043 in which his Karana the Rajamrigank, is dated My reasons for placing him later are firstly that Bilhan states that during Bhoja's reign—Sowesvara 1 (1040—1069) took Dhara by storm and 2ndly that Kalhana asserts (Rajatarangini VII 259) that Bhoja and Kshitirai or Kshitipati were in the time after 1062 the only true friends of poets (See Dr Buhler's Introdection to Vikramankadevacharita foot note P 23)

(३) जनश्रुति निम्नलिखित श्लोक को बिल्हणकृत बतलाती है। सम्भव है कि अनहिलावाद मेंही असतुष्ट होकर बिल्हण ने यह कहा हो कि राजद्वारे + + क्वारं निश्चिशान्ति विशान्ति च ++स्तास्त्रिया सर्वे बिल्हणो दूषणायते ॥

बिल्हणने चौलुक्य राजधानी कल्याण में त्रिभुवन मल्ल विक्रमादित्य के आश्रय मे ही अपना शेष जीवन व्यतीत किया। और वहीं उक्त राजा से "विद्यापति" की पदवी प्राप्त की। यथा—

" चौलुक्येन्द्रादलभत कृती
यो‌ऽत्र विद्यापतित्वम्।"
विक्रमाङ्क देव चरित सर्ग १८
श्लोक १०१

इसके सिवाय राजतरङ्गिणी में बिल्हण के विषय मे इस प्रकार लिखा है—

" काश्मीरेभ्यो विनिर्यान्तं
राज्ये कलशभूपते ।
विद्यापतिं य कर्णाटश्चक्रे
पर्माडि भूपतिः ॥ ९३६ ॥
प्रसर्पतः करटिभि
कर्णाटकटकान्तरे ।
राज्ञोमे ददृशे तुङ्गं
यस्यैवातपवारणम् ॥ ९३७ ॥
त्यागिनं हर्षदेवं स श्रुत्वा
सुकविबान्धवम् ।
बिल्हणो वञ्चना मेने
विभूतिं तावती मपि ॥९३८॥ ,

अर्थात्, कलशराज के राज्य में जानेके लिये काश्मीर से गए हुए जिसको कर्नाट पर्माडि राज ने "विद्यापति" की उपाधि दी। कर्नाट राज सेना में जाने वाले राजाओं के सन्मुख जिसका आतपत्र अर्थात छत्र चलता था। उस बिल्हण ने कवि बान्धव हर्ष देव को दानी सुन कर अपने सब ऐश्वर्य को विडम्बना मात्र समझा।

त्रिभुवनमल्ल देव-विक्रमादित्य ने, कल्याणमे १०७६से ११२७ खिस्ताब्द तक राज्य किया। और उसी समय बिल्हण भी थे। क्योंकि बिल्हण के लेखानुसार अनन्त और कलश दोनो उनके सम कालिक थे। राज तरङ्गिणी में लिखा है कि अनन्तने ३५ वर्ष राज्य करके अपने पुत्र कलश को राज्याभिषेक किया, फिर दोनोंने १५ वर्ष तक एक साथ राज्य किया। उसके बाद कलश के दुष्ट चरित्रों को देख विरक्त हो अनन्तने दो वर्ष और९मास तक विजय क्षेत्र में वास किया। शेष में भयङ्कर कष्ट सह कर आत्महत्या करली। स्वामीकी मृत्यु सुन कर सुभट किंवा सूर्यमती सती होगई। जनरल कानिंहाम के मत से १०८० खिस्ताब्द में अनन्तदेवने आत्महत्या की, एवं उसके पुत्र कलशराजने १०८८ खिस्ताब्द तक राज्यशासन किया। (See Dr Buhler's IntroductioP 20)

बिल्हण ने अपने आश्रयदा

ता चौलुक्य वंशीय कर्नाट राज विक्रम के संतोष के लिये उनका चरित्र "विक्रमाङ्क देव चरित" बनाया। जैसा स्वयं लिखा है—

"तेन प्रीत्या विरचितमिदं
काव्यमव्याजकान्तं
कर्णाटेन्द्रोर्जगति विदुषां
कण्ठ भूषात्वमेतु॥"

विक्रमाङ्क देव चरित सर्ग, १८, श्लोक १०२

डाक्टर बुलर साहब उक्त सब विषयों को लिखकर अन्त में विक्रमाङ्क देव चरित का निर्माण काल १०८५ खिस्ताब्द स्थिर करते हैं।

"All these circumstances are I think amply sufficient to establish my assertion, that Bilhan left his country between 1062—1065 and wrote the Vikramankadevacharita at an advanced age about 1085, and that his travels and literary activity fall in the third and fourth quarters of the eleventh century (See his Introduction 23P)

विक्रमाङ्कदेवचरित के प्रथम सर्ग में चौलूक्यवंश का विवरण लिखा है। उसमें लिखा है कि संध्या के समय ब्रह्मा का आचमन जल मुख से बाहर हुआ उस से एक वीर पुरुष उत्पन्न हुआ। चुकलुक अर्थात् आचमनसे उत्पन्न हुआ इससे चौलूक्य[४] नाम से उस वंश की प्रसिद्ध हुई। ब्रह्मा ने देवताओं के हितके लिए इस पुरुष को उत्पन्न किया है, ऐसा लिखा है।

"अथा विरासीत् त्रुभवस्त्रिलोक
त्राण प्रवीण श्चुलुका द्विधातु"

विक्रमाङ्कदेवचरित, सर्ग १, श्लोक ५५

उक्त चौलूक्य वंश परंपरागत वृद्धिको प्राप्त हुआ। और हारीत प्रभृति महात्माओं ने उसमें जन्म लिया। उसके वाद मालव्य राजा का जन्म हुआ। जो प्रसिद्ध राजा थे। जिनका राज्य गुजरात में था। जैसा—

'चक्रे पदं नागरखण्डचुम्बि
पुगद्रुमाया दिशि दक्षिण स्याम्।"

मालव्य के बाद श्री तैलय का आविर्भाव हुआ। यह चौलू-

(४) इस वंश का विशेष वर्णन डाक्टर भाण्डारकर ने अपने ग्रन्थ (*Early History of the Deccan*) में किया है। डाक्टर बुलर साहब ने भी गवेषणा पूर्ण उल्लेख भूमिका में किया है। आशा है किसी स्वतन्त्र लेख में यह सब बातें लिखेंगे।

क्य वंश के मुख्य नेता हुए। इन का राज्य सिंहासन सर्व मान्य हुआ। इनके बाद जयसिंहदेव सिंहासनारूढ हुए। उनके पुत्र आवटमल्लदेव हुए। जिनका दूसरा नाम त्रैलोक्यमल्लदेव भी था। त्रैलोक्यमल्ल ने पुत्रकामना से स्त्री के सहित तपस्या की थी। एक दिन देववाणी हुई कि तेरे को पुत्र मुख देखने को शीघ्रही सौभाग्य होगा। उसके बाद पुत्र का जन्म हुआ।

इसका नाम सोमदेव प्रसिद्ध हुआ। फिर कुछ दिनके बाद दूसरा पुत्र हुआ। उसका नाम विक्रमदेव हुआ बालकाल से ही विक्रमदेव पराक्रमी और उत्साही थे। इस लिये राजाने उनको विक्रमादित्य या विक्रम नाम से प्रसिद्ध किया यही विक्रमाङ्क इस विक्रमाङ्कचरित के नायक हैं। विल्हणने अपनी परिणतावस्था में इस काव्य को बनाया है। इसमें १८ सर्ग हैं यह उनकी अन्तिम कृति है। अफ्रेक्ट के मत से विल्हण कृत कोई अलङ्कार का भी ग्रन्थ है।

विल्हण जैसे सत्कवि थे वैसे सहृदय नहीं थे। उन्होंने अपने विषय में इतनी गर्वोक्तियां लिखी हैं कि श्रीहर्ष से भी बढ़ गए हैं। अस्तु, इन दोषोंसे कोई प्रयोजन नहीं है। उनका काव्य अति मनोहर और संस्कृत साहित्य का रत्न स्वरूप है। हम लोगोंके लिये इतना ही जानना बहुत है, क्योंकि बड़ों के दोषभी छोटे आदमियोंको भक्ति के साथ कहने चाहियें।

गिरिजाप्रसाद द्विवेदी

* * * *

विचार की नई परिपाटी वा नई समझ का सामना करने में मनको चाहे सन्देह हो, और हृदय को निराशता हो, किन्तु एक समय ऐसा आवेगाही जब सब पदार्थों में से झूठ मुरझा जायगा और जो कुछ सत्य है वह अजब नहीं मालूम देगा।

डा० इलिङ्गवर्थ।

* * * *

महाकवि भूषण ।

(गताङ्क से आगे)

(३) भाग्यवश भूषण जी का जीवन चरित्र बंगवासी वाली प्रति में सन्तोष दायक दिया हुआ है अथवा यों कहें कि हम उस से अधिक बातें नहीं दे सके । अतः हम यहां पर विस्तार पूर्वक लिखना अनुपयोगी समझ सूक्ष्मता से उसका दिग्दर्शन मात्र कराये देते हैं ।

ये महाशय कान्य कुब्ज ब्राह्मण कश्यप गोत्री रत्नाकर त्रिपाठी के पुत्र जिला कान्हपूर में त्रिविक्रमपुर अर्थात्, टिकिमापूर ग्राम के रहने वाले थे । इनके जन्म का समय अद्यापि अनिश्चित है । शिव-सिंह सरोज में इनके जन्म का सम्वत १७३८ विक्रमीय लिखा है परन्तु वह अशुद्ध है क्योंकि भूषण जी स्वयं लिखते हैं कि उन्होंने सम्वत् १७३० विक्रमीय में शिवराज भूषण समाप्त किया। ये महाशय चार भाई थे जिन में ये द्वितीय थे। चारो भाइयों के नाम इस प्रकार हैं, चिन्तामणि, भूषण, मतिराम, जटाशंकर उर्फ नीलकंठ । पहले इन महाशय का नाम कुछ और था परन्तु हृदय राम के पुत्र चित्रकूट नरेश सोलङ्की महाराजा रुद्र ने इन्हें भूषण पदवी दी तभी से ये भूषण कहाने लगे और इनका पहला नाम यहांतक लुप्त हो गया कि आज उसे कोई नहीं जानता है । इन्होंने स्वयं अपना परिचय यों दिया है—

द्विज कन्नौज कुल कश्यपी रतनाकर सुत धीर ।
वसत त्रिविक्रमपूर सदा तरनि तनूजा तीर ॥
कुल सुलंक चित्रकूट पति साहस शील समुद्र ।
कवि भूषण पदवी दई हृदय राम सुत रुद्र ॥

परन्तु इन महाराज रुद्र की प्रशंसा का इनका एक भी छन्द नहीं मिलता। हां, शिवा बावनी के एक छन्द में सोलंकी का ससैन युद्धार्थ पयान वर्णित है। भूषण का महाराज रुद्र, छत्रसाल तथा शिवाजी के यहां विशेष आदर हुआ। उस समय के कवियों की भांति ये महाराज भी अन्य राजाओं के यहां अवश्य गये होंगे परन्तु इनके औरंगजेब तथा कुमाऊं नरेश के यहां जाने का हाल विशेषतया ग्रन्थों में देखा एवं जनश्रुतियों द्वारा सुना गया है। यह सब पर विदितही है कि इन्होंने अपनी भावज से लड़कर घर छोड़ा, "इन्द्रजिमिजम्भ" वाले कवित्त पर शिवाजी से १८ लक्ष मुद्रा तथा गज ग्राम एकही दिन पाया तथा छत्रशाल ने स्वयं इनकी पालकी का डंडा उठा कर अपने कन्धे पर धर लिया था। इनके मरणकाल का भी निश्चय अभी हम लोग नहीं कर सके हैं बंगबासी वाली प्रति में लिखा है कि ये महाराज शिवाजी के पुत्र शम्भाजी के दरबार में भी थे परन्तु उस में इस कथन की पुष्टि का कोई प्रमाण नहीं दिया गया है। इनका बनाया हुवा शम्भा जी का एक छन्द अवश्य मिलता है तथापि उसमें इन्होंने शम्भाजी को महाराज करके नहीं लिखा है वरन "शिवा को सुवन सम्भा" ऐसा कहा है जिससे यह निश्चय नहीं होता। कि वह छन्द सम्भा जी राजत्व काल में निर्मित हुवा था वरन अनुमान तो उस के विरुद्धही जाता है। भूषण जी के सब ग्रन्थ हम लोगों के पास नहीं हैं अत हम ऐसा निष्कर्ष नहीं निकाल सकते कि इन्हों ने

शिवाजी का मरण नहीं कहा है अथवा सम्भाजी के राज्य का वर्णन नहीं किया है अतः ये उस समय तक जीवित न थे। हम लोग इतना जानते हैं कि ये महाशय सन् १६७८ ई० अर्थात् सम्वत १७३४ विक्रमीय तक अवश्य जीवित थे क्योंकि उस समय की करनाटक वाली चढ़ाई की वर्णन इनके छन्दों में मिलता है।

(४)-भूषण जी के प्रस्तुत ग्रन्थों में शिवराज भूषण, श्री शिवा बावनी, श्री छत्र साल दशक तथा स्फुट कवित्त बंगवासी में छपे हैं और उन्हीं पर हम आज समालोचना लिखने बैठे हैं। जिस किसी स्थान पर पृष्ठों का कथन हो तो इसी प्रति के पृष्ठ समझने चाहिएँ। प्रथम हम इन सब ग्रन्थों पर अपनी अनुमति प्रकट करके फिर इनके काव्य के गुणदोष एकत्रित दिखावेंगे। इनके ग्रन्थों से उस समय के राजाओं तथा औरंगजेब के राज्य की दशा भली भांति विदित होती है अत. हम सब से प्रथम भूषण के ग्रन्थ से जो उस समय का इतिहास ज्ञात होता है वह लिखते हैं। जो महाशय शिवाजी का ऐतिहासिक वृत्तान्त जानना चाहैं वे जस्टिसरानडे कृत "महाराष्ट्र शक्ति का अभ्युदय" नामक अंग्रेजी ग्रन्थ अथवा ग्रैण्ट डफ साहब का इतिहास या लाला लाजपतिराय साहब का लिखा हुआ शिवाजी का जीवन चरित्र पढै। भूषण के अनुसार शिवाजी का वर्णन यों है।

सूर्य्य वंश पृथ्वी पर विख्यात है जिस में परमेश्वर ने चार चार अवतार लिया है। उसी सूर्य्य वंश मे एक बड़ा प्रतापी राजा हुआ जिसने अपना शिरकाट कर महादेव जी पर चढ़ा दिया। उस समय से उसके बंशज शिसौदिया कहाने लगे इसी वंश में एक बड़ा पराक्रमी राजा भाल मकरन्द हुआ जिसके पुत्र राजा

साहजी हुए। साहजी बड़े दानी थे। उन्ही के पुत्र शिवाजी अथवा शिवराज उत्पन्न हुए। शिवाजी की बाल्यावस्था में औरंगजेब दारा को मार कर, मुराद को कैद करके, शाहशुजा को भगाकर अपने पिता शाहजहां को कारागार का वास दे दिल्ली में राज्य करने लगा दक्षिण में उस समय आदिलशाह और कुतुबशाह का राज्य था श्री नगर, नयपाल, मेवार, ढुंढार, मारवाड़, बुँदेलखंड, झारखंड और पूर्व पश्चिम के सब देशों के राजा अर्थात् राना, हाडा राठोर, कछवाहे, गौड इत्यादि सब औरंगज़ेब से दबते थे और सब उसकी प्रजा के समान थे। उसने कितनेही मन्दिर तोड़ डाले, मथुरा को ध्वस्त कर दिया और स्वयं विश्वनाथ जी उससे डरकर भागे। यथा—

कुम्भकर्ण असुर औतारी अवरंगज़ेब कीन्ही कत्ल मथुरा दुहाई फेरी रबकी

खोद डारे देवी देव सहर मुहल्ला बांके लाखन तुरुक कीन्हे छूटि गई तबकी।

भूषन भनत भाग्यो काशीपति विश्वनाथ और कौन गिनती मैं भूलि गति भवकी—

चारों वर्ण धर्म्म छोड़ि कलमा नेवाज पढ़ सिवाजी न होते तो सुनति होत सबकी॥

ऐसे उद्भट समय में शिवाजी ने मुगलों का सामना करने का साहस किया। उनकी चक्रवर्त्ती राज्य स्थापित करने की उच्च अभिलाषा थी। उसके परिश्रम का यह फल हुआ कि उस महानुभावने बालपनही में बीजापूर गोलकुंडा को जीतकर युवावस्था में

दिल्लीपति को पराजित किया। महाराजा शिवाजी महादेवके बड़े भक्त थे और शैवकथाओं के सुनने में उन्हें बड़ा स्नेह था और वे बड़ेही उदार दानी थे। उनके राज्य का प्रजा पर तथा हिन्दू समाज पर यह प्रत्यक्ष प्रभाव पड़ा कि वेद पुराणों की चर्चा तथा द्विज देवों की पूजा करने की प्रथा फिर लोक में संस्थापित हुई।

बाल्यावस्था ही में शिवाजीने दक्षिण के सब दुर्गजीत कर राजगढ में वास किया। शिवाजी की सभा बहुतही उत्तम थी तथा उनका दुर्ग बड़ा ऊंचा एव पुष्ट था। इन महानुभाव ने बहुत से दुर्ग बनाये तथा अपने राज्य का अनेकानेक विजयों द्वारा बहुत वर्द्धमान किया। इन्होंने बाल्यावस्था ही में तहौवर खां का ससैन बध किया। पीछे चन्द्रावत को मारकर जावली पर कबजा किया तथा सिंगार पुरी को भी जीत लिया। इसके पश्चात् शिवाजी से बीजापुराधीश आदिलशाह से खुल्लमखुल्ला युद्ध होने लगा। बीजापूर की ओर से भेजा हुआ अफ़ज़लखां ससैन्य शिवाजी पर आक्रमण करने को आया। वह दगा करने के विचार से शिवाजी से मिलने को अकेला गया और ज्योंही वह इन पर कटार प्रहार करने पर हुआ इन्होंने चट उसे बिच्छू के पंजे से गिरा कर खड्ग से मार डाला। तदनन्तर शिवाजीने धीरे धीरे रुस्तमेज़मां तथा फ़तेहखां को भी पराजित किया। इन सब बीजापुरी सैनिकों को परास्त करके शिवाजी ने बीजापूर से कुछ देश मांग भेजा परन्तु वजीरोंने न दिया। तब शिवाजी ने दोही दिनों में दौड़ कर एक रात में पन्नाले का किला छीन लिया और फिर करनाटक की सरहद तक सब देश परास्त किये। इसके पश्चात् शिवाजी और बीजापूर वालों की लड़ाई कुछ दिनों के लिये बन्द हो गई और दिल्ली से हानी रही। अन्त में

एक बार खवासखां वजीर बीजापुर ने शिवाजी से लड़ने का पुनः साहस किया परन्तु उसको पराजित होना पड़ा। इस बार अफ़ज़ल आदि वाली लड़ाइयों की भांति बड़े वेग का वर्णन नहीं है बरन ऐसा कहा गया है कि अब आदिल शाह समान शत्रु नहीं रहा किन्तु एक तुच्छ शत्रु रह गया यथा "बापुर ऐदिलशाही कहां कह दिल्ली को दामनगीर शिवाजी ?"। बीजापुर से पूर्व कथनानुसार युद्ध कुछ कम होने पर शिवाजी से औरंगज़ेब से युद्ध आरम्भ हुआ। शिवाजी ने एक एक करके जसवन्तसिंह, भाऊ, करनसिंह, शाइस्तारवां, खानदौरा, सफ़दर जंग, तलब खां आदि दिल्ली के सेनापतियों को पराजित किया। शिवाजी ने सूरत को भी लूट लिया। तदनन्तर औरंगजेब की ओरसे जैसिंह इन महाशय से लड़ने को आये। शिवाजीने उन्हें अपने कुछ गढ़ दिये और फिर स्वयं दिल्ली को गये। भूषण ने शिवाजी के दिल्ली जाने का वृत्तान्त बड़ाही सुन्दरता से वर्णन किया है। दिल्लीपति ने अभिमान करके इस शूर शिरोमणि को पंज-हजारि सरदारों (तृतीय श्रेणी के सभासद सरदारों) में खड़ा किया इस पर इस महानुभाव ने जो किया वह सब बड़ी उत्तमता से निम्न लिखित छन्दों में वर्णन है—

आनि मिल्यो अरि यों गह्यो चखनि चकत्ता चाव ।
साहि तनै सरजा सिवा दियो मुच्छ पर ताव ॥
बीर बडे बड़े मीर पठान खरो रजपूतन को गन भारो—
भूषण आय तहां शिवराज लियो हरि औरंगजेब को गारो।
दीन्हो कुजवाब दिलीपति को अरु कीन्हो वजीरन को मुंह कारो।
नायोन माथहि दक्षिन नाथ न साथ मे सैनन हाथ हथ्यारो॥
जसन के रोज यों जलूस गहि बैठ्यो जौब इन्द्र आव सोऊ लागै औरंग की परजा।

भूषन भनत तहां गरज्यो शिवाजी गाजी जिनको तुजुक देखि को न हिये लरजा।
ठान्यो न सलाम मान्यो साहि को इलाम धूमधाम कै न मान्यो रामसिंह कूको वरजा।
जासो एंड़ करि भूप बचै न दिगन्ताके दन्त तोरि तखत तरेते आयो सरजा॥

वहां से लौटकर शिवाजी ने रामनगर व जवार पर बैरियों को परास्त किया और गुजरात को भी जीता— तदनन्तर शिवाजी ने रात में सिंहगढ़ पुन छीन लिया और उदैभाण राठौड़ गढ़ रक्षकका युद्ध में बध किया। फिर औरंगजेब की सेना से शिवाजी से बड़ा भारी युद्ध हुआ जहां शिवाजी ने खानबहादुर को परास्त किया। कुम्भ के राजपुत्र मोहकमसिंह तथा बहलोलखां को पकड़ लिया और चन्द्रावत तथा सैयद पठानों को भूशाई करके समस्त दलका बड़ाही विकराल "कतल-ए-आम" किया। इसके पश्चात् दिलेर खां को परास्त किया। सलोट के भी समर को जीत कर अहमदनगर में नौशेरी खां को हराया और दिल्ली पति के कितने ही गढ़ छीन लिये। तदनन्तर शिवाजी ने कर्नाटक वाली अपनी अन्तिम चढ़ाई की। ऐसी प्रचण्ड और प्रभाव पूरित इनकी कोई चढ़ाई नहीं हुई थी जिसका वर्णन हमारे कवि ने इन गम्भीर शब्दों में किया है—

दुग्ग पर दुग्ग जीते सरजा शिवाजी गाजी डग्ग नाचे डग्ग पर रुण्ड मुण्ड फरके।
भूषण भनत बाजे जीति के नगारे भारे सारे कर्नाटी भूप सिंहल को सरके।

मारे सुनि सुभट पनारे उद्भट तारे तारे लागे भिरन सितारे गढ़ धरके।

बीजापुर बीरन के गोलकुण्डा धीरन के दिल्ली उर मीरन के दाड़िम से दरके॥

कोट गढ़ ढाहियतु एकै पातशाहन के एकै पातशाहन के देस दाहियतु है।

भूषन भनत महाराज शिवराज ऐके साहन के सैन पर खग्ग बाहियतु है।

क्यो न होहिं वैरिन की वौरि सी सुवर वधू दौरन तिहारे कहै क्यों निवाहियतु है।

राउरे नगारे सुने वैर वारे नगरनु नैनवारे नदन नेवारे चाहियतु है॥

मालवा उजैन भनि भूषण भेलसा ऐन सहर सिरोज लौं परायते परत हैं।

गोंड़वानो तिलगानो फिरंगानो करनाट हिन्दुवानो हिन्दुन कों हियो हहरत हैं॥

साहके सपूत शिवराज तेरी धाक सुनि गढ़पति बीर तेऊ धीरन धरत हैं।

बीजापूर गोलकुण्डा आगरे दिल्ली के कोट बाजे बाजे रोज दरावजे उघरत हैं॥

(क्रमश)

तिब्बत के प्रति भारत।

(१)

हे ध्यानमग्न हिममन्दिर-मुग्ध योगी !
आते चले तव समीप विचित्र भोगी।
खोलो समाधि अब देर करो न भाई !
आती कमीशन बृटीश सजी सजाई॥

(२)

मैं भी कभी तव समान सुखी बना था,
स्वातन्त्र्य-मूल बलवीर्य यहाँ घना था।
ऐसी सुशान्ति रहती सब ठौर प्यारे !
ध्यानैक-तत्पर रहे नर-नाथ सारे॥

(३)

मेरे तपोवन जहां मुनि बुद्ध जन्मे,
थे दिव्य सुन्दर जहां नर शुद्ध जन्मे।
देखो ज़रा अब वहां रह क्या गया है ?
हा ! कष्ट ! बुद्ध-तरु-हीन हुई गया है॥

(४)

गंगादि तीर्थ कुछ के कुछ हो चुके हैं,
प्राचीन बात सब की सब खो चुके हैं।
शोभा पुरातन सभी वह जा चुकी है,
नव्या बनावट जमाव जमा चुकी है।

(५)

कोठी वहां, मुनि कुटीर वनी जहा थी,
ऐसी चमत्कृति यहां पहिले कहां थी ?
तोभी अधीन परके सुविलास क्या है ?
स्वाधीनता यदि रहै उपवास क्या है ?

(६)

किन्तु प्रताप अपना रखने न पाया,
कोई सदैव, अपनी रख शक्ति काया।
छाया समान विधि-चक्र सदा फिराता,
नाना चरित्र अपने सबको दिखाता॥

(७)

वीराङ्गना कर गई इस भूमि में जो,
होगा नहीं जगत में नृपवृन्द से सो।
लाखों कुमार अपने रण में कटाए,
मैंने, तथापि निज अश्रु नहीं गिराए॥

(८)

कैसे लड़े? मरमिटे किस भांति प्यारे ?
मेरे सुपुत्र किस भांति कहां सिधारे ?
भूला उन्हें अब नहीं सब याद आते,
प्राचीन तत्व विरले जन हैं सुनाते ॥

(९)

प्यारी लगी नवल वीर बृटीश छाया,
मैंने निजत्व अपना उसमें भुलाया।
आनन्द से अब रहूं गुण गा रहा हूं,
निर्भीक हो जगत में सुख पा रहा हूं ॥

(१०)

देखो सुनो मत करो अब और गर्जन्,
लो मान जो कुछ कहैं वह लाट कर्जन्।
जो द्वैधभाव उपजा उसको मिटा दो,
शङ्का समस्त मन की अब भी हटा दो ॥

राधाकृष्ण मिश्र।
(भिवानी।)

खेलभी शिक्षा है।

मनुष्यों ने बड़ी भारी मूर्खता की जो पशुवृत्ति (निसर्ग) को घृणा से देखना आरम्भ किया ; " यह तो पशुवृत्ति है " यह कहना ही किसी काम की बुराई का सूचक हो गया, किन्तु गवेषणा मे देखा जाय तो पशुवृत्तिय करोड़ों पीढियों के अनुभव का सार हैं। हानिकारी काम के लिए निसर्ग पैदाही नहीं होसकता, हानि-कारी काम की ओर प्रवृत्ति रखने वाली जाति ही नष्ट हो जाती है।

व्यक्ति—जीवन म भी, " अच्छी आदतों का डालना " और कुछ नहीं है, केवल सदसद्विवेक (भले बुरे की पहचान) शक्ति की आज्ञाओं का अनुभवानुसार पशुवृत्ति के रूप में परिणत करना ही है। पशुवृत्ति से भूल भी हो सकती है क्योंकि सीमाओं के वा पार्श्ववर्त्ती दशाओं बदले जाने से पशुवृत्तियां हानि भी कर सकती हैं। किन्तु पशुवृत्ति बुरी ही है यह कहना ठीक नहीं, क्यों कि कई उपयोगी काम पशुवृत्ति सेही किए जाते हैं। इससे खेलने की इच्छा को गालियां न देकर उसका विश्वास करना चाहिए कि जब उसका इतना हठ है तो अवश्य ही हमारे पूर्व पुरुषों को पिछले झगड़ों में उसने बहुत ही काम दिया होगा। हम अब मानने लगे हैं कि प्राकृतिक इच्छाएं बलवती है और काम की है, हम 'विद्यार्थी जो न करना चाहे वही उसे कराना इसी का नाम शिक्षा है बिन कठिन हुए पढाई ही नहीं, पढाई में आनन्द आवै तो वह पढाई काहे की, इन बातों को नहीं मानते। हम शिक्षा को विद्यार्थी दिलाना नहीं चाहते, किन्तु विद्यार्थी को शिक्षा दिलाना चाहते है।

खेलना वह शक्ति है जिसके दर्जों का भेद, मनुष्य का उच्चपशुओं से, और उच्च पशुओं का नीच पशुओं से जो भेद है उसका द्योतक है। जन्म के साथ, बालकत्व और परवशता एक तरफ और एक तरफ बुद्धि आरम्भ होती है। जो जीव खेल सकते हैं वे सिखाए भी जा सकते है। बुद्धिकी वृद्धिके साथ साथ माता पिता के अधिक अधीन रहना पडता जाता है अर्थात् अधिक बुद्धिमान जीव अधिक दिन परवश रहता है। परवश रहना ही खेलने का काल है अर्थात् अधिक खेलने वाले जीव ही अधिक बुद्धिमान होते हैं क्योंकि खेलना उन शक्तियों की कवायद और परीक्षा है जिनके ऊपर, आगे जाकर जीवन निर्भर होगा।

दृष्टान्तों से समझिए। मेंडक जन्मते ही अपनी रक्षा करने को समर्थ होता है जनक उनकी सम्हाल नहीं करते इससे वह बिलकुल नहीं खेलता। भोजन तलाश करना और समय पर स्त्री सहवास करना यही उसका कर्तव्य है। बस वह इन्हीं दो कर्मों की गठडी है। मेंडक की प्रत्येक छलांग पशुवृत्ति मात्र है, या तो भोजन पाने को या तो शत्रु से बचने को, खेलने को नहीं।

यही दशा मछलियों की है, यद्यपि बडी होने पर ये खेलती है अर्थात् बिना किसी काम के भी पैरा करती है। किन्तु वास्तव में मछलियां बहुत कम खेलती है इससे वह कुछ भी शिक्षा नहीं पा सकतीं इसके सिवाय कि घण्टी बजाने पर खाने को आजाय। कई मछलियां किनारे पर आदमी देखकर खाना मिलने की आशा से तट पर भी आजाती है हाथ पर से राम नाम की गोलियां भी चुन लेती है। एक सज्जन ने घण्टी बजाकर मछलियों को उसकी आवाज पर भोजन के लिए एकत्र करने का अभ्यास डाला। फिर घण्टी के लटकन में डोरी बांध कर उस में कुछ बांध कर उस

खेंचने से मछलियों को घण्टी बजाना भी सिखाया। जब एक मच्छली घण्टी बजाती तो और भी आजातीं, किन्तु भूख लगने पर घण्टी बजा कर इकट्ठा होना वे न सीख सकीं। याने वे "एक पद" संयोग की शक्ति रखती है उनका मन दो (भाव के) पदों का संयोग नहीं कर सकता।

अब जरा पशुओं में नीचे भी चलना चाहिए क्योंकि कई लोगों की बुद्धि में चींटीं और मधुमक्खी बहुत बुद्धिवाली होती हैं। किन्तु यद्यपि चींटियों में जाति भेद है और कर्म भेद है तथापि वे केवल अचेतन भारवाहकही है, और जन्म से (नकि शिक्षा और ज्ञानसे) उनकी प्रवृत्ति इस ओर होती है। एक चींटी दल निसर्ग से बच्चों को पालता है, दूसरा निसर्ग से अन्न ढो लाता है, तीसरा शत्रुओं से लड़ता है। यदि चींटियों को किसी काम में लगा पाकर उनका पिछला हिस्सा काट डालें तो भी बाकी हिस्सा उस काम से न हटेगा अर्थात् न खेलनेके कारण उनमें अपने कामको जाननेकी बुद्धि नहीं है, सब काम जड़ताही किए जाती है। बड़े बड़े चिउटों से तो सर्जनो के ऐसे टांके देने का काम लिया जाता है, अर्थात् चींटे के जबाड़ों में दोनो ओर का मांस फँसा कर उसका पिछला भाग काट दिया तो अग्रभाग वैसेही चिपटा रहेगा। पहले मानते थे कि ये एक दूसरे से बात चीत कर सकती हैं, क्योंकि जहां मिठाई पर एक चींटी पहुंची तो वहीं पचासों मौजूद! किन्तु इसका कारण खाद्य पदार्थ का गन्ध है। चींटियां अपनी मित्र चीटियों को बहुत दिनों पीछे भी पहचान लेती हैं, और अपने निवास में आए शत्रुओं को फाड़ देती हैं, किन्तु शत्रु का रुधिर मित्र के और मित्र रुधिर शत्रुके मल देनेसे वे उलटा व्यापार दिखाती है। मनुष्य की दृष्टिमें इनका काम और परिश्रम मूर्खता है, बुद्धिमत्ता नहीं

यही हाल मधु मक्खी का है। सैकड़ों वर्षों से इन को हम आदर्श मानते आए हैं, किन्तु बालक "पशुवृत्ति" से ही अपने गुरुओं से अधिक जानते थे, इसीसे उनने इनका अनुसरण नहीं किया।

पक्षियों में भी खेलने की प्रवृत्ति बहुत कम है। वे पक्षी जो वृक्षों पर और ऊंची जगहों पर गोल खोते बनाते हैं और जिनके बच्चे कमजोर होने से अधिक सम्हाल के प्रार्थी होते हैं अधिक शिक्षा पा सकते हैं और अधिक खेलते हैं। इसके विरुद्ध भूमि पर खोता बनाने वा अण्डा देने वाले पक्षी जिनमें जन्मते ही बच्चोंकी आंख खुल जाती है और जो झट दौड़ने और खाने लगते हैं, नहीं खेलते और शिक्षा नहीं पाते।

द्वितीय श्रेणी में मुर्गे गिने जाने चाहिए। इनके बच्चे जन्मसे २० मिनिट बाद ही कीड़ों पर चोंच मारते हैं, ये कभी नहीं खेलते, केवल कीड़ोंके लिये लड़ते हैं। झट पट उनका जीवन शुरू हो जाता है और इसीसे "मुर्गीके बच्चे" यह मूर्ख के लिए गाली का शब्द है। मांसाहारियों के पञ्जेमें कई शताब्दियों से पडे रहने पर भी अबतक ये (मुर्गे, तीतर, पेरू, बतक) कुछ न सीख सके। पालतू मुर्गा प्रायः असम्भव सी बात है, किन्तु जहां चाहो वहां पालतू भेड़, बछडे, बकेरे, सुअर, तक देखलो। कौवे अधिक बुद्धिमान हैं, उच्च स्थानों में खोते बनाने वाले पक्षियों की बुद्धिमत्ता उसी क्रम मे अधिका अधिक हैं जिस क्रमसे वे अधिक खेलते हैं वा नाचते हैं। सबसे उच्च दशामें तोते और मैना हैं जो खेला करते हैं, मजाक पसन्द करते हैं और इसी लिए सबसे अधिक बुद्धिमान् हैं। हंसना बुद्धिका चिन्ह भी है फल भी है।

पशुओं में आइए तो अधिक खिलाड़ी मिलेंगे। कछुए में खेलने का उतना प्रेम नहीं किन्तु धीरे धीरे उन्नति पद पर आकर देखने

बकरी और बिल्ली के बच्चे अपनी खेलवाड़ के लिए कहावतों में प्रसिद्ध है। बिल्ली का बच्चा अपनी बहन की पूंछ पर, वा डोर के गुच्छे पर वैसेही झपटता है जैसे कि बड़ा होने पर चूहोंपर चिड़ियों पर वा दूसरे बिलारपर झपटेगा। भेड़ के वा गौके बछड़े की खेल कूद, सोचिए तो, कितनी प्यारी है। दोनों अपनी टांगो को सब ओर फटकारते है जिससे निश्चय हो जाय की यह हमारी ही है। बछड़ेका टकराना उस भविष्यत् बड़प्पन का सूचक है जब वह अपने शृङ्ग के बलसे गोविन्द होकर 'सुरभीरनुनि सपत्नं' गमन करेगा। बछड़े का कूद कर ऊंचे टीलेपर चढ़ जाना अपने पूर्वजों की वीरोचित प्रवृत्तिका नमूना है। जरा बन्दरराज का भी ध्यान कीजिए, वे तो दिनभर खेलाही करते हैं।

क्या हमको अपने (मनुष्य जाति के) बालकों का खेलना अच्छा नहीं मालूम देता? उनमें भी खेल आगामी जीवन कीदशा बताती है और उन्हे जीवन के योग्य बनाती है। बालक अपने पूर्वजो की नकल करता है। प्रकृति की खेलने की पाठशाला में जो पढ़ाया जाता है रटाई की शिक्षा उसकी भी नकल है। खेलने में बालक को विश्राम मिलता है, भूख लगती है, तन्दुरुस्ती होती है यही नहीं, उसके मन और मस्तिष्क की भी रचना होती है। बालक २० वीं शताब्दि में नहीं जन्मता, और न महलों में जन्मता हैं वह उस कालमें जन्मता है जब मनुष्य गुहावासी थे और प्रालेय के प्रलय से बचते फिरते थे। मनुष्यजाति ने जीवन को जैसे आरम्भ किया था, बालक का सुकुमार मन भी जीवन को वैसे आरम्भ कर, सभ्यता की उन्हीं दशाओं में होता हुआ, बडों का अनुकरण करता हुआ बढ़ता है। मनुष्यजाति में और मनुष्यबालक में उन्नति का क्रम पहचानने से यह सम्बन्ध प्रकाशित होता है— पकड़ धकड़, शिकार, शान्ति, खेती और व्यापार।

इस वीसवीं शताब्दी में जन्मे बालक को जो दिखाई देता है वही खाने का पदार्थ माना जाता है। कोंलेसे लेकर खिलोने तक जो कुछ उन गुल वी हथेलियों में आया, वही मुखारविन्द में गया मानो वही खजाना है, देहके अङ्गोंके अपने होनेकी परीक्षा भी मुह में डालने से होती है। विना वस्त्र के मनुष्यों को भी पहले मुखही "अपना" होगा, पाकट तो ये ही नहीं। जहां रेंगकर चलना आया कि शिकार की सूझी, माताकी कंघी हो, वा पिताजी की अगूठी बच्चेके हाथ लगी कि मुखारविन्द में! अब खिलौने, पक्षी, गुड़ियां सबको पकडने का ही ध्यान होता है और यों बालक "शिकार" की दशामें आ पहुचा। साथही साथ उसे छिपना आ जाता है, तकिए के पीछे, खम्भे के पीछे, माता ही के पीछे, और कुछभी न हो तो अपनी आंखों के सामने हाथ ही करके अपने को छिपा मान कर आगन्तुक कर हंसते हुए झपटना और आंख मिचौनी प्रभृति खेलना आदिम शिकारी मनुष्यो की नकल है और वन्य पशुओं से डरकर उनकी तरह ही छिपना है। साथही, दरवाजे के बाहर "हाबू" गली में जाओ तो "भूत" रात को "काला रीछ" अंधेरे में और कोई चौथे वीर, मनुष्यजाति के उस पुराकाल के स्मारक हैं।

शिकार के साथही साथ लड़ाई और शान्ति दोनों आरम्भ हो जाती है। लाल जी लाठिया लेकर बिल्ली को मारते फिरते हैं तलवार बांधते हैं गुडियों की फौज बना कर किले जीतते हैं। गलियों में लड़कों के दल बनजाते है। 'पार्टी' पार्टी में बहस होती है, राजा की कचहरी होती है, चोर का इन्साफ होता है, साथ ही साथ मट्टी के घर बनाए जाते है, रसोई की जाती है, दुकान जमती है, लेन देन होता है, घोड़ी पर सवार होकर ही फिरना होता है खेती

की जाती है, तोते पाले जाते है, कुत्ते बिल्ली, गिलहरियां तक पाली जाती है, उनसे प्रेम उत्पन्न होता है। इमारतें बनती हैं गुड़ियों के ब्याह होते हैं, और मरी गुड़ियां जलाई जाती है। यही सब कर्म करके मनुष्य जातिने वर्तमान सभ्यता पाई है। फिर व्यापार आरम्भ होता है—जैसे पैसों से जेब भरना, तुलसी के पत्रों को ही खेल में बेचना, कोई कुछ काम करने कहे तो "मुझे क्या दोगे?" पूछना, मिठाई मिले तो चुप रहना, नई टोपी मिले तो मदरसे जाना इत्यादि।

प्रकृति की पाठशाला में मनुष्य जातिने जो १०००० वर्ष में किया है, बालक खेलने की महिमा से ८।१० वर्ष में वही करके जंगली गुहावासी से खासा व्यापारी बन गया। वहां पर बालक ने अपनी गूढ शक्तियों की कवायदमात्र की। किन्तु इस बात पर लोग यह आपत्ति उठावेंगे कि यों धन कमाना, चालाकी, लड़ना या शान्ति सीखे भी सही, किन्तु मानसिक शिक्षा कहां हुई? मानसिक शिक्षा की दृष्टि में तो खेल विश्रामही है, मनएञ्जिन का फालतू धूम निकालने के लिए ढिपनी के समान ही है।

किन्तु खेल का देहगठन में जितना काम है, मस्तिष्क गठन में भी उतना काम है। मस्तिष्क साधारण मांस पिण्ड का विवर्त्त सिद्ध उन्नत रूप मात्र है। देह की आवश्यकता के अनुसार स्नायु बनते वा बढते गए। मस्तिष्क देह का नौकरही तो है। पहले पहल सृष्टि में जब एक पदार्थ को दूसरे से सम्बन्ध करना पड़ता तो आकर्षण बल से उस तक जाना वा उसको अपने पास लाना जरूरी था। कई पास पास के वृक्ष सरक सरक के मिलते हैं और पत्थर लुढककर नीचे आजाता है। इसी साधारण उपाय की उन्नति होते होते कुछ जीवों को रेंगना आया और उसी के विवर्त्त में टांगे

बनी जिनसे जीव दूसर पदार्थ तक जा सकता है। इसी उन्नति के साथ साथ ऊपर के मांस पिण्ड बढकर हाथ बन गए। फिर भिन्न प्रकार के पकडने (घ्राण) के लिए नाक खुल गए और आंख ने तथा कान ने पकड़ने का नया उपाय पा लिया। यह सब आवश्यकतानुसार हुआ और साथ ही साथ त्वक्संवेदन और स्नायु जाल सारे फैल गया और तार घरों की तरह उन तारों का केन्द्र एक मस्तिष्क स्थापन हो गया। अब इन्द्रियों में फैले हुए स्नायु जाल से मस्तिष्क तक चेतना पहुंचती है और वहां से मांस के पट्ठों को आज्ञा मिल जाती है। यो इन्द्रिय चेतनाओं का तन्तुओं के द्वारा जाना जाकर काम करना, और काम की अधिकाई से एक केन्द्र वा तार महकमे के इन्सपैक्टर (मस्तिष्क) का बनना छोटे छोटे जीवों से मनुष्य तक किस प्रकार हुआ है और खेलने ने इसमें कितनी सहायता दी है, इस बात को पाठक बहुत ध्यान देकर पढें। बड़ा आनन्द आवेगा।

एक प्रकार की मच्छियों में मस्तिष्क नहीं होता, केवल सारे देह पर तन्तुजालही बिछा होता है जिसके एक अंश को छूने से स्नायु पर दबाव पड़ने से मछली भाग जाती है वा अपने कांटे बढाकर शत्रु पर हमला कर देती है। वही तन्तुजाल " जेली " मत्स्य के मुंह के चौतरफ कमरबन्द की तरह बंध जाता है और " तारा—मत्स्य " में गलेबन्द की तरह मुंह के ऊपर लिपटा जाकर अपनी शाखाएं सब अङ्गों में फैलाए रहता है।

कीड़ों में, सारे देह में व्याप्त ज्ञानतन्तु की दोहरी गांठ के साथ पीठ में जुड़ा हुआ वही गलेबन्द मुह के पास होता है। यद्यपि देह के प्रत्येक अङ्ग में ज्ञानतन्तु की दो दो गांठें होती हैं, तो भी मुंह के पास की गांठों को अधिक काम करना पड़ता है इस लिए

उन्नति होतेहोते,प्रयोगबाहुल्यसे वह गलेवन्दकी सी गांठें'मस्तिष्क' बन जाती है। उन में गन्ध ग्रहण की शक्ति होती है और रूप भी कुछ कुछ पहचाना जाता है।

के-मत्स्य में भी यही सिर पर गलेवन्द और पीठ पर ज्ञानतन्तुओं का तार होता है, किन्तु यहां गलेवन्द कुछ बढ जाता है। कीड़ों में तो उसे "नासिकामस्तिष्क" कह सकते है किन्तु अब आंखों के निकल आने से मस्तिष्क मे तीन पोटलियां सी बन जाती है और इसे 'नासानेत्र' मस्तिष्क कह सकते है। उससे उच्च जीवों के मस्तिष्कमें इतनाही विशेष है कि नेत्र पोटली और नासापोटली मस्तिष्क में और भी प्रकट हो जाती है और उनके सिवाय ज्ञानतन्तुसंघ कुछ और भी बढ़ जाता है।

यहां से मस्तिष्क का बढना आरम्भ होता है। उस ज्ञानतन्तु के छल्ले से मुहं तो बाहर निकल आता है और ज्ञानतन्तुसंघ उलट कर मेरुदण्ड में घुस जाता है। मुंह से ऊपर ही मस्तिष्क है, उस की पूंछ में, जो मेरुदण्ड में प्रविष्ट है, अब न्यारी न्यारी गांठें नहीं रहीं किन्तु एकही सम्बद्ध रेखा हो गई। मस्तिष्क में सामनेही 'नासिका पोटली' बीचमें नेत्र पोटली और बगल में कर्ण पोटली हुई और बटे हुए मस्तिष्क के बाकी अंशके दो "गोलार्ध" बने रह गए। इन जीवोंसे, मनुष्य पर्यन्त, इन गोलार्धों के बढ़ने का ही विशेष है, नहीं तो मस्तिष्क का क्रम वही रहता है। यह गोलार्द्ध नासिका पोटली से विशेषत और औरों से गौणता से सहायता पाकर बढ़ते जाते है। ये छोटी मछलियों मे नासापोटली के समान, सालमनमीन मे उससें द्विगुण,मेंडक और छिपकलीमें तीनों पोटलियोंसे बड़े,चिड़ियाओंमें मस्तिष्कसें आधे,कुत्तोंमे प्रथम पोटलीत्रयसे तिगुने, और मनुष्यमें प्राय अठगुने हो जाते हैं। खाना अच्छा है वा

नहीं, यह निश्चय करने के लिए मुख के ऊपरही नासा मस्तिष्क उत्पन्न हो जाता है, और देहके उसी भाग को अधिक खतरे रहने के कारण वहीं नेत्र मस्तिष्क हो गया । अब देह–समाज की इस राज धानी में दो प्रतिनिधि आ गए और सब अङ्गोंके ज्ञानतन्तुओं के प्रतिनिधि आ मिलने से उनकी सम्मिलित शक्ति से मस्तिष्क गोलार्द्धरूपी पार्लिमेण्ट स्थापन होगई ।

यही सब बातें मनुष्य की गर्भावस्था से लेकर उसी क्रम में होती है जिस क्रममें कि वह नीच जीवोंसे उच्च जीवों पर्यन्त होती आई। गर्भमें रसांशके चौतरफ डोरी फिर जाती है और वह डोरी छोरोंपर लिपट कर बीचमें धसकर सिरकी तरफ निकलने लगती है। निकलते ही सामने नासापोटली, आंखों से निकलने वाली डोरीसे नेत्रपोटली, कानों से निकलने वाली डोरियों से श्रोत्रपोटली बन कर इन तीनोंसे मस्तिष्क गोलार्द्ध निकलने लगता है और इन सबको लपेट कर इन सबसे बड़ा भाग रोक कर मस्तिष्क १०० में ८५ के अनुपात को पहुंच जाता है ।

(क्रमशः)

हमारी आलमारी।

बाबू रामदीनसिंह की जीवनी। जैनेन्द्रकिशोर लिखित। आरा नागरी प्रचारिणी सभा।

इस पुस्तक में हिन्दी के परम सहायक बाबू साहब का चित्र बहुत अच्छा है। जीवनी अति संक्षिप्त है। बिहारी सभाको बिहार के सर्व प्रधान हिन्दी हितैषी की ऐसी क्षुद्र जीवनी न लिखनी थी। रामदीन सिंहजी के सुयोग्य पुत्र इस कलङ्क को धोवैं कि भारतेन्दु जी की जीवनी कई बरसों तक न निकालने के पाप के प्रायश्चित में उनके पिताकी जीवनी भी नहीं निकलती। इस पुस्तक से हमें मालूम हुआ कि यह आरा की सभा वैद्यक भी करती है, क्योंकि उसने बाबू साहब के इलाज में जान (!) तक लड़ा डाली और और नागरी प्रचारिणी सभाएं कमा खाने की (!) ठीकरा है, इस कारण से बाबू साहब की सहानुभूति उनसे हट गई थी। काशी की सभा से बाबू साहब की सहानुभूति कैसे हटी, यह सब जानते हैं और हमें बड़ा हर्ष हुआ कि आरा की सभा कमा खाने का ठीकरा नहीं है। कैसा ग्रामीण और अनर्गल कथन है। क्या 'प्रणेतृ समालोचक गण' यों बड़ों को गाली दिया करेंगे?

* * * *

आरा नागरी प्रचारिणी सभा का द्वितीय वार्षिक विवरण।

इस सभाकी उचित क्रमोन्नति को देख कर हम बड़े प्रसन्न होते हैं सही, किन्तु कुछ बातें हमें पसंद नहीं है। मेम्बर बढ़ रहे हैं, आर्थिक सहायता दृढ़ होती जाती हैं, बाबू सालिग्राम और पण्डित

लक्ष्मीशङ्कर मिलाए गए हैं, यह सब अच्छी बातें हैं। सभा के आगे अच्छा भविष्य है। दिल्ली में हिन्दी की कानफरेन्स करने के Quixotic विलहे प्रस्ताव को नागरी प्रचारिणी सभाने रोका, किन्तु आरा वाले अश्रुतपूर्व चार व्यक्तिओं का नाम क्यों लेते है? काशी की सभा ने मैकमिलन की पुस्तकों के शोधन का यत्न और उद्योग किया, तो आरावाले भी एक पत्र लिख कर पांचवें सवार की टांग क्यों अड़ाते हैं? सभा के नियत किए विषयों परही पदक क्यों देते हैं? लेख प्रणाली नई क्यों चलाते हैं? उन्हें उचित है कि प्रच्छन्न रूप से सभासे प्रतियोगिता न करके यातो प्रादेशिक हित करें, वा बड़ी सभाके कार्य को शाखा बनकर वा योंही *Supplement* पूरित करें। यह संघर्ष हमें बिलकुल नापसन्द है। यों आरा न चलाकर मिलजुल कर काम करना चाहिए, जिसमें हितवार्ता के शङ्खध्वनि लेखक को अज्ञान से "काशीकी सभा आरा की सभा का अनुकरण करे" न कहना पड़े।

* * * * *

जैनमत समीक्षा। आर्यसमाज, लाहौर।

इस ग्रन्थ से क्षुब्ध होकर स्थान स्थान के जैनियों ने सरकार को प्रतिकार की प्रार्थना की है। क्या जैनी इतनी शताब्दियों में भी ब्राह्मणों की उस सहन शीलता को न सीखे जिससे वे "शिर. श्वा काको वा द्रुपदतनयो वा स्पृशतु तत्" कह सकते और जिसे उनके प्रभु का "वीतराग" नाम सूचित करता है? सबसे बड़े असम्भव और करामात कोमानना ईश्वर वादही है,औरस्वयं ईश्वर वादी होकर औरों को गाली देना कदापि अच्छा नहीं है। अवश्य ही अब ऐसे लोग नहीं होंगे जो किसी धर्म विशेष को ईश्वर

का फेंका हुआ मानते है । धर्ममात्र मनुष्य के सर्वोत्तमभाव है और सभी सच्चे और सभी झूठ है । विशेष करके जैन धर्म को मद्यपान और मांसाहार के प्रचार के कारण कहकर कलङ्कित किया है । इन दो कर्मो से, सूर्य के नीचे, जैनों से अधिक दूर कोई कदाचित ही हो । आज कल जब जातीय एकता की जरूरत है तो ऐसे ग्रंथों का निकलना कदापि हितकर नहीं है ।

स्वामी दयानन्द जी की योग्यता की बात तो उन के साथही गई, किन्तु वर्तमान आर्यसमाज की इस सब धर्मों की निन्दा की ऋणात्मक क्रिया से क्या धनात्मक धर्म रह गया है, उसके विषय मे कार्लाईल ने वाल्टेयर महाशय को जो वाक्य कहे हैं उन्हें उद्धृत करके हम इस पुस्तक की चर्चा को दूर करेंगे । ' चुप रहो. मान्यवर वाल्टेयर महाशय, अपनी मीठी बोली को बन्द कीजिए, क्योंकि जो काम आपके सुपुर्द था वह पूरा हो चुका मालूम पड़ता है । इस महान् या तुच्छ साध्य को आपने बहुत अच्छी तरह सिद्ध कर दिया है कि कृस्तान धर्म के पुराण इस समय वैसे नहीं मालूम देते जैसे छठी शताब्दी में मालूम होते थे । बस अब क्या आपके छे और तीस चौपेजी, और छै और तीस हजार चौपेजी और ' इतरेजी ' कागजोंकी गाड़ियां जो तब और पीछे उसी विषय पर लिखी गई है, हमको इतनी थोड़ी सी बात समझाने को लिखी गई ? किन्तु और क्या ? क्या आप हमें उस धर्म की दैवीआत्मा को नए पुराण में, नए वाहन और वस्त्र में रखने में सहायता दे सकते है जिसमें हमारी आत्माएं जो और तरह नष्ट होती है, बच जांय ? बस, क्या आप में वैसी शक्ति नहीं है ? जलाने को पलीता तो है ! किन्तु गढ़ने का हथौड़ा नहीं ? तो हमारे धन्यवाद लें, और अपने को यहां से दूर ले जावें "

निवेदन—नागरीप्रचारिणी सभा के विशेष अधिवेशन में पंडित किशोरी लाल गोस्वामी ने चढ़ी व्रजभाषा की एक कविता पढ़ी थी, जिसके अन्त में यह था।—

यहै राष्ट्रलिपि भारत की नागरी नवेली।
जाकी प्रभुवर म्यक्डानल रोपी पर वेली॥
करि पल्लवित कलित (१) कुसुमित पुनि फलित भावसों।
आदरनीय विलोचनते इहि लखहु चावसों॥
लिखिहै सदा नागरी प्रेमी नाम तुह्मारो।
स्वर्णाक्षर ते अरु करिहै जगमाहि उँजारो॥

पण्डित अयोध्या सिंह उपाध्याय ने सरल और ठेठ हिन्दी में बड़ीही भावमय कविता पढ़ सुनाई थी। किन्तु इन दोनों से रोचक और विलक्षण एक प्रवासिनी बङ्गमहिला की "निवेदन" नामक बङ्गला कविता थी, जो देवनागरी अक्षरों मे छापकर बांटी गई थी। मानो इस ऐतिहासिक अवसर पर बङ्गभाषा की सौभाग्य लक्ष्मीने बङ्गमहिला के रूपमे अपनी बहन हिन्दी का पद स्वीकार किया और "भारतेर श्रेष्ट भाषा दुःखिनी नागरी हाय" की आह सुनकर देवनागरी अक्षरों को स्वीकार किया। यह शुभ मिलाप नया होने पर भी, हम आशा करते हैं, चिरस्थायी होगा। 'निवेदन' कविता इतनी रोचक थी कि उसमें से कुछ हम यहां उद्धृत करते है। मिर्ज़ापुर के बाबू काशी प्रसाद ने एक इण्डियन प्रेसकी रामायण, और मि० जैनवैद्य ने एक सांगानेरी साड़ी बङ्गमहिला के लिए अर्पण की, और सबने इस कविता का साधुवाद किया।

---

(१) क्या 'कलियो वाली' से मतलब है? तो इस अर्थ जरती शब्द को मानने वाली कविता की निरङ्कुशता धन्य है"

पूर्ण प्रभु भ्यरुङ्कानन

सिंचिया उत्साह जल

करिलेन जे लतिका स्नेहभरे अङ्कुरित।

तुमी तारे करो प्रभु फल फूल सुशोभित ॥

* * *

सकलङ्क शशि नय, अकलङ्क 'सुधाकर'

युगल मूर्त्तिद्वय 'श्याम' आर 'श्रीराधा' र ॥

आर देव गण कतो

होये छेन एकत्रित

करियोर स्वभाषार मलिनता विमोचन।

नाना रत्ने भूषा परोग करिवेन सुशोभन ॥

* * *

विजाति साहित्योद्याने सुगन्धि प्रसून तूले।

गाथि परावेन माला निज मातृभाषा गले ॥

दो जीवन चरित्र। ❀

इन दोनों जीवन चरित्रों को साथ लेने के कई कारण हैं, जिनमें सब से पहला यह है कि दोनों ही हिन्दी साहित्य के भूषण हैं। यदि "कर्नल टाड कुलीन बिन क्षत्रिय यश क्षय होत" तो भारतेन्दु बिना हिन्दी क्या और कैसी होती इसकी कल्पना भी हम नहीं कर सकते। उदयपुर दरबार से दोनों का प्रेम था। दोनों ने परिश्रम

कर्नल जेम्स टाड का जीवन चरित्र। गौरीशंकर हीराचन्द ओझा। खड्गविलास प्रेस बांकीपुर। ४० पृष्ठ। चार आने। भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र का जीवन चरित्र। श्रीराधाकृष्ण दास। तारा प्रेस। स्वदेशवस्तु प्रचारक कम्पनी २१ न बुलानाला काशी। १०७ पृष्ठ। छ आने।

से भारतवर्ष की सेवा की और दोनों ने अल्पायु पाई। (टाड १७८२-१८३५ ३६ वर्ष) (भारतेन्दु १८५०-१८८५, ३५ वर्ष) यदि टाड़ साहब भारत संबन्धी इतिहास के पिता हैं (पृ ३९) तो भारतेन्दुने हिन्दी को हरिश्चन्द्री ढाल में ढाला। इन दोनों ग्रन्थों में ही खड्गविलास प्रेस की शिकायत है, भारतेन्दु जी की 'कला' को पूरी न करने की और जीवन चरित्र बीस वर्ष तक न छापने की, और टाड के राजस्थान का अनुवाद न छापने की। किन्तु हमें यह लिखते हर्ष है कि स्वर्गीय रामदीनसिंह जी के पुत्र ने अपने पिता के इन दोनों कार्यों को पूरा करना विचारा है. और सङ्कल्पमय भगवान इस सङ्कल्प को, हम अभागों के सम्बन्ध से तो नहीं, पर उन दो विभूतिमान् ' जीवों के सम्बन्ध से पूरा करा देवें। दोनों ग्रन्थों के लेखक भी ऐसे कि जो अपने अपने विषय के अधिकारी है, और जिनसे अच्छा लेखक, उस विषय का, नहीं मिलता। उदयपुर इतिहास कार्यालय के अध्यक्ष, और टाड़ की भूलों को पकड़ने वाले हिन्दुओं के टाड़ ओझाजी से अच्छा टाड चरित्र और कौन लिखता ? भारतेन्दु जी की मण्डली के रत्नों में से बचे हुए विरलों में उनके फुफेरे भाई से अच्छा उनका स्तुति कर्त्ता कौन हो सकता ?

टाड साहबने इतिहास की भूलें सस्कृत की अनभिज्ञता से की है। उनका जीवनव्यापी परिश्रम और विदेशियों के इतिहास के लिए प्राणान्त यत्न उदाहरण योग्य है। उनने राज पूतों की स्तुति की है, और अपने ग्रन्थ के समर्पण में उनको शस्त्राधिकार और स्वतन्त्रता देने के भाव जताए है। आज तक कोई भी योरोपियन वा देशी शोधक ऐसा भाग्य शाली नहीं हुआ कि ऐतिहासिक सामग्री संग्रह करने में और परिश्रम में उनकी बराबरी कर सकै (पृ. ३२) टाड साहब को अपनी प्रसिद्धि की तृष्णा न थी (३७)

और पैसों को होती ही क्यों ? ऐतिहासिक लोग रूखे होते हैं किन्तु ओझा जी को भी अन्त में जोश आगया है और अपनी सीधी भाषा में वे उसे यों प्रकाश करते हैं " १७ वर्ष की किशोर अवस्था ही से उन्होंने संसाररूपी विषम समुद्र में प्रवेश कर उसकी तरल तरङ्ग के अनेक धक्के सहने पर भी पूर्ण साहस और अथक परिश्रम के साथ ३६ वर्ष के अल्पकालही में अपने कर्तव्य रूप नौका को किस तरह पार पहुँचाया। जीवन के प्रत्येक विभाग में यश और प्रतिष्ठा ने उनका साथ दिया। पश्चिमी भारत के प्रामाणिक मानचित्र उनने बनाये और भारत के क्षत्रियों के पुरषार्थ और किसी को जो पहले अन्धकार में पड़े थे उन्हें अपने महान श्रम से प्रकाश में लाकर उनके यश का प्रवाह संसार में फैला दिया "। देशियों के धर्म सम्बन्धी विचारों का वे पूरा आदर करते थे किन्तु दुर्गुणों की बुराई करते थे। इस में भी वह निर्भीक और उच्छृङ्खल भारतेन्दु के मत " हरिपद मत रहे उपधर्म छूटै ' को याद दिलाते है।

भारतेन्दुजी के इतिहास प्रसिद्ध और प्रशस्य वैष्णव कुल का वर्णन ४६ पृष्ठों में है। सत्य है " शुचीनां श्रीमतां गेहे योगभ्रष्टो भिजायते " बङ्ग देश पर अँगरजों का अधिकार कराने वाले किन्तु कृतघ्नता के छले सेठ अमीचन्द, पुराने पण्डितों की कथाओं में प्रसिद्ध दानी ' काले हर्ष चन्द ' और बुढवा मङ्गल के दूलेह, सुकवि वैष्णा गोपालचन्द्र जी का भक्तिमय चरित्र पढने लायक है। सरस्वती में जो गोपालचन्द्र जी का और हरिश्चन्द्र जी का जीवन चरित्र निकला था उसीमें कुछ बढाकर यह पुस्तक प्रस्तुत हुई है। पहले तो हमे राधाकृष्ण दास जी की शिकायत क्रोध से करनी है कि प्रताप नाटक के पीछे आज उनने पुस्तक निकाली और फिर अपना करम ठोकना है कि बीस वर्ष पीछे एक छोटी सी जीवनी

निकली और वह भी एक घरक मनुष्य की लिखी! अस्तु अब खड्गविलास और भारत मित्र सम्पादक से आशा होती है कि वे लोग भी जो भारतेन्दु जी के गोलोक वास के पीछे जन्मे है, उस प्रात स्मरणीय मूर्त्ति को धुँधली न देखेंगे। कैसा बिलक्षण चित्र है, जो दूर होने पर भी अपना ही है! कहां तदीय समाज की प्रतिज्ञाए और कहां पुरी की तहकीकात! कहां "मिथ्या अभिमानी पतित झूठो कवि हरिचन्द्र" कहना और कहाँ अपने चौतरफ नारि के फन्दों को जकड़ना! कहां ऋणजाल में उलझना और कहां वह अलिफ लैला की सी उदारता! कहां भारत नक्षत्र का गुरु मानना और कहां कर्तव्यवश उनही की निन्दा! विरुद्ध धर्मों का एकत्र रहना परमेश्वरांश इसी मूर्त्ति में देखा!!!

"यह महाशय भाषा के उत्तम कवि थे इस प्रकार के वाक्य लिखकर जो लोग आप के बिछोड़े पर शोक करते हैं वह हमारे प्यारे हरिश्चन्द्र की हतक करते हैं हमसे यह सहन नहीं हो सकता। हम कहते है कि जो लोग प्यारे भारतेन्दु के विषय में इतनाही जानते हैं वह चुप रहें हैं ऐसे फीके वाक्य कह कर भारतेन्दु के चकोरों को दुख न दें" (पृष्ठ १०६)

भारतेन्दु चरित्र का एक और पृष्ठ है, जिसे बाबूराधाकृष्णदास अङ्कित नहीं करसकते और न भक्तों से इसकी आशा करना चाहिए। भारतेन्दु जी के चरित्र की बिलासिता को यद्यपि उनके गुण सन्निपात में ही हमें देखना चाहिए, तथापि निर्दोष केवल ईश्वर है इससे किसी और की लेखिनी से उस चित्र को पान का हिन्दी भाषा का हक है।

नागरी प्रचारणी सभा को भारतेन्दु जी के हस्त लेख मुद्रा प्रभृति जो कुछ मिल सके उन्हें खोज कर एक ग्लासकेस में रखना चाहिये भारतेन्दु जी के मित्रों से एक हमारा प्रश्न है। ना दुभक्ति

सूत्र के विषयमें कई लोगोंने कहा है कि वह ग्रन्थ भारतेन्दुजी का रचा हुआ है अर्थात् पहले यह ग्रन्थ नहीं था। क्या वे इस बातका प्रमाण दे सकते है कि भारतेन्दुजी ने अनुवादही किया है, वा मूल भी उन्होंने बनाया है?

बडे खेदका विषय है कि इस पुस्तक में छापेकी भूलें बहुत रह गई है जिससे बढिया कागज़ और छपाई छिप गई है।

दोनो पुस्तकें बहुत अच्छी है।

गीतार्थपद्यावली,—मराठीमें गीता काकई छन्दोंमें तात्पर्यानुवाद। शिवचन्द बलदेव भरातिया। निर्णयसागर प्रेस, चार आणे। इसमें प्रथम दो अध्यायोंको एक कर दिया गया है। कहीं गीता के श्लोकों का अर्थ बढाया है और कहीं एक पद्य में कई श्लोको का तात्पर्य रक्खा गया है। अनुवाद सुरस और मूल का अनुयायी हुआ है छन्दोंकी बहुतायत से दार्शनिकग्रन्थ की कठिनता हट गई है। हिन्दी वालों को इतने अधिक छन्दों का प्रयोग अवश्य चलाना चाहिए किन्तु कठोर खडी बोली में यह जरा कठिन काम है।

सुरसती के संक्षेपसे उदाहरण—

प्रपन्नकल्पवृक्षातं तोत्रवेत्रधरा सदा।
ज्ञानमुद्रा नमी कृष्णा, गीतामृतसुदोहका॥
आत्म्याला जो जाणतो मारणारा
किंवा जाणे मृत्यु ते पावणारा।
ते दोघेही जाणतीना अशानें
आत्मा मारी ना मरे तो कशाने॥
सकलते कलते हरिला गती
बिसरुनी सरुनी पुढुलागती
नरमती रमती वरि तत्पदा
सुकरते करते सुखसंपदा॥

ज्ञानकाण्ड को उचित प्रधानता दी गई है।

* * *

"सरस्वती" का "शुक्र"

(एक ज्योतिष सम्बन्धी लेख पर विचार।)

मुझे इस बात से हर्ष है कि **सरस्वती** भी अपने पाठकों को ज्योतिष सम्बन्धी लेखों के द्वारा आनन्द देना चाहती है। जहां तक मुझे स्मरण है अभी केवल दो ही ऐसे लेख इस पत्रिका में लेखे गये हैं। एक मङ्गल का और दूसरा शुक्र का। परन्तु दोनों में से एक की भी गणना उत्तमश्रेणी के लेखों में नहीं हो सकती। पहला तो अधूरा था, क्योंकि मगल ऐसे ग्रह का वर्णन दो चार पेजोंमें करना कठिन नहीं वरन असम्भव सा जान पड़ता है। कहने की आवश्यकता नहीं कि मङ्गलके बारेमें कितनीही पुस्तकें लिखी गई है और अ। भी कितनी लिखी जा रही हैं।दूसरा जिसके ऊपर मैं कुछ विचार करना चाहता हू अशुद्धियों से भरा हुआ है और इन्हीं अशुद्धियों को दिखलानेके लिये मुझे आज लेखनी उठानी पड़ी है। जहां तक लेख से मालूम होता है लेखक महाशय ने ध्यानपूर्वक नहीं लिखा; क्योंकि कितनी अशुद्धियां ऐसी हैं जोकि साधारण शिक्षित लोग भी नहीं कर सकते। मैं यह नहीं चाहता कि इस विषय पर कोई लेख न लिखै परन्तु जो कुछ लिखा जाय पूरी तौर से शुद्ध और साफ हो। अधिक शोचनीय विषय यह है कि सरस्वती ऐसी उत्तम पत्रिका में ऐसे लेख को स्थान दिया

गया। मैं दोही चार अशुद्धियों को दिखला कर पाठकों को लेख की अनुत्तमता का परिचाय देता हू।

२–प्रथम ही पक्ति में ऋतु शब्द का क्या अर्थ है, यह मेरी समझ में नही आता। जहां तक मुझे मालूम है छै ऋतु अधिक प्रसिद्ध हैं परन्तु ज्योतिष में कहां पर यह शब्द किसी विशेष अर्थ का सूचाक है नही चालता। मेरी समझ में लेखक महाशय ने इसे उस काल के अर्थ में लिया है जब तक कि यह ग्रह देखा पडता है। कदाचित् यह किसी अंग्रेजी शब्द का अनुवाद हो। परन्तु ऐसे सन्देह जनक शब्दों का ऐसे लेखों में कदापि प्रयोग न करना चाहिये। लेखों के सारांश उनके शब्दो ही से निकलते हैं इस लिये शब्दों के प्रयोग पर बिशेष ध्यान देना चाहिये। ऐसे कठिन विषयों में थोडी भी भ्रान्ति होने से यथार्थ वातों का भी जानना कठिन हो जाता है।

३—थोडी दूर आगे चाल कर लेखक महाशय ने एक श्लोक **सूर्य्यसिद्धान्त** से उद्धृत किया है। इसके हिन्दी अनुवाद में "ताराओं" शब्द का प्रयोग सर्वथा अशुद्ध है क्योंकि एक **तारा** के साथ दूसरे तारा का कदापि स्पर्श नहीं हो सकता। अनुवाद करते समय लेखक महाशय को विचार करना चाहिये था कि मैं क्या लिख रहा हूँ? कहीं तारा भी अपने स्थान को छोड कर ग्रहों की तरह सूर्य्य की परिक्रमा करते हैं? यदि नहीं करते तो स्पर्श क्यों कर हो सकता है? श्लोक में 'तारक' शब्द भी मादि पञ्च तारा ग्रह के अर्थ का वोधक है।

४—आप तीसरे पाराग्राफ के प्रारंभ में लिखते हैं "इन

कारणों से यह स्थिर किया गया है कि यह ग्रह पर प्रकाशित **खगोल** है जो सूर्य्य के चारो ओर २२४ दिन में परिक्रमा कर आता है।,, इसमें खगोल शब्द का क्या अर्थ है ? । लेखक महाशय जरा भी तो ध्यान देते कि खगोल तो (Celestial Sphere) को कहते हैं। ज्योतिषी इसी गोले पर सब तारा और ग्रहों के स्थान को अङ्कित करता है और इसी गोल पर चापीय त्रिकोणमिति के सूत्रस्वरूप घोड़ों को बात बात पर दौड़ाता है। लेखक महाशय के कहने का कदाचित यह तात्पर्य्य था कि इस ग्रह का स्वरूप गोल (*round*) है। यह बात भी वस्तुतः ठीक नहीं है क्योंकि ग्यालीलियो ने (*Galelio*) सन् १६१० ईसवी के सेप्टेम्बर महीने में प्रथम वेध से जाना कि शुक्र का बिम्ब गोल (*round*) नहीं है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि इस ग्रह की आकृति में चान्द्रमाही कासा विकार होता है जोकि ग्यालीलियो ने पहले ही जान लिया था। परप्रकाशित क्यों है इसका भी कोई सच्चा सबूत नहीं दिया गया। यहां पर लेखक महाशय को **कमलाकर** भट्ट के **तत्वविवेक** में लिखित कारणों को उद्धृत करना चाहिए था। मैं भी अपने पाठकों से इस बात की प्रार्थना करता हू कि इस विषय पर कमलाकर के तत्वविवेक को अवश्य देखैं। कमलाकर की तीव्र बुद्धि का यहां पूरा ज्ञान प्राप्त होता है।

८—चातुर्थ पारा ग्राफ में इस बात का प्रमाण कि पृथ्वी सूर्य्य की परिक्रमा **वस्तुतः** वृत्ताकार मार्ग में करती है, कुछ विचित्र ही है। यह कदापि नहीं माना जा सकता कि सूर्य्य बिम्ब के व्यासार्द्ध का कोण जो हम लोगों के नेत्र के पास बनता है हर

ऋतु में, क्या जाड़ा क्या गर्मी, वस्तुतः समान होता है। यह भी युक्ति से सिद्ध है कि सूर्य्य कभी पृथ्वी के समीप आता है और कभी दूर चला जाता है। प्रति दिन सूर्य्य विम्ब के व्यासार्द्ध का कोण भिन्न भिन्न होता है। उसका महत्तम (सब से बड़ा) मान दिसेम्बर की ३१ वी तारीख को १६°, १७, ८, होता है और न्यूनतम (सब से छोटा) पहली जुलाई को १५°, ४५, ५ होता है। यदि पृथ्वी का मार्ग सूर्य्य के चारो तरफ वृत्ताकार ही मान लिया जाय तो न्यूटन का आकर्षण सिद्धान्त (Newton's Law of Gravitation) बिलकुल अशुद्ध हो जायगा। न्यूटनने यह सिद्ध किया है कि जितने ग्रह सूर्य्य सम्प्रदाय (Solar system) में हैं सब एक दूसरे को एक ऐसे बल से खींचते हैं जो कि ($\frac{१}{अन्तर^२}$) के समान निष्पत्ति रखता है (Varies inversely as the square of the distance) अर्थात्, दूरी अधिक होने से, दूरी के वर्ग के हिसाब से, आकर्षण कम, और कम होने से उसी दूरी के वर्ग के हिसाबसे अधिक होता है। सूर्य्य भी सब ग्रहों को ऐसेही बल से अपनी ओर खींचताहै और गति विद्या (Dynamics) से जाना जाता है कि सब मार्ग शङ्कुच्छिन्न (Conic sections) अवश्यही होंगे। ग्रह फिरलौटकर अपने पूर्व स्थान पर आते जाते हैं इससे शङ्कुच्छिन्न अवश्यही दीर्घवृत्त होगा (क्योंकि दीर्घवृत्त के सिवाय, दोनो तरह के शङ्कुच्छिन्न, परवलय और अतिपरवलय, अनन्त दूरी पर मिलते हैं, और यदि ग्रहों का मार्ग वैसा होता तो ग्रह लौट कभी न आते) जिस की एक नाभी में सूर्य्य स्थापित रहेगा। अतः पृथ्वी भी सूर्य्य की परिक्रमा एक दीर्घ वृत्ताकार मार्ग में करती है। यह केवल

मोटे हिसाब (Rough calculation) के लिये मान लिया जाता है कि पृथ्वी वृत्ताकार माग में चलती है। यथार्थ में यह ठीक नहीं है और न उत्तम गणना के लिये कदापि ऐसा मानना चाहिये।

६—यह भी अशुद्ध है कि पृथ्वी की गति सर्वदा एक सी रहती है। जब पृथ्वी दीर्घवृत्ताकार मार्ग में घूमती है तो अवश्य कभी कम और अधिक बेग से चलेगी क्योंकि वेग, और केन्द्र से स्पर्श रेखा पर लम्ब, दोनों का घात सदा स्थिर रहता है (See Dynamics of a particle) योंही शुक्र भी वस्तुतः सूर्य्य के चारों तरफ एकही दीर्घ वृत्ताकार कक्षा बनाता है। यह हम मानते हैं कि इसकी कक्षा वृत्त के आकार से वहुत मिलती है और इसको वृत्ताकार मानलें तो कोई हर्ज नहीं परन्तु पृथ्वी के मार्ग को कदापि वृत्ताकार नहीं मान सकते।

७—लेखकी शुद्धि का एक और उदाहरण लीजिये। लेखक महाशय कहते हैं कि जपच पृथ्वी की **व्योमकक्षा** अर्थात् **क्रान्तिवृत्त** है। आप को यह नहीं मालूम कि व्योमकक्षा और क्रान्तिवृत्त में क्या अन्तर है ! व्योमकक्षा तो उस मार्ग को कहते हैं जो कि पृथ्वी वास्तव में सूर्य्य के चारो ओर बनाती है परन्तु क्रान्तिवृत्त तो एक महावृत्त खगोल (Celestial Sphere) का है जो कि वह मार्ग है जिसे ज्योतिषी प्रति दिन सूर्य्य के स्थान की अङ्कना गोल पर करके उसका वार्षिक मार्ग निकालता है। यह ध्यान देने की बात है कि व्योमकक्षा किसी आकार की हो परन्तु खगोल के केन्द्र से और उसके हर एक विन्दु से यदि रेखा दी जायें तो वे सब विन्दु जिन में ये सबरेखायें खगोल को काटेंगी

मिलकर एक बृत्त उसपर बनावेंगे। पृथ्वीकी व्योमकक्षा से जो एक ऐसा बृत्त प्राप्त होता है उसी को **क्रान्ति बृत्त** कहते हैं।

अब मैं अधिक छिद्रान्वेषण न करके इस लेख को यहीं समाप्त करता हूं परन्तु पाठकों से निवेदन है कि वे स्वयं हमारी बातों पर विचार करैं और देखैं कि कहां तक उनमें सत्यता सप्रमाण है। मैं यहां यह विचार नहीं करता हूं कि कितनी उत्तम बातें शुक्र के विषय में छोड़ दी गई हैं जोकि पाठकों को बहुत ही मनोरञ्जक होतीं। जैसे शुक्र के चारो ओर वायुमण्डल होना, शुक्रका अपने अक्षपर घूमना, (किसने पहले पहल जाना कि शुक्र अपने अक्षपर घूमता है या नहीं) और शुक्रके भी कोई उपग्रह (Satelite) हैं या नहीं इत्यादि बातें रह गई हैं।

कमलाकर द्विवेदी।

* * * *

प्रेरित पत्र।

सम्पादक महाशय,

सरकार गवर्मेन्ट प्राचीन इतिहास प्रसिद्ध, देशोपकारी लोगों के मकानों पर स्मारक लगाना चाहती है। जयपुर के एक मेम्बर के प्रस्ताव पर नागरी प्रचारिणी सभा ने भारतेन्दु जी के स्थान पर स्मारक लगाने का यत्न करना बिचारा है। काशी के बिद्वानों से निवेदन है कि घरू लड़ाई छोड इस मौके पर (१) श्री १०८ पंडित काका रामजी (२) श्री १०८ गौड़स्वामी जी और श्री १०८ विशुद्धा नन्दजी और (३) श्री १०८ बालशास्त्री जी के स्थानों पर स्मारक लगवावें। महामहोपाध्यायों की गुरुदाक्षिणा का यह अच्छा अवसर है। उत्तर भारत के सभी विद्वान इनकी कृपा है, और उन का काशी में सरकार से स्मारक होना किसे इष्ट नहीं है? क्या सुदर्शन के सम्पादक इस काम में अग्रसर न होंगे ?

काशी का एक हिन्दू।

सूचना।

अक्टोबर नवम्बर की समालोचक की संख्या में पृष्ठ ११३ ११४ में खेल भी शिक्षा है छपा था। उस के पीछे व्यय का एक फार्म छपा है। कृपा करकें व्यय कें पृष्ठाङ्क ११५ ११६—प्रभृति को काट कर १ २ ३. प्रभृति ८ तक बना लें। तदनुसार खेल भी शिक्षा है के अवकें अङ्क में पृष्ठाङ्क ११५से लगाए हैं। अब व्यय जब मईके अङ्क में छपेगा तो उसमें पृष्ठाक ९ क अंक से आरम्भ होगा और समाप्त होने पर रङ्गीन टायटल पेंज दिया जायगा जिससें पृथक ग्रन्थ बन सके।

पहली अप्रैल के तार समाचार।

प्रिन्स विक्टर दिलीपसिंह पञ्जाब के छोटे लाट बन कर आने वाले हैं। रूसी सेना में तीन सेनापति ऐसे हैं जो जीवहिंसा के भयसे जल को सात २ बार छान कर पीते हैं।

चाण यूनिवर्सिटी में एक भविष्य पुराण की पुस्तक रक्खी है। उसमें कलियुग में कृष्णावतार का बहुत वर्णन लिखा है। असुरोंने भगवान को गर्भमें आतेही चौतरफ से आक्रमण आरम्भ किया और गर्भहत्या करना चाहि। असुरों के रोज चलने वाले, सातदिन में चलने वाले चौड़े चौड़े शस्त्र अस्त्रों ने बहुतही बौछाड़े की, किन्तु देवताओंने एक गुप्त माया थोड़े दिन पहले चलाई थी, जिससे देवताओं के अस्त्रोंने भी उत्तर नहीं दिया! असुरों में गोकलि, मकराज और सिडीराम, महामद, तो वसुदेव और नन्दराय को घेर कर बैठ गये थे, और तीन तीन दिन उन्हें दम न लेने दिया। वसुदेव जी ने अपनी स्त्री को पानी के पार भेज दिया था और जब उनके गर्भ से योग माया ने जन्म लिया तो इधर नन्द राय को " तमद्भुत बालकमम्बुजेक्षणं " की बधाइयां मिलने लगी। नारद मुनि ने अपने भण्डार में से एक पुरानी कथा निकाली कि लोगों के कहने से बकरे को कुत्ता नहीं मानना चाहिए (लम्बी धोती की शोभा तभी तक है, जब तक मुहं न खोला जाय) यमुना जी का काला जल नए भगवान के चरणों तक बढ गया था, सो अब उनके लगतेही वह जल नीचे बैठकर " सुनर सुगाध " हो जायगा। पास ही एक काला दाढ़ी वाला असुर एक दूसरी माया को शिला पर फेंक कर चूर कर रहा था, किन्तु वह माया मानो कहती थी! " किम्या हतया मन्द। जातस्तव विनासकृत् "। सब दिशाओं में पूरा पूरा आनन्द छा गया, और भक्त लोग गाने लगे " गोरे नन्द यशोदा गोरी तू कस कारो जायो:? "

प्रश्न (डाक्टर आशुतोष मुखोपाध्याय से) जब मनके लड्डू फीके होते है, तो सवा मन के लड्डू, जो अपने प्रतिवर्ष पचास पचास चिलकौआ विश्वविद्यालय को दिलाने के लिए फोड़े थे (क) आपको (ख) रलेसाहब को किस स्वाद के थे ? गणितज्ञ! इसका उत्तर दीजिए।

सब बनन एपरिल फूल फूल। होली के फूल हग लगत सूल ॥
ये हाय! उड़ावत अपनी धूल। निज गौरवताको बानि भूल ॥

(नागरीनारद)

समालोचक

भाग २] मासिकपुस्तक [संख्या २२

वार्षिक मूल्य १॥)] मई १९०४ [यह संख्या ≡) आने

विषय ।

प्रोप्राइटर व प्रकाशक ।

मिश्टर जैन वैद्य, जौहरी बाज़ार, जयपुर ।

Printed at the Medical Hall Press, Benares

प्राप्तिस्वीकार।

निर्णयसागर प्रेस, बम्बई ... ब्रजविलास।

बाबू शिवप्रसाद, प्रयाग · · करपल्लवी, गुप्तलिपि।

प० ब्रजवल्लभ मिश्र, जयपुर वैभाषिक व्याकरण शब्दावली।

बाबू परमानन्द, आरा · परमार्थपङ्क्तिप्रकाश।

बाबू गङ्गाप्रसाद गुप्त, काशी · · पन्नाराज्य का इतिहास।

प० नारायण पांडे, मुजफ़्फ़रपुर हिन्दी भाषा प्रचारिणी सभा का वार्षिक विवरण।

श्री राधाचरण गोस्वामी, वृन्दावन, गोपिका गीत।

वैदिकप्रेस, अजमेर ·· · · छान्दोग्यभाष्य का नमूना।

इस सख्या के साथ एक सुन्दर हाफटोन चित्र है। जिन ग्राहकों ने वी० पी० लौटा दिया है वे भी यदि चाहें तो १।≡) भेजकर यह चित्रवाला अङ्क पासकते है, क्योंकि और सब अङ्क तो उनको मिले ही है। अब हमें इस वर्ष के दो अङ्क देने रहे, इस लिए जिन महाशयो को वी० पी० लौटाना ही स्वीकार होवे अब भी लिख भेजें, जिसमें हम झंझट मे न पडे। आगामि वर्ष के लिए ग्राहक होने की सूचना पहले आने से पत्र भेजे जाया करेंगे, ऐसा दृढ़ निश्चय करना पड़ा है। समय समय पर चित्र भी मिला करेंगे।

समालोचक

२ भाग | मई १९०४ | २२ संख्या

षोडशपदी काव्यमाला।

हिन्दी भाषा

(१)

भाषा! त्वदीय सुत आज तुझे मनाता।
तेरे बिना सुख कहीं भव में न पाता॥
देखे रसप्रद पदार्थ अनेक मैंने।
पाया न किन्तु जननी सम एक मैंने॥

* * *

सेवा बनी न कुछ भेंट हुई न भारी।
अद्यापि मा! कर सका नहिं बात प्यारी॥
है शोच्य सो सुत सदा जग में अभागा।
जिस से न मातृपद का कुछ कष्ट भागा॥

* * *

देवी! प्रताप जननी! हरिचन्द माता!
भाषा समूह अब नव्य प्रभा दिखाता॥
किन्तु प्रधान पद स्वामिनि! वेष तेरा।
निःश्रीक देख मन सुस्थिर है न मेरा॥ १॥

* * *

हैं देशवाग् जितनी कविता सभी में।
देखी न किन्तु अब भी वह हा तुझी में ॥
बाणी विभिन्न निज काव्य प्रथा चलाई।
ऐसी अशक्ति अपनी सबने दिखाई ॥

* * *

तेरे सुपुत्र हरिचन्द्र प्रताप जैसे।
पाए सुपद्य लिखने वह भी न ऐसे ॥
जिस्से कि दोष यह भी रहने न पाता।
काव्योपयुक्त लगती अब तू सुमाता ॥

* * *

तो भी सुरम्य रचना वह दे गए हैं।
भण्डार पूर्ण करलें कवि जो नए हैं ॥
खेती लगा, खनन की बहु कूप वापी।
सींचै, मिले, अब उन्हें फल जो प्रतापी ॥

* * *

अत्यन्त कर्णकटु शब्द समूह शाखा।
यूरोप-वाक्कवि-गिरा; नहिं मातृभाषा ॥
आश्चर्य ! आर्यसुत. भारत सद्गिरा को।
धिक्कारते, न अपनी मति दुर्भरा को ॥

* * *

पूजोपहार यदि षोडश रम्य पाऊं।
इच्छा यही कि जननी पर मैं चढाऊं ॥
हूं रिक्तहस्त, पर भाव कुबेर सा है।
है हर्म्य स्वप्न, पर पास न झोंपडा है ॥

श्रीराधाकृष्ण मिश्र।

अत्र, तत्र, सर्वत्र ।

क्या संस्कृत हमारी भाषा थी? समय के फेर से यह प्रश्न भी अब विवाद का विषय होगया है और बौद्ध साहित्य के प्रेमी और पक्षपाती सिद्ध करते हैं कि संस्कृत भारतवर्ष की भाषा (सर्वसाधारण की बोलचाल) कभी भी न हुई। गत दो महीनों से लण्डन की एशियाटिक सोसाइटी में इस विषय का अच्छा विवाद चल रहा है। अवश्य ही पुरैतिहासिक (prehistoric) वैदिक काल की बात छोड़ देनी चाहिए, किन्तु यह सिद्ध करना कठिन नहीं है कि ईसवी सन् के प्रारम्भ में संस्कृत सब की भाषा थी। आजकल यदि इङ्गलैण्ड में समाचारपत्र और रेल तार न हों, तो वहां भी कई प्रकार की 'प्राकृत' भाषाएं चल जांय, और इनके होते भी टाइम्स और रस्किन की जो अंग्रेजी है, वह वेल्स और बार्डरलैण्ड की अंग्रेजी कभी नहीं है। रही यह बात, कि चक्रवर्ती अशोक ने अपने लेख पाली में लिखवाए, नाटकों में सबको समझाने को विदूषक प्राकृत में मजाक करता है, और संस्कृत केवल ब्राह्मणों की भाषा थी। इसपर वक्तव्य यह है कि साधुभाषा और व्यवहार की भाषा सदा ब्राह्मणों ही की होती है, भेद इतनाही है कि इङ्गलैण्ड में ब्राह्मण (साहित्य-सेवी) घृणा से नहीं देखे जाते, और सदा बदलते रहते हैं, और यहां ब्राह्मणत्व जन्म के अधीन है। आम्निबस हांकने वालों की भाषा समाचारपत्रों की भाषा से भिन्न है, और भारतमित्र की भाषा दिल्ली के कहारों की भाषा नहीं है। टेनिसन के 'ओल्ड रोवर'(Old Rover) की भाषा देखकर क्या कह सकते हैं कि साधु अँगरेजी केवल अंग्रेज़ ब्राह्मणों की

भाषा है? अशोक के काल में शिथिल होकर संस्कृत फिर प्रबल हुई, क्योंकि पाली और मागधी ग्रन्थों की टीकाएं संस्कृत में लिखी गई और जब बौद्धों का निर्वासन संस्कृत सेही हुआ तो अवश्यही वह सर्वगम्य होगी। वर्तमान काल में अवश्यही संस्कृत का बुरा काल है, और उसका भारत वर्ष की भाषा होना स्वप्नही है। अब का भारतवर्ष संस्कृत के भारतवर्ष से बड़ा है, और अब वह केवल ब्राह्मण पुरुषों ही की भाषा रह गई है, अब्राह्मण और स्त्रियें इससे पृथक् है। पहिले पिक, तामरस, नेम आदि शब्द, और कई ज्योतिष शब्द, संस्कृत ने यावनी भाषाओं से लिए थे, और भवभूतिकाल में पाली से भी शब्द लिये गए। अब भी यदि संस्कृत का व्यवहार हो तो उसका व्याकरण शिथिल करना पड़ेगा। किन्तु पुरातत्व की खोज और धर्म के सम्बन्ध से उसकी चर्चा सदा विद्यमान रहेगी, इसमें सन्देह नहीं।

* * *

डिनामेनिशनल कालेज। यो तो हम लोग सभाओं और सम्वादपत्रो मे जातीय भाव, सहानुभूति और योग्यता की डींग हांककर सरकार से अधिकार तक माँगने दौड़ते है, पर हम कापुरुष, कूपमण्डूक किसी लायक नहीं हैं। भारतवर्ष एक राष्ट्र नहीं है, भूगोल की पुस्तको के सिवा भारतवर्ष कहीं कोई चीज ही नहीं है, और यह महाद्वीप एक दूसरे को काटने दौड़ती हुई बिल्लियो का पिटारा या एक दूसरे से रगड़कर सुलगती आग जलानेवाले बांसो का सूखा बन है, और बृटिश सरकार का छत्र न होने से यहा दावाग्नि भड़क उठना असम्भव नहीं। मुहर्रम, बकरीद और गोरक्षा की गदरें इस बात की प्रभूत प्रमाण हैं। सारे 'इण्डिया' ने नेशनल कांग्रेस की, किन्तु मुसलमान उसे छोड़ बैठे, पञ्जाब उसे छो

बैठा, और प्रत्येक उपजाति, शाखा, विरादरी को अपनी अपनी कानफरन्स करने का शौक चर्राया। इस मेंढकी के जुकाम के अन्दर भी जुकाम चले, क्योंकि वैश्यमहासभा के भीतर खण्डेलवाल महा सभा मौजूद है। जिस कुल्हिया में गुड फोडने की मूर्खता ने हमें पृथक् कर रक्खा है उसे हम दृढ करने लगे, अपनी बेडियां अपने चौतरफ जकडने लगे, और सनाढ्य महासभा, सरयूपारी महासभा प्रभृति का काम इसी में पूरा होने लगा कि उसी शाखा के लोग काम करें और सरकार से निवेदन किया जाय कि कुछ नौकरियां ख़ास उन्हीं के लिए रक्खी जाँय। यह कहनेवाले किस मुँह से सरकार को कहते हैं कि यूरोपियन और एंगलोइण्डियनो को अर्धचन्द्र दे दो? जिस दफ़्तर में दस कायस्थ हैं वहा एक ब्राह्मण को देखकर नाक चढ़ाया जाता है, जहा पाच मुसलमान है वहा एक हिन्दू नहीं खटाता, जिस रियासत में दस बङ्गाली हैं वहां एक देसी का निबाह नहीं; और दस दक्षिणियो में एक रागड़े देसवाली की नहीं चलेगी। किन्तु इन भद्दे भेदों को दृढ़ करने के लिए, इन्हें वज्रलेप करने के लिए, प्रजाति कालेज, वा डिनामिनेशनल कालेजो की सृष्टि है। ससार में यदि कोई स्थान सकीर्णता को मिटाकर भाई भाई को मिलाने का है, तो वह विद्यापीठ कालेज है। किन्तु यह तहेबन्दी वहां पहुँची है, और फर्गुसन, पचयप्पा, हिन्दू आदि कालेजो के दृष्टान्त को छोड कर जाति विशेष के दानी अपनी जातिके लिए देने चले। यदि गङ्गाधरशास्त्री आगरा कालेज दक्षिणियो के लियेही करते, यदि विद्यासागरका मेट्रोपोलिटन ब्राह्मणोही के लिए होता, यदि प्रेमचन्द रायचन्द की बादशाही उदारता श्वेताम्बर जैनियो के लिए,

और टैगोर ला लेकचर की सम्पत्ति निराली वङ्गालियों के लिए ही होती, तो हमें करम ठोकने के सिवाय क्या वस रहता । पढने से उपेक्षा करनेवालों को लासा लगाकर खेंचने के लिए अपने कालेज़ काम देते है, किन्तु उनसे हानि वड़ी है । मुहमडन एङ्गलोकालेज को यूनिवर्सिटी वनाना चाहते हैं । वह वना कि इस मम्खरो के देश में विरादरी विरादरी की यूनिवर्सिटी वनी । एक फिरके की यूनिवर्सिटी भी क्या मज़ाक है ! क्या मुसलमानो के लिए और सायस है और राजपूतो के लिए और ? क्या केमिस्ट्री के जो भाग वे पढेंगे उन्हे ये न पढैंगे ? अमृतसर में कोई अच्छा कालेज नहीं था तो सिक्खो की दानवीरता ने एक वढिया कालेज खोला तो सही पर सिक्खों ही के लिए ! मारवाडियो को कलकत्ते में हिन्दी की पढ़ाई न होने से कालेज की ज़रूरत थी, किन्तु क्या किसी कालेज में हिन्दी की चेयर एन्डाउ (प्रदान) से काम न चलता ? दो लाख रुपए में जो कालेज वनेगा, वह कलकत्ते के कालेजों के सामने अयोग्य न होगा ? इधर "राजपूत" एक 'जातीय' (!) कालेज की दुहाई दे रहा है, और दस हज़ार रुपया (!) इकट्ठा कर चुका है ! राजपूतो में पढ़ने की उपेक्षा नहीं है, जो अधिक धनवान् हैं, वा जो विल्कुल वुभुक्षित है उन्हें छोड और सब पढ़ सकते हैं और पढ़ते है । उपदेश और छात्र वृत्तियो से यह काम होजाता । राजपूतो के निवास स्थानो के आसपास दो दिल्ली में, अढाई आगरे में, एक जयपुर में, एक जोधपुर में, एक अजमेर में एक ग्वालियर में, एक इन्दौर में, इतने बढ़िया कालेज है । यदि इनके समान वा इनसे अच्छा कालेज राजपूत लोग वनावें (जिसकी राजपूतजी क्षमा करे हमें आशा नहीं है) तो उनका कालेज किसी काम का भी होगा, नहीं तो अधकचरा

कालेज उनकी शिक्षा को रोकेगा। क्या यहभी नियम होगा कि उसी जाति के मनुष्य जाति मात्र से नौकर रक्खे जाय? जातीय कालेज इस वास्ते भी किया जाता है कि उन में धर्मशिक्षा हुआ करेगी। किन्तु धर्म शिक्षा भी एक भकौआ है। यह बात साफ कहना अच्छा है कि जो धर्म बलात्कार से कराया जाय वह धर्म नहीं है, अधर्म है। अलीगढ़ में पञ्जगाना नमाज मे न शरीक होने से दस आना जुर्माना देना पडता है इससे चाहे सभी मस्जिद में जाय, किन्तु नए मुसलमानो का धर्म उससे दृढ नहीं होता। देखा चाहिए, जबरदस्ती नाक पकड कर सन्ध्या करानेवाले सेन्ट्रलकालेज के हिन्दू कैसे धर्मात्मा होगे। केवल धर्म की लीक पीटना और सदाचार को भूलना, केवल चालो पर जोर देना कदापि हित नहीं है। जब बालक चलने लगे, तो उसकी टागें बाधनी नहा चाहिए। इस प्रक्रिया से ऐसे लोग पैदा होगे, जो यन्त्रालय में बैठकर ग्रहण का गणित सिखाएंगे, किन्तु ग्रहण में दानव सूर्य को न खाय इससे दान करेगे। जो शीतला के टीके का सिद्धान्त जान कर भी चैत्र कृष्ण अष्टमी को गधे की पूजा करेगे। आज कल वह उदार धर्म चाहिए जो हिन्दू, सिक्ख, जैन, पार्सी, मुसलमान कृस्तान, सबको एक भाव से चलावे, और इन में बिरादरी का भाव पैदा करे, किन्तु सकीर्ण धर्मशिक्षा और "जातीय" कालेज (जैसे पन्द्रह जैनी विद्यार्थियो का मथुरा में एक जैन महाविद्यालय है) हमारी बीचकी खाई को और भी चौडी बनाएगे। अभी भारतवर्ष को बहुत दिन पश्चिम की शागिर्दी करना आवश्यक है, क्योंकि कितने आदमी ऐसे है जिन्हें यह देखकर लज्जा आती हो कि टाटा महाशय अपनी सारी सम्पत्ति सारे भारतवर्ष को देते हैं, और इधर "गली गली मे" जातीयता फूट रही है! जितना डफली उतने तान!!

सहयोगि साहित्य—आरा की नागरी प्रचारिणी सभा ने एक बहुत अच्छा काम किया है। उसने प्रायः २४ महाराजाओं को नागरी प्रचार के लिए मेमोरियल दिया है। भगवान् करें इसका अच्छा फल हो और यह न हो कि जहां नागरी अक्षरों की ओर उदासीनता ही है, वहीं उनका प्रत्यक्ष विरोध खडा हो जाय। सत्यवादी को जब यों बन्द होना था, तो इतनी धूमसे निकलाही क्यों था? 'अपनी आखों में अचानक कौंध गई बिजली सी। हम न समझे कि यह आना है या जाना तेरा'। मोहिनी साप्ताहिक होने चली है, किन्तु आकार कैसा होगा? यह कोई सिद्धान्त नहीं कि बड़े आकारही के पत्र अच्छे होते है। श्रीवेङ्कटेश्वर में तिब्बत में मैं की तो मै हो गई, किन्तु शिल्प के लेख लगातार निकलते रहे, और अब एक अच्छा उपन्यास आरम्भ हुआ है। भारत मित्र ने भी एक मनोविनोद का कालम गर्ग महाशय को दिया है। यों experts को एक कालम देना नया प्रयोग है, और इसका फल अच्छा ही होगा। क्या हिन्दी पत्रों के परिचालक कई विषयों के कई सम्पादक रखने का प्रबन्ध नहीं कर सकते? अभी तक राजनीति पर लिखनेवाले महाशय ही को धर्म की व्यवस्था देनी पडती है, और साहित्य का अग्रणी बनना पड़ता है। भारतजीवन में गोरक्षा के लेख अच्छे हुए है। बड़े हर्ष की बात है कि प्रयाग समाचार में दत्त महोदय के इतिहास पर लिखा जाने लगा, किन्तु उसकी परिपाटी निन्द्य है। जिन बातों में दस कालम खर्च गए हैं वे दो कालम में लिखी जातीं तो अधिक बलवती होतीं। लेखक को यह तो मालूम है कि गाली देने का नाम युक्ति और तर्क नहो है, फिर जगह जगह पर रमेश बाबू और काशी की सभा को अयुक्त बचनो का सम्पुट

क्यों लगाया जाता है ? अगरेजी में उस ग्रन्थ के होने से धर्म नष्ट नहीं हुआ, तो बिचारी हिन्दी ने क्या पाप किया है ? सभा की बहुत कुछ निन्दा हो रही है, उसे सम्हलना चाहिये। घर क्या बना, वह मानो घोडे बेचकर सो गई है। काशी के प्रसाद से हमारी हिन्दी पर भी प्रयागसमाचार ने आक्षेप किया है, जिसके लिए उसे अनेक धन्यवाद है। "मुझे कोसे बला से गालियां दे। मगर वह नाम ले हर बार मेरा" राजपूत में दो लेख अच्छे हुए है। 'वैश्योपकारक' पत्र बहुत अच्छा होगा, हम उसकी उन्नति चाहते है। चक्करदार चोरी और हृदयहारिणी पढने योग्य हुए है। गोस्वामी जी के उपन्यास एक भट्टी लीक में पडते जाते है। वही दु ख मे मिलन, परस्पर सहायता, प्रेम का उदय, छिपा प्रेम, पूरी कोर्टशिप वियोग, मिलाप का आनन्द, विवाह, और कोहबर की एक दिल्लगी---वही बात, उसी ढाचे में! सब में वही अधिकता से कर्णकटु एक तान। किन्तु विवाह के पहिले का प्रणय, और पूरी खुलावट फरासीसी है, हिन्दुस्थानी नहीं। 'समाजचित्र' में विवाहोत्तर के प्रणय का चित्र देना क्या असम्भव है ? 'राजस्थानसमाचार' के दैनिक रूपकी समालोचना हम तब तक न करेंगे जब तक उसके स्वामी लोगो के मुह पर का रूमाल (कि अभी कुछ न कहिए) न हटा लें। जयपुर से 'सस्कृत रत्नाकर' पत्र अच्छा निकला है, किन्तु उस मे नई बाते भी चाहिए। काशी की 'मित्रगोष्ठी पत्रिका' में सस्कृत के द्वारा नवीन।
प्रचीन का मिलना शुभ है।
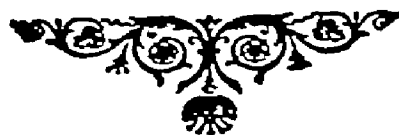
हिन्दी व्याकरण पर नोट ।

'हि' । *

पुरानी हिन्दी में यह एक विभक्ति है । इस का कुछ वृत्तान्त आप लोगों को सुनाया चाहता हूँ । इसका रूपान्तर 'हु' भी है ।

१ । षष्ठी में प्रयोग ।

(क) गोचार परहु चारै सुगोइ ॥

=चरवाहा पराए का गोधन चराता है ।

चन्द ॥ २८ । ५० ॥

(ख) बोल बोलहु अविचारहु ॥

=तुम बोलते हो बोली अविचार की ।

चन्द ४ २८ । ५० ॥

(ग) चहुआन्हु पास ॥

=चहुआन की बगल में ।

चन्द ॥ २८ । ३३ ॥

(घ) राम नाम ले बेरा धारा । सो तैले ससारहिं पारा ॥

=जिससे तू पहुँच जावे संसार के पार ।

कबीरदास, रमैनी ॥ ७५ । ३ ॥

(ङ) जीवहिं मरन न होई ॥

=जीव का मरण नहीं होता ।

कबीरदास । रमैनी ॥ २२ । ६ ॥

---

* माननीय डा० हार्नली के व्याकरण के आधार पर (अनुज्ञा लेकर) लिखित । (का-प्र०)

(च) प्रणऊँ पुर नर नारि बहोरी ।
ममता जिन पर प्रभुहिं न थोरी ॥
=फिर, पुरवासी, नरनारियों को प्रणाम करता हूँ ।
ममता जिन पर प्रभु की नहीं है थोड़ी ॥
तुलसीदास–बालकाण्ड ॥ १० ॥

(छ) होइहि संतत पियहिं पियारी ॥
=होगी सतति पिय की, प्यारी ।
तु० दा० बाल० ॥ २६ ॥

(ज) को गुण दोषहिं करै विचारा ।
=गुण और दोष का कौन विचार करै ?
तु० दा० बाल ३० ॥

२ । षष्ठी से चतुर्थी (सम्प्रदान) में प्रयोग ।

(क) रग अवनि सब मुनिहिं दिखाई ॥
=समस्त रग-अवनि, मुनि को, दिखलाई ।
तुलसीदास ।

(ख) आपु जुवराज पद रामहिं देउ ।
=आप युवराज पद रामचन्द्र को दीजिए । तुलसीदास ।

(ग) बग भाषा में–"आनहिं"=दूसरे को ।

३ । चतुर्थी से फिर द्वितीया (कर्म) में ।

(क) बहु बिधि राम शिवहिं समुझावा ॥
=बहुत तरह, राम ने शिवजी को समझाया । *
तुलसीदास ।

---

* "हिं" का विभक्तित्व सर्व नामों में बहुत साफ देख पड़ता है जैसे "तोहि" 'मोहि' 'जेहि' 'केहि' आदि । "परखेहु मोहि एक पखवार" । (चतुर्थी=द्वितीया) । तुलसीदास ॥

इतर लोगों की बोलचाल में अब भी "मोहि" को षष्ठी में प्रयोग करते सुना है ।

(ख) अनग पालह बुल्लाइय ।

=अनगपाल को बुलाया है ॥ चन्द । २८ । ४ ॥

(ग) अनंगेसह ले आउ ॥

तू अनगेस को ले आ ॥ चन्द । २८ । ७१ ॥

४ । पंचमी (=तृतीया) में ।

(क) फूलह सुधार धर ॥

=धड फूल से सुधार कर ॥ चन्द ।

(ख) तब सुमन्त परधानह पुच्छिय ।

=तब उसने प्रधान सें सुमंत्र पूछा ॥ चन्द ॥

(ग) को किहि वसहि ऊपन्यो ।

=कौन किसके वश से उपजा ? ॥ चन्द ।

(घ) गुरुहि पूछि करि कुल बिधि राजा ॥

गुरु से पूछकर कुल विधि करी (की) राजा ने ।

तुलसीदास ॥

५ । सप्तमी (अधिकरण) में ।

(क) जाँते कि अकासह मान दिन ॥

=जैसे कि आकाश मे दिन का मान ॥ चन्द ॥

(ख) न्याय तो कलिह न किज्जै ॥

न्याय तो कलियुग में न कीजिए ॥ चन्द ॥

(ग) किहि काज रिषि अयो घरहि ।

=किस लिए ऋषि आए घरमें ॥ चन्द ॥

६ । हिन्दी के आठवें कारक (ने) में ।

(क) बीसलह राज कथि पुब्ब कथ्थ ॥

=राजा बीसल ने कथी (कही) पूर्व कथा ॥ चन्द ॥

(ख) तप सु छंडि तुअरह् ॥
तुँअर ने तप छोड़ दिया ॥ चन्द ॥

७ बहुवचन "हिं" के प्रयोग

सम्प्रदान और कर्म (प्राचीन षष्ठी)–

(क) मातु पितहिँ पुनि यह मत भावा।
=माता पिता को फिर यह मत पसन्द हुआ। तुलसीदास।

(ख) दीन्ह् असीस सबहिँ सुख मानी।
=दिया आशीर्वाद सभी को सुख पूर्वक ॥ तुलसीदास।

(ग) जो तुमहि् सुता पर नेहू ॥
=यदि तुम्हें (या तुम को) बेटी पर स्नेह है ॥

(घ) तब रामहि् बिलोकि वैदेही।
(यहा "रामहिँ" आदरार्थ में बहुवचन है)

पर कहीं कहीं एक वचन में भी–

(ङ) कहु केहि रंकहिँ करौ नरेसा ॥
=कहो, किस रंक को राजा बना दूं ॥ तुलसीदास ॥

(च) निज लोकहिँ बिरंचि गये, देवन्ह इहै सिखाइ।
तुलसीदास
=अपने लोक में (को) ब्रह्मा गए, देवताओ को यही सिखला कर ॥

८। दूसरी भाषाओ में इसके प्रयोग। 'ग्रन्थ' की पुरानी पजाबी, और विद्यापति आदि की पुरानी बँगला में ठीक एक वचन षष्ठी मे "हि' पाया जाता है। प्राचीन पजाबी में, 'हु' रूप में अपदान में और "हि" के रूप में सम्बन्ध, सम्प्रदान, अपादान और कर्म मे व्यवहृत है। बगला, उड़िया, मारवाड़ी, गुजराती सिन्धी तथा आधुनिक हिन्दी और पजाबी में, इससे विकृत होकर जो रूप प्रयुक्त होते है वह आगे चलकर दिखलाए जायगे।

९। 'हि' की उत्पत्ति। (क) संस्कृत "स्य" को प्राकृत में "स्स" (वररुचि ५। ८।), 'आस' (जैसे, कस्स=कास) और "सु" (अपभ्रंश प्रा०) (जिससे हिन्दी में-जासु, तासु आदि) होते हैं। (ख) 'स्य' को प्राकृत में 'ह' अथवा 'हि' भी होजाता है और पूर्व स्वर दीर्घ होजाता है॥ स्यामि=हामि, स्यति=हिइ। 'ह' का षष्ठी प्रयोग, मागधी प्राकृत में, होना, वररुचि इसतरह लिखते है। "ङसो हो वा दीर्घत्वच॥ ङसः षष्ठ्येकवचनस्य स्थाने हकारादेशो भवति। वा। तत्संयोगे च दीर्घत्वम्॥ पुलिसाह धने=पुलिसस्स धने॥ ११। १२॥"। अर्थात् षष्ठी के एक वचन में 'ह' होता है, विकल्प से, और उसके संयोग में दीर्घत्व। जैसे, पुरुषस्य धने=पुलिसस्स धने=पुलिसाह धने॥ इसीतरह पंचमी के (जिसका कि षष्ठी से अभेद सा है) एक वचन में "हि" और कारण (तृ॰) के बहुवचन में "हिं" का प्रयोग वररुचि जी बतलाते है। अ० प्राकृत की षष्ठी विभक्ति 'हे' भी 'स्य' का एक दूसरा रूपान्तर जान पड़ता है। "हे" के स्वयदीर्घ होने के कारण उसके पहलेवाला स्वर दीर्घ नहीं होता। जैसे, प्राकृत, गिरीहि=अपभ्रंश प्राकृत, गिरिहे=पुरानी हिन्दी, गिरिहि। इसी 'हे' से हिन्दी 'हि' की उत्पत्ति है। और 'हि' से 'ह' अथवा प्रा० 'ह' से ही हिन्दी 'ह' हुआ।

१०। हि के रूप और विकार। अपभ्रंश प्राकृत में, 'हे' (=हि) और "हो" (=हु), ङस् (षष्ठी एक वचन, 'का') के रूप हैं। (हेमचन्द्र ४। ३३६। ३३८। ३५१।-४। ३५०। ३४१। ३६२)। ये अकारान्त, इकारान्त, उकारान्त शब्दों में चाहे वे जिस लिङ्ग के हो जोड़े जाते है। अतः दो तरह के अपभ्रंश अन्त्य चिह्न हुए (क) अहो, इहो, उहो, (=अहु, इहु, उहु) (ख) अहे, इहे, उहे, (अहि, इहि, उहि) अथवा दीर्घ प्रकृतियों के साथ, (क)

अअहो, इअहो, उअहो, (=अअहु आदि) और (ख) 'अअहि' आहि (='अअहि' आदि)। पुरानी गौड भाषाओं में (क) समुदाय अह, इह, उह, अथवा 'ह' का लोप करके 'अ' 'इ' 'उ' होजाता है; और (ख) अहि (=अइ=ए), इहि उहि, और, अअह, इअह, उअह —अअ (=आ), इअ, उअ—में बदल जाता है। 'अअहि' से 'आय' (अअइ) अथवा, "ऐ" 'ए' आदि बनते हैं। (क) और (ख) के, 'ह' और 'हि, में, उदाहरण ऊपर बहुत से दिए गए है।

११। 'हि' के ऊपर लिखे विकृत रूप आजकल भी प्रायः सब गौड भाषाओं में फैले हुए हैं जैसे "ए", बङ्गला, उडिया, 'मा०, प०, गु०, सिन्धी—घेर (घर को)=गँवारी हिन्दी 'घरे'=(प्राचीन भाषाएँ) 'घरहि (अ० प्रा०) 'घरहे'=(संस्कृत) गृहस्य। संस्कृत में अर्थ सम्बन्ध था, प्राकृत में सम्बन्ध और सम्प्रदान, और फिर संप्रदान से प्रा० गौड भाषाओं में सम्प्रदान, और फिर आधुनिक भाषाओं में सम्प्रदान, कर्म तथा अधिकरण भी हो गया। बंग—दीने (दीन को)=दीनहि= दीणहे=दीनस्य। बंग— तामाय=*तामाहि=तामअहि=तम्ब अहे= ताम्रकस्य। भाषाओं की सृष्टि भी कैसी अद्भुत है! गँवारी 'घरे' 'खेते' (घर-खेत-में) आदि को देखकर साधारण तौर पर यही कहा जाता है कि संस्कृत "गृहे" और "क्षेत्रे" से 'घरे' 'खेते' बने हुए है। पर वास्तव में कितने ठोकर खाकर 'घरे' 'खेते' औरही मार्ग से आए हैं। वे आते आते अपनी नानियों की नानी (संस्कृत) के समान हो गए। यह एक बड़े अचरज का मेल हुआ। अतएव, हिन्दी 'तले' आदि 'तलहि' (=तलइ) आदि से बने हैं न कि (संस्कृत) "तले" से।

१२। "घोडे का" में 'घोडे' क्यों हो जाता है, इसका कारण भी 'हि' (अहि=अइ=ए) ही है। घोड अहि कर=घोड़

* "तामाय" संस्कृत से नहीं, किन्तु इसमें "आय" प्राकृत से है (१०वाँ पेरा देखिए)।

ए का=(पञाबी) घोड़े दा=(सिन्धी) घोड़े जो । जहां पर 'अहि'' से 'अ' रह गया वहा–(वग) घोड़ा र घोड अ– हर=घोड़ अर= घोडार), (मारवाड़ी) घोडा-रो (बिहारी) घोरा कै, (ब्रज) घोडा को (गुजराती) घोड़ा नो । नेपाली में 'हि' बचा रहता है—जैसे, देव-हरु । हमहि=हम् ए=हमे, हम् ऐ=हमै आदि बहुत से उदाहरण दिए जा सकते हैं जिनमें 'हि' की शक्ति व्याप रही है । सिन्धी—हथिअ मे (हाथी के मध्य में)=हथिअ माँहीँ—हत्थि अहो मज्झहिँ=हस्तिकस्य मध्ये । इस उदाहरण से आप समझ सकेंगे कि 'हाथी में' वास्तव में है "हाथी के में" (हथि अहि में) । अर्थात् 'हाथी' और 'में' के बीच सम्बन्ध का चिन्ह भी दबा पड़ा है ।

१३ । 'हि' (=प्रा० हे, हु,) के अपभ्रंश प्राकृत में, (हिं, हं, हुं,) बहुवचन है । अतः बहुवचन के रूपों से दसवें पैराग्राफ में बताए हुए क्रम से

(क) आँ, ईँ, ऊँ ।

(ख) ओँ, ओँ, ऊँ ।

[ग] आँ, इयाँ, याँ, उआँ, वाँ ।
[घ] औँ, ओँ, इयौँ, इयोँ एँ, ऐँ
इयूँ, उऔँ, उओँ, इएँ, उएँ, । } दीर्घ प्रकृतियों में

आदि अनेक रूप बनते हैं । इन्हीं से, [सिन्धी, पंजाबी, माड़-वाडी] नराँ मेँ=[ब्रज] नरौँ मेँ=[हिन्दी] नरोँ में=[प्रा०] णरह मज्झहिं=[संस्कृत] नाराणां मध्ये, आदि हैं । और उदाहरण—

[१] एक वचन । 'नल' [पुं० या न० लिङ्ग] | एक वचन षष्ठी ।

संस्कृत;	मागधी प्रा०;	मराठी;	अप प्रा०;	प्राचीन गौड़
जलस्य	जलश्श } जलाह }	जलास् जला	जलहो जलहे	जलह जलहि

आधुनिक गौड़ ।

जल [सब भाषाओ मे] }
जले [बग, उड़िया] }

[२] एक वचन । जिह्वा । [स्त्री० लि०] [एक० षष्ठी]

संस्कृत;	मा०प्रा०;	मराठी;	अ०प्रा०;	प्रा०गौड़;	आधु०गौड़
जिह्वायाः	जिब्भाए जिब्भाइ जिब्भाअ जिब्भाय	जिभे	जिब्भहीं जिब्भहे	जीभह जीभहि	जीभ जीभे [वग उ०]

[३] बहु वचन

संस्कृ०	मा०प्रा०	मराठी०	बिहारी	ब्रज	सिन्धी
जलानाम्	जलाण } जलाह }	जलाना } जलाँ }	जलन	जलनि } जलन् }	जलनि

अ०प्रा०	प्रा०हिन्दी	सिन्धी, पंजा० मारवाड़ी
जलह जलहु जलहि	जलहिँ	जलाँ

ब्रज	साधु हिन्दी	सिन्धी
जलोँ	जलोँ	जलोँ

(४) बहु वचन ।

सं॰—जिह्वानाम् । मा॰प्रा॰—जिब्भाणं, जिब्भाहं । मराठी—जिभाँना, जिभाँ । विहारी—जीभन् । व्रज—जीभन, जीभनि । सिन्धी—जीभुनि । अ॰प्रा॰—जिब्भहं, जिब्भहु, जिब्भहिं । प्रा॰ हि॰—जिब्भहिं, सिंधी, पंजाबी, माड़॰—जिभाँ । व्रज—जीभैं । साधुहिं॰—जीभों । सिंधी—जिभैं ।

[५] ताम्रक । दीर्घ [प्रकृति] एक वचन । ताम्रकस्य=मागधी—

तम्बयश्श=तम्बयाह–मराठी–ताँव्या=(वि॰) तामबा=(अधु॰) ताँबा=तामा ।

बहुबचन । तम्बयाहं=ताँव्याँ=तामबाँ=(सि॰) टामे आदि । इसी तरह इकारान्त और उकारान्त आदि अनेक शब्दों के उदाहरण दिए जा सकते है ।

१४ । कितने पढ़नेवाले तो इतनेही में ऊब गए होगे । जहाँ तक हो सका है, इसी भय से, उदाहरणों को देते हुए, थोड़े में, यह लेख लिखा गया है । ऐसे लेखों के पढ़नेवाले हिन्दी में अभी बहुतही कम है। पर क्या किया जाय इस पत्र के कर्त्ताओं की बात माननी पड़ी * ।

१५ । विशेष–'हि' (या उसका रूपान्तर) प्रायः सब कारको की विभक्ती होकर क्यों पाया जाता है, इस बात को बिना बतलाए इस लेख को समाप्त करना ठीक नहीं जँचता । इसलिए कुछ और कहना पड़ता है । प्राकृत का यह एक साधारण झुकाव है कि षष्ठी सेही और कारकों का काम निकाल लेना ; अर्थात् केवल दोही, कर्त्ता

* धन्यवाद है (स सं॰)

और सम्बन्ध–कारकों के रूपकरण रह जावें। प्राकृत वैयाकरण इसको साफ साफ़ लिखते हैं †। अपभ्रंश प्राकृत में यह चाल अच्छी तरह देख पड़ती है। प्राकृत में तो षष्ठी विभक्ति से एक सर्व साधारण, सर्व कारकव्यापी, रूप बनालेने की प्रवृत्ति थी पर गौड़ भाषाओं ने भ्रम दूर करने और पार्थक्य के लिये, काल क्रम में, षष्ठी विभक्ति के रहते हुए, एक एक और, अलग अलग कारकों के लिए विभक्तियाँ बनालीं *।

मिर्जापुर। } काशीप्रसाद।
१७। ६। ०४। }

† हेमचन्द्र। ३। १३४॥ त्रिविक्रम, २। ३। ३६॥ वररुचि, ६। ६४॥

* जैसे।

(क) आदिहि ते सब कथा सुनाई॥ तुलसीदास।

(ख) कहाँ सम पान ततारह॥
=कहाँ खाँ तातार से॥ चन्द।

(ग) मोहि में तोहि में खरग खम्भ में॥ प्राचीन।

(घ) जेहि पर जेहि कर सत्यसनेहू॥ तुलसीदास।

धातुओं में जीवत्व वा चेतनत्व ।

पठकों को इस लेख का शीर्षक देखकर आश्चर्य्य अवश्य होगा कि यह बात क्या है, धातु तो जड पदार्थ है उन मे जीवत्व वा चेतनत्व का होना असम्भव क्या नितान्तही असत्य है । परन्तु प्रिय पाठको ! इस बात में तनिक भी सशय मत करो—यह निस्सन्देह सत्य है और ऐसाही सत्य है जैसा कि हम मे आप मे जीव का होना सत्य है । हमारे पूजनीय श्रेष्ठ ऋषियो ने तो इसका निर्णय हजारहा वर्ष पहले कर लिया था, जिसकी सूचना उन्होंने आर्ष दार्शनिक ग्रथो मे बडी दृढता के साथ हम लोगो को दी है । उसी सिद्धान्त की पुष्टि अब जडविज्ञान द्वारा हुई है जिसके वर्णन करने के अर्थ यह लेख लिखा गाया है ।

मैं हर्ष और प्रफुल्लता के साथ पाठको को यह सुख—सम्वाद सुनाता हूं कि इस वैज्ञानिक आविष्कार का सौभाग्य भी इसी पुण्य भूमि भारतवर्ष के एक सुसन्तान ही को प्राप्त हुआ है । इन महाशय का नाम बाबू जगदीश चन्द्र बोस है । यह कलकत्ता यूनिवरसिटी मे विज्ञानशास्त्र के आचार्य्य (Piofessor) है और इन को गवर्नमेण्ट से सी० आई० ई० की उपाधि भी मिली है । इन्होंने वैज्ञानिक परीक्षाद्वारा उक्त सिद्धान्त को पुष्ट और सिद्ध कर दिया । उक्त बाबू साहब का यह अद्भुत आविष्कार चिरस्मरणीय रहेगा । ऐसेही सुसन्तान से भारतवर्ष का गौरव है ।

पश्चिमीय वैज्ञानिकों ने नाना प्रकार की कल्पनाए इस "जीव

त्रिविक्रम । २ । ३ । ३६ ॥
अर र्णव । ६ । ६४ ॥

शक्ति" के विषय में की है पर किसी का परिणाम सन्तोष दायक नहीं हुआ। अब तक इसको भी कोई रीति नहीं मालूम थी कि किन किन परिक्षा और जाच से जाना जा सकता है कि किसी वस्तु मे जीव है वा नहीं। अब-तक कोई ऐसी प्रत्यक्ष परीक्षा न थी कि जिससे यह भली प्रकार जाना जासके कि अमुक वस्तु में जीव है वा वह निर्जीव है। किसी समय **स्वचलन** ही एक मात्र जीव होने की जाच मानी गई थी पर जब यह ज्ञात हुआ कि बहुत से ऐसे भी जीवित जन्तु हैं जिन में स्वचलन शक्ति नहीं है और जीव के अन्य धर्म्म उनमें प्रत्यक्ष पाए जाते है, तब से इस कल्पना का खण्डन होगया। पेड़ पल्ल वादि में तो चेतना का होना, सासलेना, सोना, जागना, खाना, पीना, चलना, सुखी,दुखी होना इत्यादि भली प्रकार अब सिद्ध हो ही चुका है। (इस विषय को भी सक्षेप में लिखकर आप लोगों की सेवा में शीघ्र ही उपस्थित करूगा)

अब यह निर्णय करना आवश्यक हुआ कि जीवत्व की परीक्षा क्या है अर्थात् वह कौनसी बात है जिसके होने से हम जान सकें कि अमुक वस्तु में जीव है?। हमारे सुप्रसिद्ध-आचार्य्यबोस का मत है—और यह ठीक भी है—कि जीवत्व की परीक्षा यह है कि "वाह्य प्रोत्साहन से किसी वस्तु में चेतनता और क्षोभ (irritability) प्रगट हो" अर्थात् जब हम किसी वस्तु मे बाहर से क्षोभ पहुचावे तो उस वस्तु में उसका प्रभाव वैसाही हो जैसा कि जीवधारियों में होता है वा दूसरे शब्दो में यो कहे कि किसी वस्तु की प्रवृत्ति और चेतनता से उसमें जीवत्व होने की जांच हो सकती है।

उक्त बाबू साहेब ने इसी मत के अनुसार सिद्ध करदिया है कि एक लोहखण्ड में वैसीही चेतना और प्रवृत्ति का परिचय मिलता है जैसा कि किसी जीवित देह में।

अब हम आपको वे रीतियां बताते हैं कि जिन से प्रोफेसर बोस ने उक्त सिद्धान्त की पुष्टि

की है। यदि आप अपनी उँगली दबावें तो आपको पीडा होने लगेगी। अब यह समझना है कि यह पीडा कैसे होती है? इस का उत्तर हम देंगे कि उँगली से शिरा (ज्ञानतन्तु) हाथ, कान्धे और गरदन में से होकर मस्तिष्क मे चली गई है और ज्योंही कि उँगली दबाई गई उक्त शिरा में क्षोभ हुआ और एक प्रकार की तरंग के सामान कम्पन द्वारा मस्तिष्क तक उगली दबने की सूचना पहुंच गई और आप को उंगली दबने की पीडा का बोध हुआ। यह बात भी अब तक युक्तिसिद्ध कल्पना मात्र थी परन्तु निम्न लिखित यंत्र से इसकी और भी पुष्टि हो गई।

एक चातुर्य्यमय यंत्र द्वारा यह दिखाया जा सकता है कि जीव की शिराओं में भी चेतनता है और वह शिराएं अपने अणुओ के कम्पनद्वारा इसको प्रकट करती है। यह परीक्षा विद्युत्तीव्रतामान यंत्र (galvanometer) द्वारा की गई है। वे पाठक कि जिन्होंने अङ्गरेजी पदार्थ-विज्ञान नहीं पढा है अवश्य पूछेंगे कि यह यंत्र कैसा है और इसका नियम क्या है। मेरे विचार में भी उक्त यंत्र का सविस्तर वर्णन यहां देदेना उचित था पर लेख वहुत बढ़ जाने के भय से छोड दिया, आशा है कि आप लोग क्षमा करेंगे। यदि अवसर मिला तो इस यंत्र का विवरण सविस्तर लिखूंगा। हां आप लोगो को केवल इतना समझ लेना चाहिए कि यह एक ऐसा यंत्र है कि जो सूक्ष्म से सूक्ष्म विद्युत (बिजली) के तीव्रता की सूचना देता है। इस यन्त्र में एक चुम्बकीय सूई रहती है जो सूक्ष्म से सूक्ष्म विद्युत की तीव्रता से विपथ होने लगती है, वा यों कहें कि सूई में दिग्भ्रमण (deflection) होने लगता है। बिजली न लगने पर सूई अपने स्थान पर रहती है। जितनाही विद्युत (बिजुली) का प्रवेश अधिक उस यंत्र में होता है उतनाही सूई में दिग्भ्रमण होता है अर्थात् उतनाही सूई का मुह घूमता जाता

है और विद्युत प्रवेश कम होने पर फिर अपनी निर्दिष्ट दिशा की ओर सूई लौट आती है।

हम ऊपर लिख आए हैं कि किसी देह में पीडा होती है तब वहां की शिराओ में एक प्रकार का कम्पन होने लगता है—यह जो अब तक अनुमान मात्र था अब उक्त यंत्र द्वारा प्रत्यक्ष दृष्टिगोचर होगया अर्थात्, नियमानुसार, यदि शिराओं में कम्पन हुआ तो यन्त्र में सूई के मुडने से जाना गया, नहीं हुआ तो सूई यथा स्थान रही—जब उक्त बाबू साहेब को यह बात ज्ञात हुई तब उन्होने विचारा कि देखें उन पदार्थो पर जो जड कहाते है क्षोभ वा पीडा पहुचने से क्या प्रभाव पडता है ? । कुछ प्रभाव पडता है वा नहीं ? । क्योंकि पहले जब यह बात न मालूम थी तो यह नहीं जाना जा सकता था कि किसी गूगे पशु के किसी अङ्ग पर पीडा पहुचाने से उसे कितना दुःख होता है पर इस यन्त्र से उसका परिचय भली भांती मिलता है। जब यह देख लिया तो बस उन्होने नाना प्रकार के धातुओ की परीक्षा प्रारम्भ करदी जिसका परिणाम यह हुआ कि उनमें भी ठीक ठीक वैसाही क्षोभ देखा गया जैसा कि जीवधारियो में होता है।

पहले इसके कि परीक्षाओं का वृत्तान्त लिखा जाय इतना और उक्त यंत्र के विषय में जान लेना उचित है कि उक्त विद्युत्तीव्रमान—यन्त्र की सहयता से कम्पन का होना कैसे जाना जाता है। विद्युत्तीव्रतामान यंत्र को शिरा वा जिस वस्तु की परीक्षा करनी होती है उसके साथ लगा देते है और चुम्बकीय सूई के नीचे एक कागज रहता है जो लगातार स्वय खिसकता जाता है (यह एक पेंच के सहारे होता है)। पीडा पहुंचने पर जो एक प्रकार का कम्पन होता है उस में विद्युत् का अश भी रहता है और इसी की न्यूनाधिक तीव्रता के अनुसार उक्त

सूई मे भी दिग्भ्रमण (deflection) होने लगता है, जो उसके नीचे वाले कागज पर अंकित हो जाता है। सूई का मुख इधर उधर होने से काग़ज पर सर्पाकार टेढ़ी रेखा खिंच जाती है नहीं तो सरल रेखा बनती है । जितना ही क्षोभ वा पीडा से कम्पन अधिक होगा उतनीही चौडी सर्पाकार रेखा बनेगी और कम्पन कम होने पर कम चौड़ी सर्पाकार रेखा होगी और कम्पन के न होने पर केवल सीधी रेखा मुद्रित होगी क्योंकि सूई मे दिग्भ्रमण अब नहीं होता ।

सब से पहले यह देखा कि किसी धातु के टुकडे को यदि मरोडा जाय वा उस पर आघात पहुचाया जाय तो विद्युत–तीव्रता मान–यन्त्र में ठीक वैसेही चिन्ह बनते हैं जैसे कि किसी जीवधारी में वैसाही आघात पहुंचाने से बनते हैं। इन्हीं बातो की परीक्षा कई तरह से नाना प्रकार के धातुओ और जीवो पर-की गई जिनका वर्णन नीचे किया जाता है ।

---

(१) जीवधारी और धातु में चेतना की शिथिलता ।

आप लोगो को मालूम है कि यदि किसी अङ्ग का पु ा वा शिरा किसी प्रकार कुछ देर तक पीडित किया जाय तो उसकी चेतना शक्ति शिथिल हो जाती है (इसी को साधारण लोग 'थकान' बोलते हैं) और यदि कुछ देर तक उस अङ्ग को विश्राम मिला तो वही शक्ति पुनः ज्यों की त्यों उसमें उत्पन्न हो आती है । विद्युत तीव्रमान–यंत्र लगाकर जब किसी जीवधारी का कोई अङ्ग पीडित किया गया तो पहले बडे वेग से सूई में कम्पन होने लगा और यद्यपि वह अङ्ग वैसाही पीडित किया जारहा है तथापि थोड़ी देर बाद सूई में दिग्भ्रमण घटने लगता है और उस अंग की चेतना शक्ति भी घटती जाती है, जैसे की चित्र न० १ में स्पष्ट रूप से प्रकट होता है कि बाएँ–हाथ की

ओर चौड़ा२ दिगभ्रमण होता रहा जो क्रमशः घटने लगा और थोड़ी देर के उपरान्त बहुतही कम होगया जैसे कि दाहिनी ओर की रेखाए दिखाती हैं। ऊपरवाला चिन्ह पुट्ठों से अङ्कित हुआ है और नीचेवाला चिन्ह धातुकी परीक्षा से

पुट्ठों का कम्पन

धातुओं का कम्पन

चित्र न० १

बना है। इससे यह भी स्पष्ट मालूम होता है कि दोनो के चिन्ह एक समान हैं, दोनो पर आघात का प्रभाव समानही पड़ता है।

इसके अतिरिक्त हमें इस सिद्धान्त का परिचय नित्य प्रति भी मिलता है जैसे कभी कभी देखा जाता है कि छुरा लगातार काम मे लाते लाते भोटा या कुन्दसरीखा हो जाताहै। यद्यपि उसकी धार बिगड़ी नहीं तो भी वह वैसा काम नहीं देता जैसा पहले देता था और सिल्ली पर रगड़ने से भी तेज नहीं होता पर कुछ दिन वह छुरा अलग रख दिया जाय तो उसकी तीक्ष्णता आप से आप फिर आजाती है। इसी प्रकार हम लोग भी लगातार काम करते २ थक जाते हैं और कुछ विश्राम करलेने पर फिर फुरतीले हो जाते है।

(२) धातुओं में तन्द्रा वा सोना

कभी ऐसा भी देखा जाता है कि यदि छुरे से बहुत दिनो तक काम न लिया जाय तो वह आप से आप कुन्द-सरीखा होजाता है और भली भाति काम नहीं देता पर काम में लाते लाते वह आप ही तेज हो जाता है। यह बात 'थकान' की ठीक उलटी है। जैसे कि किसी अङ्ग वा पुट्ठे से कुछ दिनो काम न लिया जावे तो वह "रह जाते हैं" जिसे 'सोजाना' 'झुनझुनी चढ़ना' वा 'रह जाना' हम लोग बोलते है। ऊर्ध्वबाहू साधू (जो अपना हाथ ऊपर उठाए रहते है) तो आप लोगों ने अवश्यही देखे होगे जिनका

जाय इसी नियम के अनुसार चेतनाहीन होकर रह जाता है। पर कुछ दिनो मलने से फिर खुल जाता है अर्थात् उसमे चेतना लौट आती है। इसी प्रकार एक जगह बैठे बैठे टांगें सो जाती है और मलने से वा कुछ टहलने से फिर काम देने लगती है मानो सोने से जाग उठीं। मान्यवर बोस ने धातुओ में ऐसा होना भी पाया जैसा कि निम्न लिखित चित्र से प्रकट होगा कि पुट्ठे और धातु क्रमशः सोए से कैसे जागने लगते है। प्रत्येक धातु में (यदि वह कुछ दिन ऐसेही बे काम पड़ा रहे) यह तन्द्रा पाई जाती है।

पुट्ठोंका जागना

धातुओंका जागना

चित्र न० २

(३) धातुओं पर शीत और उष्णता का प्रभाव।

अतिशय शीत से जीव की चेतना शिथिल हो जाया करती है जैसे कि किसी अङ्ग पर ढेरसा बरफ रखदें तो वह अङ्ग सूना वा निस्पन्द रहित होजाता है और पृथिवी के उत्तरीय भाग में (जहा सदा बरफ पडती रहती है) घोर जाडा पडने पर भालू आदि पशु निर्जीव के समान शिथिल होकर तन्द्रा में पडे रहते है और ग्रीष्म ऋतु के आने पर उनमें स्पन्दना आने लगती है और फिर वे वैसेही फुरतीले और बलिष्ट होजाते हैं। इसी प्रकार आप लोगों से छिपा नहीं है कि ग्रीष्म ऋतु के अत्यन्त ताप में भी आलस्य और तन्द्रा बहुत आती है। पर साधारण ऋतुओं में स्पन्दनशक्ति पूर्ण रूप से रहती है। इन नियमों के अनुसार जब धातुओ पर अतिशय शीत वा अतिशय ताप पहुचाया जाय तो वे भी शिथिल वा स्पन्दन रहित उसी रूप से होने लगते हैं जैसे कि जीवधारी के अङ्ग, हा यह अवश्य होता है कि किसी धातु में अधिकतर ताप वा शीत से काम लेना पड़ता है किसी में कमती से। यही अवस्था जीवों में भी होती है कोई जीव तो

तनिकसी शीत वा ताप में शिथिल से होजाते है और किसी के लिए अधिक की आवश्यकता पडती है । इनके चित्र देने की आवश्यकता नहीं समझी पाठकगण भली भाति अनुमान करसकते हैं।

(४) धातुओं पर मदावह (Narcotics) और आग्नेय (Stimulants) औषध का प्रभाव ।

इन परीक्षाओं से एक आश्चर्य्यजनक बात यह ज्ञात हुई कि मदावह ओषधि (Narcotics) और आग्नेय ओषधि (Stimulants) की क्रिया जैसी जीव पर होती है वैसीही धातुओ पर भी होती है अर्थात् उनका प्रभाव जीव और धातु दोनो पर एक समान होता है । उदाहरण रूप में भांग, मद्य (Alcohol) इत्यादि का प्रभाव जीव पर जैसा होता है आप लोगो को विदितही है कि वे मादक है और उनसे उत्तेजना बढती है । भिन्न भिन्न जीवो में उत्तेजना उत्पन्न करने के अर्थ आग्नेय ओषधियों की भिन्न २ मात्राए देनी पडती है उसी प्रकार धातुओं में भी जान लेना । बोस महाशय ने शुद्ध-सज्जीखार (Carbonate of sodium) = कारबोनेट आफ सोडियम) से जो एक आग्नेय ओषधि है, प्लाटिनम (Platinum) नामक धातु की उत्तेजना तिगुनी बढी हुई पाई पर उतनही मात्रा से राग की उत्तेजना उतनी न बढी । पहले उन्होंने प्लाटिनम (Platinum) धातु पर क्षोभ पहुचाकर यंत्र द्वारा चिन्ह लिया, फिर उन्होंने उस धातु पर उक्त ओषध का प्रयोग करके चिन्ह लिया (जिनका चित्र नीचे दिया गया है) इन के मिलान करने से तिगुन उत्तेजना का उत्पन्न होना पाया गया इसी परीक्षा को ।

चित्र न० ३

अनेक धातुओं पर करके देखा तो सब का फल लगभग ऐसाही पाया गया ।

फिर उन्होंने मदावह (Narcotics) ओषधि (विष इत्यादि जिन

से चेतना विनष्ट होती है) का प्रयोग करके परीक्षा की। जैसे कि कोकेन (Cocaine) नामक जो एक विख्यात औषध है जिस को किसी अंग पर लगा देने से कुछ देर के लिए वहा की चेतना जाती रहती है—इस औषधि को मूर्ख लोग आजकल प्रायः खाते है और अपना स्वास्थ्य सदा के लिए बिगाडकर डागर से हो जाते हैं और शीघ्रही मृत्यु को प्राप्त होते हैं—सर्वसाधारण को इससे सावधान रहकर बचना चाहिए। डाक्टर लोग इस के प्रयोग द्वारा छोटी मोटी चीर फाड तक कर डालते है और इसका ज्ञान उस समय तनिक भी पीडित—व्यक्ति को नहीं होता क्योंकि उतना अङ्ग उसका जहा उक्त औषध लगादी जाती है चेतनाशून्य हो जाता है। इसी के साथ यह भी आप लोगो को जना देना उचित है कि कौसि आग्नेय वा मदावह औषधि की थोड़ी मात्रा देने से उत्तेजना बढ़ती है और अधिक मात्रा देने से मूढ़ता अर्थात् चेतनविहीनता उत्पन्न होती है। आप लोग जानते हैं कि अफीम वा संखिया की अधिक मात्रा प्राण नाशक होती है परन्तु वैद्य लोग इन्हीं की सूक्ष्म मात्रा अति रोगग्रस्त व्यक्ति को उत्तेजना बढ़ाने को अर्थ भी दिया करते हैं। रांग पर इन नियमो की परिक्षा करने से जो फल हुआ उनका चित्र ही देखकर आप लोग समझ सकते है।

(क) रांग की स्वचेतना

(ख) राग की उत्तेजना मदावह की सूक्ष्म मात्रा द्वारा

(ग) राग का चेतना हीन होना अधिक मदावह के प्रभाव से-

चित्र नं० ४

पहले उन्होने रांग के टुकडे पर क्षोभ पहुंचा कर यंत्र द्वारा उसकी कम्पन—क्रिया का चिन्ह (क) लिया, फिर उन्होने उसी टुकडे पर पोटाश (Potash) के एक निर्दिष्ट मात्रा का प्रयोग किया जिससे उसकी

उत्तेजना बढी हुई पाई गई (ख—चिन्ह देखो) अब पुनः उसी टुकडे पर उक्त ओषधि की उक्त मात्र से दशगुण अधिक मात्रा दी जिस से राग की समस्त चेतना जाती रही और यत्र की सूई में कोई परिवर्तन न होने के कारण सीधी रेखाही मुद्रित हुई जैसा कि (ग) रेखा से प्रकट है। इस से यह सिद्धान्त निकला कि उसमें जब चेतना न रही तो क्षोभ की चेतना कैसे हो सकती है।

(५) धातुकी विष द्वारा मृत्यु

अब एक बात और भी जाच करने को रह गई है—वह यह कि जीव विष से मर सकता है। यदि शीघ्रही उसका उपाय किया जाय और विषघ्न ओषधि दी जाय तो वह मरने से बचाया भी जा सकता है। बोस महाशय ने आक्जेलिक एसिड (Oxalic Acid) का जो एक तीव्र विष है प्रयोग एक धातु पर किया तो उसमे जीव के समान पहले ऐठन (जिसे कुडल पडना भी बोलते है) होने के जो चिन्ह मुद्रित होते हैं वैसेही चिन्ह बने फिर धीरे धीरे चेतना कमती होने की रेखाए अङ्कित हुई अन्त को बहुत कम चेतना रह गई तब उन्होने एक विषघ्न ओषधि का प्रयोग किया तो देखा कि चेतना पुनः लौटने लगी और थोडा विश्राम देने पर फिर जो देखा तो उस धातु की चेतना वैसी ही पाई गई जैसी कि विष देने के पहले उस में थी।

फिर उन्होने दूसरा टुकडा धातु का ऐसा लिया जो पुष्ट और स्वस्थ था और उस पर आक्जेलिक एसिड की कडी मात्रा दी पहले तो ऐंठन वा कुडल प्रारम्भ हुई और अन्त को वह धातु निर्जीव होकर मृत होगई। फिर तो बोस महाशय ने लाख लाख उपाय किए विषघ्न ओषधिया दीं पर सब निष्फल जान पडीं और उक्त धातु खण्ड मे चेतना न लौटी पर न लौटी इसी प्रकार भिन्न धातुओ को भिन्न भिन्न विष द्वारा परीक्षा की परन्तु परिणाम सभी

का एकही समान पाया । सब से अद्भुत बात यह देखी गई कि बहुधा करके जिस विष से जीव मरता है वही विष धातुओं पर भी अपना कराल प्रभाव वैसाही देखाते हैं अर्थात् कोई कोई विष धातु और जीव दोनों को मृत्यु के मुख का ग्रास बना देती है । स्मरण रहे कि सभी विष से ऐसा नहीं होता । एक गँवारी कहावत है कि "किसी को बैगन बावलाय किसी को बैगन पथ्य" । किसी २ विष से तो धातु ऐसे मर जाते हैं कि उनका पुनः जीवित होना वा करना हो ही नहीं सकता । किसी विषय से ऐसा भी होता है कि जब तक विष के साथ धातु का संसर्ग है वे मृतवत मुर्छित रहते हैं पर विष धोडालने से और विषघ्न ओषधि द्वारा विष का प्रभाव दूर करदेने से वे पुनः जीवित हो जाते है । इस से यह कल्पना की जाती है कि वे धातु वास्तव में मर नहीं गए थे किन्तु सज्ञा रहित होकर मूर्छित अवस्था में थे जिस कारण से उनकी चेतना मूक हो गई थी । मनुष्यों में भी प्रायः ऐसा होता है कि उनकी नाड़ी, स्वांस इत्यादि सब बन्द हो जाते हैं और उनको कुछ भी ज्ञान नहीं रहता और वे कभी कभी मृतक समझकर जला दिए वा गाड दिए जाते हैं और कभी वे लोग स्मशान तक पहुंचकर पुनः जीवित भी हो जाते है । जो कुछ हो इस में सन्देह न रहा
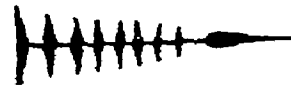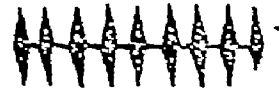
(त)विष के प्रयोग से जीवधारी के चिन्ह ।

(घ) विष के प्रयोग से धातु के चिन्ह ।

चित्र नं० ५

कि विष से धातु मर जाते हैं । ऊपर के चित्र देखने से स्पष्ट हो जाता है ।

अभी यह नहीं जाना गया है कि विष से मृत्यु कैसे होती है अर्थात् विष की वह कौन क्रिया है जिस से मृत्यु वा मूर्छा होती है । किसी किसी में ऐसा भी

देखा गया है कि धातु के अणुओ में विष मिलने से विघटन होने लगता है-यह ठीक मृत-शरीर की न्याँई विगलन (Decomposition) होने लगता है। परन्तु सब में यह बात पाई जाती है कि विष के कारण से धातु के भीतर के अणुओं (Molcules) मे एक प्रकार की रुकावट हो जाती है। धातु के ऊपरी भाग में जहा तक कि विष चार वा एसिड पैठ सकी है चार की क्रिया के चिन्ह तो विष-कीट इत्यादि से प्रकट दिखाई देते है परन्तु उसके भीतर उसके अन्दर के अणुओं में कुछ गोलमाल सा हो जाता है। मूर्छा में यह अणुओं का गोलमाल चिरकाल तक नहीं रहता मृत्यु में यह गडबड अणुओ में चिरस्थाई होती है। अभी अच्छी प्रकार नहीं कहा जासकता कि यह गोलमाल अणुओं में क्या होता है। इसी प्रकार कुछ कुछ बातें जानी गई है और अभी बहुत कुछ जानने को बाकी है। आशा है कि अभी बहुत सी नई अद्भुत बातें जानी जायगी यह एक ऐसा आविष्कार विज्ञान शास्त्र मे हुआ है कि जिस से बढ़कर दूसरा होना कठिन है। चाहे कोई नूतन सिद्धान्त वा यन्त्र कैसाही उत्तम क्यों न जाना जाय पर यह सिद्धान्त सब से बढकर माना जायगा। यही जीव का प्रश्न (Problem) सब से श्रेष्ठ और सब से कठिन था जिसका कुछ कुछ परिचय हुआ है आगे और भी मालूम होने की सम्भवाना है।

यदि कोई प्रश्न करे कि भला इसके जानही लेने से क्या उपकार जगत का हुआ? तो इसका उत्तर सहज है-यह कि यह प्रश्न ऐसा है जिसे अङ्गरेजी में Before time (उचित समय से पहले) कहते है। इस समय यह प्रश्न करना ठीक ऐसाही हास्यप्रद है जैसा कि बालक के जन्मतेही कोई पूछे कि इस बालक से जगत का क्या लाभ हो सकता है।

जो कुछ हो इस अविष्कार से विज्ञान शास्त्र के लिए नया रस्ता

खुल गया है । इस परीक्षा से यह बात स्पष्ट रूप से सिद्ध होगई कि इस संसार के समस्त पदार्थों का—क्या स्थावर क्या जङ्गम—सारभूत एक ही है। अब सन्देह नहीं रहा कि "यथा निकायम् सर्व्वभूतेषुगूढम्" के सिद्धान्त को जिसे हजारो वर्ष पहले बडे बडे ऋषियो ने श्रीगंगा तट पर अथवा बन कानन में घोर तपस्या करके योगबल द्वारा जाना था आज उन्हीं ऋषियो के एक सुसन्तान ने उसकी पुष्टि कर अमूल्य यश लूटा है ।

इस अद्भुत नूतन और स्वादु फल का मज़ा जो मुझे मिल रहा है उसका स्वाद मै अकेला ही लेना नहीं चाहता हू किन्तु आप लोगो को भी उसे चखाकर उसका स्वाद कई गुण अधिक करदेने में इस फल को-सुफल करता हू ॥

ठाकुर प्रसाद,
सिद्धेश्वरी–काशी,
२६ फरवरी-१६०४

अत्र, तत्र, सर्वत्र

हाहा ताता !!! चार वर्ष हुए, जयपुर म्यूजियम में एक हसन्मुख शान्तमूर्त्ति तेजोमय महापुरुष को देखकर जो स्वाभाविक भक्ति हुई थी, वह यह जानकर कई गुनी बढ़ी थी, कि यह 'मङ्गल्यामनोहरा' मूर्त्ति ऐतिहासिक उदारता के आधार ताता महाशय की ही है जो प्रिन्सिपल मैकमिलन के साथ, वायसराय के बुलाए, शिमले जा रहे हैं जहाँ उनके प्रस्तोष्यमाण गवेषणाविद्यालय के नियम बनाए जा रहे हैं। आज यह कहते हमारी जिह्वा के शत शत खण्ड होते हैं कि वही स्वदेशशिल्पों के तात, देशी व्यापार के तात, और विदेशशिक्षित नवयुवकों के तात जमशेदजी नौशेरवां जी ताता जर्मनी में स्वर्गवासी हो गए। न मालूम किस कर्म के घोर विपाक से ऐसे जगन्मङ्गल महात्मा का अनिष्ट सुनना और सुनाना पड़ा। निज भुजोपार्जित तीस लाख रुपये की प्रशस्त सम्पत्ति को जिस दानवीर ने भारतवर्ष भर की वैज्ञानिक उन्नति के लिए, गवेषणाविद्यालय के लिए, सन्तानों के होते भी, संकल्प किया था, वह अब नहीं है। सदा सावधान वृटिश गवर्मेन्ट के सिवाय इतना चतुर और कौन होता जो छै छै वर्ष पर्यन्त नियमों की खटाई में इस दान के गहने को पड़ा रहने देता, और एक लौकिक कहावत का पात्र बनता कि "दान के घोड़े के दांत नहीं देखने चाहिएँ"? ताता की स्वदेशी वस्त्रों की मिलें स्वतन्त्र हैं, उनका बम्बई का होटल प्रशस्त है और यदि जगदीश्वर उस कर्मवीर को आयु देता तो वह अपने इस अभिमान को सत्य कर दिखाता कि उनके मध्यप्रदेश के कारखाने के चल जाने पर भारतवर्ष को लोहे की एक सूई भी विदेश से न लेनी होगी। गवेषणाविद्यालय को वे मूर्त्तिमान् न देख सके, और यदि वे दानपत्र न कर गए हो, तो न मालूम हमें उस के न खुलने के लिए दैव, ताता, उनके वंशज, सरकार, या अपने भाग्य, किसका ऋणी रहना पड़ेगा। अस्तु,

यत्रानन्दाश्च मोदाश्च यत्र पुण्याभिसम्भवाः।
वैराजा नाम ते लोकाः शाश्वताः सन्तु ते शुभाः॥

* * *

आज मुझे बड़े हर्ष का समय है। नए ढंग के लोग कितनी ही औंधी सीधी बातें करें श्रीवेङ्कटेश्वर समाचार के सम्पादक ऐसे चिकने घड़े है कि अंग्रेजीवालों की युक्ति की बरसात उन्हें सूखे का सूखा छोड़ जाती है। भला, यह क्या कम हिम्मत की बात है कि युक्तियो को ठुकरा देना और धर्म को शास्त्रमूलक और अन्ध-विश्वासमूलक मानना? यह क्या कम पण्डिताई है कि इस युग में भी विलायत यात्रा को बारंबार पाप कहते रहना? जहा नए समझदारो ने पुरानों को कुछ कहा कि उन पर, उनके फैशन और बकवाद पर टूट पड़ना क्या कम बहादुरी है? जो नया सिद्धान्त उसने कहा है, जिसे मैं हर्ष के मारे अभी नहीं कहता, उसका सूत्रण करना क्या दैवीशक्ति के बिना सम्भव है? धन्य! त्रिवार धन्य!! आपही हमारे ठहरे हुए और ठहरनेवाले भारतवर्ष के लङ्गर हैं आपके विना यह देश, आगे बढ़ही जाता और इसका कहीं पता भी न लगता।

धर्म सारे मन का सर्वोच्च भाव है। मन के एक अंश का उसपर इजारा नहीं है। भाव, ज्ञान,और संकल्प तीनों उस में लगने चाहिए। विना ज्ञान के भाव नहीं लगता, और न सङ्कल्पही अधीनता स्वीकार करता है। हम 'सप्तशृङ्गवृषभ' में प्रेम नहीं करते, और न उसके अधीन अपने सङ्कल्प को करते हैं, क्योंकि हम उसे जान नहीं सकते। बृहस्पति का वचन है कि "केवल शास्त्र को मानकर नहीं चलना चाहिए, क्योंकि युक्तिहीन विचार से धर्म हानि होती है"। प्राचीन

आचार्य भी वेदशास्त्रविरोधी तर्क को मानते है। किन्तु ऐसे प्रकाण्ड पण्डित से यह कब सहा जाय? यहां तो अटकलवालो के विरुद्ध जेहाद है, और ज्ञान (knowing) को कोश में से निकालने का यत्न है! नहीं तो डिपटीकलेक्टर मिश्र को 'रोर' का 'घोर' फल क्यो, और मीमासा के एक technical शास्त्रार्थ की इतनी खुशी क्यो? स्मरण रहै, केवल शास्त्रमूलक धर्म बाह्यधर्म external sanction of morality है, और उस में परस्पर विरोध, अपवाद, नई व्यवस्थाएं इन सब की ठीक व्यवस्था जो युक्तिवाद से करते हैं, वे सम्पादक को नापसन्द हैं। गतवर्ष के धर्म कार्य की आलोचना में आप फर्माते है कि "पण्डितो की सभा में सिद्ध हुआ कि धर्म शास्त्रगम्य है' धन्य! बीसवीं शताब्दी का चौथा वर्ष इसी के इन्तिजार में बैठा था! धर्म में अक्ल की गुंजाइश नहीं यह क्या आज सिद्ध हुआ है? शङ्कराचार्यजी ने मन्दिर पर सोने का कलश चढ़ाया! अब पृथ्वी अपनी धुरी पर जल्दी चलने लगेगी!! विलायत यात्रा अब **विवाद** के विषयो मे से उठकर **काम** को श्रेणी में आगई है, अब प्रश्न यह नहीं है कि विलायत यात्रा की जाय, या न की जाय, किन्तु यह है कि कितनी अधिक की जाय, किन्तु सम्पादकजी अभी इसे 'पाप' कहे चले जाते हैं। और जहा नयो ने कुछ कहा कि तुम सुस्त! तुम फ़ुज़ूल खर्च! तुम बकवादी! बाबा! हम बुड्ढो से तो वे अच्छे है कि अपने दोषो को पहचानते तो है, और हमारी तरह टर्रे में गोबरिया गणेश नहीं बनते! अच्छा भाई नयो! हमारे भाग्यही ऐसे है। तुम्हें यदि गालियें न सुननी है तो हमें हमारे दिग्विजयी सम्पादक के हवाले छोड़ जाओ! जब हमे ऐसे वज्र का सहारा है तो किसका भय है?

किन्तु सब से काम की बात एक और ही है। अभागे अहमदा-

वादी पेपर ने लिख मारा था कि जाति भोजन से रुपया बचाकर स्कूल में लगाया जाय। संसार में छोटी बात से बड़ी बड़ी बातें हो जाती हैं। व्याध के क्रौञ्च पक्षी को मारने से रामायण बन गया। वैसेही इस छोटी बात से एक अखण्डनीय, अपूर्व और उदार सिद्धान्त निकला है, जिसके निकलने से सम्पादक का और भारतवर्ष का गौरव हो गया है। वह यह है कि ' **जातीय भोजन जातीय एकता के मूल हैं** " वाह! बीसवीं शताब्दी में जातीयता का यह सिद्धान्त भारतवर्ष के एक प्रवीण सम्पादक ने निकाला, तो कहो तो, यह भूमि रत्नगर्भा है कि नहीं। काँग्रेस ने मूर्खता की। प्रति वर्ष चन्दा बटोरकर ब्रह्मभोज कर दिया करें। मुझे तो सुख स्वप्न दीखता है कि एक दिन मथुरा के कलक्टर और युक्तप्रान्त के शिक्षाविभागाध्यक्ष मथुरा के स्कूल को तोड़कर, घाटों पर खीर बहा देंगे और हम पशुओं की तरह उसे पीएंगे! सरकार पाँच लाख रुपया युनिवर्सिटियों को न दे, किन्तु दाक्षिणियों की कढ़ी और नागरों की इमली की सबीलें लगवा दें। क्यों सिख लोग बीस लाख रुपया बरबाद करते हैं? एक दिन "कड़ा प्रसाद" खाकर 'वाह गुरुजी की फतह' कह डालें। व्यर्थही मारवाड़ी चन्दा मांगते फिरते हैं। राजपूताना के किसी गन्दे शहर की गलियों में ब्राह्मणों को बिठाकर लड्डू स्वाहा कर डाले! होजाय, एक दफे तो घीकी नहरें बह जाय! टाटा को भी तार दिया जाय कि वे वृथा रुपया न नष्ट करके लड्डू तुड़वावें, और एक टोकरा हमारे दिग्गज सम्पादक के पास भेजदें।

सुनते हैं जयपुर में इतने हेडे होते हैं कि उनके वर्ष भर के खर्च से एक ऐसा कालेज चल सकता है जिसे विश्वविद्यालय के नये नियम नहीं डरा सकते। महाराज जयपुर को चाहिए कि अपने कालिजों को भी हेडों के अधीन करदें।

जै जमुना मैया की ' आओ लड्डू! हाय पेट!

जिमक्कड़ ।

हमारी आलमारी।

ब्रजविलास। मनुष्य ईश्वरकी कल्पना मनुष्यही के रूप में कर सकता है, और अपने अच्छे गुणो को अनन्तता तक बढाकर ईश्वर की मूर्त्ति बनाता है। यदि घोडा भी जगदीश्वर की कल्पना करेगा तो उसे घोडा ही मानेगा, यदि वृत्त ईश्वर की भावना कर सके तो वह उसे वृत्त ही समझैगा। यही सिद्वान्त बडे उदारभावसे हिन्दुओ की अवतार कल्पना में भरा हुआ है, और लोगो की रुचि के अनुसार, विष्णुपुराण और महाभारत के श्रीकृष्ण, भागवत और ब्रज-विलास के श्री कृष्ण में परिणत हो गए। अग्रेजी पढे श्रीकृष्णभक्त "मैट्रिक्युलेशन लीला" और "नकटाई लीला" के क्षेपक ब्रजविलास मे जोडेंगे या नहीं यह तो भविष्यत् के हाथ है, किन्तु अपनी अपनी रुचि के अनुसार भक्तों ने लीलाए बनाई हैं। हमारे सामने जो पुस्तक है वह श्रीकृष्णभक्तो और हिन्दी कविता के प्रेमियो के आदर की सामग्री "ब्रजवासी दासजी कृत ब्रजविलास" का जेबी सस्करण है जिसे बम्बई के निर्णयसागर प्रेस ने "अनेक पुस्तको से प्रति शुद्व कराकर और मुख्य मुख्य क्षेपको से अलङ्कृत!" किया है। जिल्द बहुत बढिया है, छपाई बहुत साफ है, आकार अच्छा है, मूल्य बारह आने है। क्षेपको के प्रेमी पाठको के लिए क्षेपक खूब रक्खे गए हैं, किन्तु भविष्यत् सस्करणो में यदि प्रकाशक क्षेपकों को अलग छाप दिया करें, या भिन्न टाइप में दिया करें तो साहित्यप्रेमी

बड़े प्रसन्न होंगे । कठिन शब्दों पर टिप्पणी दी गई है । पृष्ठ ३१ में 'जात कर्म' को 'जाति कर्म' छापकर इसका अर्थ 'नान्दी श्राद्ध' लिखा गया है । क्या आजकल के वैश्यों के विवाह के एक दिन पहले गले में रस्सा डालने की चाल पर व्रजविरह और नन्दलीला के पीछे और 'रुक्मिणी चरित्र' के पहिले 'यज्ञोपवीत लीला, लिखी गई है? महारास भी और 'कुब्जा'गृहप्रवेश भी, और उसके पीछे जनेऊ ! यह भी यहीं पढ़ा कि श्रीकृष्ण और राधा की 'सगाई' नन्द जी ने की थी !

यह संस्करण सुन्दर और उपादेय है । कविता की समालोचना यहां नहीं ।

* * *

करपल्लवी में हाथों से बात करने की विधि, और **गुप्तलेख** में अक्षरों के उलट फेर से अपना अभिप्राय दूसरा न जान सके ऐसे हिन्दी लिखने की रीति है । दोनों पुस्तकें रोचक है । दूसरी में साइन्स की भी बातें है । मूल्य प्रत्येक का एक आना । मिलनेका पता ग्रन्थकार बाबू शिवप्रसाद क्रैरेज डीपार्टमेण्ट, ई॰ आइ॰ आर॰ प्रयाग राज ।

* * *

त्रैभाषिक व्याकरणशब्दावली में अंग्रेजी खालकवारी वल्लभ-कोष के रचयिता पण्डित व्रजवल्लभ मिश्र ने अंग्रेज़ी हिन्दी और उर्दू व्याकरण के समानार्थ शब्दों का संग्रह करने का यत्न किया है। अंग्रेजी व्याकरण के शब्दों के जहां पूरे अनुवाद न मिल सके वहा नए शब्द गढ़े भी गए है । हिन्दी और उर्दू को एक करनेवालों का यत्न यहां विफल होता है, क्योंकि किसी अंग्रेज़ी शब्द का समानार्थ शब्द संस्कृत में या अरबी में ही मिल सकता है । यत्न बहुत अच्छा है । मूल्य चार आना कुछ अधिक है । छपाई लहरी प्रेस की है ।

ग्रन्थकार के पास, सामोद नरेश के प्राइवेट सेक्रेटरी, जयपुर के पते से मिल सकती है।

***

परमापथ्य प्रकाश—यद्यपि कई शताब्दियों से हम फारसी और अरबी भाषा पढ़ते रहे है तो भी हमने उनके प्रचुर साहित्य से अपना उपकार न किया। जब दाराशिकोह ने उपनिषदों का अनुवाद कराया, तो कुरानशरीफ का संस्कृत में अनुवाद क्यो न हुआ? हिन्दी साहित्य मे भी फारसी का दिवान हाफिज नहीं है, हा, शाहनामा है। शेखसादी की 'करीमा' फारसी प्रेमी मात्र के आदर की वस्तु है, और उसकी सरल किन्तु भावमय उपदेशावली सभी को मोहित करती है। इस ग्रन्थ में ब्रजभाषा के दोहा चौपाइयो में करीमा का अच्छा अनुवाद हुआ है। * यदि यह अनुवाद खड़ी बोली कविता में होता तो बहुत अच्छा होता क्योंकि ब्रजभाषा नौसिखुओं के हाथ मे उच्छृङ्खलता की पराकाष्ठा को पहुँच जाती है।

"इक समरथ इक विपद विलीना। इक सजीव इक जीवन हीना।
इक निरोग इक कृशतनु रोगी। स्थविर एक इक यौवन भोगी।
धर्मी एक एक रत पापा। कोइ शुभयुत कोई छल व्यापा।
इक सुकाजरत शुभमति धारी। इक निमग्न अघ सरित मझारी"।

बस, यही अनुवाद का नमूना है। तुकान्त के लिए शब्द मरोड़े तोड़े भी गए है। अन्त में ग्रन्थकार की संस्कृत कविता जीवदुर्दशाविंशति, शोकविंशति, और सिद्धनाथ प्रशस्ति है। वे भी अच्छी है।

---

* बाबू परमानन्द, असिस्टेन्ट हेडमास्टर, टाउनस्कूल आरा। सच्चिदानन्द-सिंह प्रेस आरा। १६ पृष्ठ। चार आने।

तुलनापदवीं न कश्चन (!) तव मृत्यो भुवि यातुमीश्वरः
करुणारहिते विधौ भवान् विधिना केवल मारितः पुरा ।

* * *

मोजफ्फरपुर हिन्दी भाषा प्रचारिणी सभा का चतुर्थ वार्षिक विवरण (१९०४ ई०)। सभा के ६ अधिवेशनों में लेख पढे गए। पुस्तकालय में ४९५ ग्रन्थ है जिसके लिए मुकुटधारणोत्सव पर कुछ धन कलक्टर साहब ने भी दिलवाया है। सभा ने यूनिवर्सीटी कमीशन के काल मे कलकत्ते की सिण्डिकेट में विहारियो के होने के बारे में मेमोरियल दिया, और मैकमिलनी पुस्तको की हिन्दी पर लिखा पढी की। सभासद ४६, आय २३२॥-) व्यय २२९)॥। मन्त्री नारायण पाण्डे बी० ए० बी०एल० हैं जो कचहरी कोश बना रहे हैं। सभा को अपने नगर मे एक अच्छा पुस्तकालय बनाना चाहिए, और काम तो होते ही रहैंगे।

***

हिन्दी व्याकरण। केशवरामभट्ट कृत। विहरबन्धु छापाखाना, बांकीपुर। १९२ पृष्ठ। आठ आना।

"हिन्दी व्याकरण पढने से हिन्दी ठीक ठीक बोलना और लिखना आजाता है" इस परिभाषा से हिन्दी के पुराने लेखक भट्टजी ने अपने अच्छे व्याकरण का आरम्भ किया है। एक परिहास प्रिय मित्रने, इसे देख कर, हिन्दी व्याकरण की यह परिभाषा बनाई कि "हिन्दी व्याकरण वह मृगतृष्णा है जिसके पीछे 'हिन्दी ठीक ठीक लिखना और बोलना जान' कर ही अच्छे लेखक दौडने लगते हैं।" संस्कृत व्याकरण के जटिल और सुश्रृङ्खल नियमो की चालपर हिन्दी व्याकरण बनाने के पूर्व कई बातो का विचार करना चाहिए। संस्कृत का सब से प्राचीन और नियमित व्याकरण (जिसे व्याकरण का आदर्श भी कह सकते हैं) पाणिनि का व्याकरण है। उस प्रायः

पूरे व्याकरण में यदि समय भेद से प्रयोग भेद के कारण कुछ परिवर्तन हुए तो वे कात्यायन और पतञ्जलि ने बढा दिए, और वेदों के विरुद्ध इसी शास्त्र में यह वाक्य चला कि 'यथोत्तरं मुनीनां प्रामाण्य"। इस तिहरी जकड़न से संस्कृत भाषा का अङ्ग भङ्ग हो गया और पतञ्जलि के पीछे के वैयाकरणों का इतिहास उन्नति का नहीं, अवनति का है। कई वैयाकरणों का यत्न पाणिनि के सत्तेप सूत्रों को और भी संक्षिप्त करने में रहा, आधुनिक समय में न्याय की गोद लेकर नवीन वैयाकरणों ने बाल की खाल खैंचना आरम्भ की, और यदि कोई नए रूपों के लिए नए सूत्र बने तो केवल एक यही कि "निरङ्कुशाः कवयः"। भाषा की लहलहाती बेल को धूप और बरसात से बचाने के लिए जिस ग्लासकेस में बन्द किया था, उसने भाषा की सास घोट दी, वा यों कहिए कि बुढिया संस्कृत भाषा व्याकरण की लाठी के इतनी अधीन हो गई कि स्वच्छन्दता से चल फिर न सकी। भट्टजी ठीक कहते हैं कि यदि "संस्कृत भी आज प्रचलित भाषा होती तो पाणिनीय व्याकरण भी कभी ऐसा पत्थर की लकीर न होता" (भूमिका, ९) और प्रचलित हिन्दीभाषा में कोई व्याकरण वैसा होने का दावा नहीं कर सकता। व्याकरण की जड़ पर भाषा बढती है सही, किन्तु यदि उन जड़ों को गिनकर, नाप तोलकर, जाचकर बढने से रोका जाय और अन्धकार में से निकाल कर सबकी उंगलियों के नीचे रक्खा जाय, तो वे न बढेंगी और बेल के बढने की भी आशा नहीं करनी चाहिए। भाषा वही जो बिना सीखे आवे, जो व्याकरण को अपना दास न बनाकर उसकी दासी बन गई, जिसने ठोकरों से न गिरूं यह विचार कर ली हुई लकड़ी को अपनी अनन्य आधारभूता वैसाखी बनाली, उसे भाषा नहीं कहा जा सकता। लैटिन, ग्रीक प्रभृति भाषाएं अपने अन्त-

काल में व्याकरण के परवश बनी है, और इसके विरुद्ध अंग्रेजी, फ्रेंच प्रभृति भाषाएं व्याकरण को अपने साथ नचाती हैं। परिवर्तन संसार का नियम है, और हिन्दी भाषा अभी जितनी छोटी है उसके देखते जिन डेढ़ दर्जन देशी और विदेशी वैयाकरण सज्जनों के नाम भट्टजी ने अपने व्याकरण की भूमिका में दिए हैं, उनका होना कम नहीं मालूम देता । कहीं इस से वही बात न हो कि जैसे नायिका भेद के लक्षण ग्रन्थ हिन्दी में बीसियों होने पर भी कोई लक्ष्यग्रन्थ महाकाव्य नहीं जिसमें उनका समन्वय हो सके, वैसे ही व्याकरण के नियमशास्त्र तो रहैं, किन्तु लक्ष्य के न होने से हमें भी "लवणै-कचतुष्क" बनकर काना बनना पड़े। और हुआ भी कुछ कुछ ऐसा ही है। भट्टजी लिखते है—"क्या करें, दिल्ली के प्रामाणिक कवि प्राय. सभी मुसल्मान है। हिन्दू कवियों को तो प्राय: खड़ी बोली आती ही नहीं। दिल्ली का हिन्दू भला गद्य लेखकही प्रसिद्ध और प्रामाणिक जो कोई होता तो उसी के लेख से दृष्टान्त उद्धृत किए होते अत एव क्षमाके पात्र हैं (भूमिका ५)"अतएव भट्टजी इस अर्ध नारीश्वर साहित्य का व्याकरण बनाती बेर 'जों जों काल बदलता जाता है... तो तो भाषा भी बड़ी उमग के साथ रोज़ रोज अपना रंग बदलती जाती है और अन्धाधुन्ध (संज्ञा या क्रिया विशेषण ?) फैलती जाती है" इस भाषा के जीवित होने के लक्षण को 'आपद्' न माने। जब बच्चा बढने लगे तब उसकी टांगें न बांधनी चाहिए, या बढते पैरों को लोहे के जूते में बन्द करके चीनी युवती की मण्डूकप्रुति का अनुकरण न करना चाहिए।

एक बात और भी है। जब कात्यायन ने संस्कृत के शब्दार्थ सम्बन्ध को भी सिद्ध और लोकगम्य माना है, तो हिन्दी

व्याकरणके प्रचार के लिए (external sanction) बाह्य रक्षा भी नहीं है। हिन्दी वालो को 'निष्कारण' वेदोंकी रक्षा नहीं करनी है, उन्हें आहिताग्नि होकर अपशब्द बोलते ही प्रायश्चित्त करने नहीं दौडना पडता, और न उन्हें यह धमकी है कि यदि प्रणाम के उत्तर में वे प्लुत न बोलेंगे तो उन्हे स्त्रियोंकी तरह प्रणाम किया जायगा। उन्हें प्रयोग के लिए आप्तवाक्य, व्यवहार, सान्निध्य आदि से शक्ति-ग्रह हो सकता है, और व्याकरण को वे उसका सहायक ही मानेंगे न कि एक मात्र अधिकारी। हा, विदेशियो को व्याकरण जानने की बडी फिक्र रहती है। "और और देशोके लिए जो हो सो हो पर बिहारियो के लिए तो बिना हिन्दी पढे कल्याण ही नहीं। क्योंकि इनकी मातृभाषा कहीं मगहिया कहीं भोजपुरिया कहीं तिर्हुतिया है, और यह हिन्दी उन्हें सीखकर अपनी अपनी मातृ-भाषाओं से उल्था करके बोलना पडता है (भूमिका,१)"। आराकी सभा शायद इस बात को न माने।

भट्टजी ने बहुत ठीक हिन्दी उर्दूको एक भाषा माना है, किन्तु मौलवी शिवली नौमानी फरमाते है कि मौलवी फतह महम्मद ने जो उर्दू व्याकरण लिखा है उसमें उर्दूका व्याकरण अरबी के सांचे में ढाला गया है। क्या यह बात सच है कि केवल इसी लिए कि उत्तर भारत के मुसलमान उर्दू को बोलते है, उस (उर्दू) आर्य घराने की कुलबाला को सिमियातिकी बुर्का और पजामा पिन्हाया जाता है? नागरी प्रचारिणी सभा को मौलवी साहब को इस कामसे रोकना चाहिए।

भट्ट जी व्याकरण के साथ 'भाषा के इतिहास का लिखना भी अवश्य' नहीं समझते, और उनके मतमें छन्द को व्याकरण से ऐसा कुछ लगाव भी नहीं है" (पृ ६ भू॰) क्योंकि उनने 'पाणिनि

का टरा यथा सम्भव अवलम्बन, किया है । किन्तु एक बात यह भी है कि हिन्दी भाषा का इतिहास लिखना आसान काम नहीं है, उसके कई भाग अभी ऐतिहासिक खोजकी प्रतीक्षामें अन्धकार के काले उदर मे छिपे हुए है । यदि हिन्दी छन्दको भट्टजी लिखते भी तो उसमें क्या क्या लिखते । संस्कृत और प्राकृतका पूरा छन्दः शास्त्र, फारसी और अरबी के पूरे वजन, और अंगरेजी के साधारण छन्दोंको गिनकर भी पिण्ड नहीं छूटता, क्योंकि खड़ी बोली के नए छन्द बँगला और मराठी छन्द. शास्त्रतक को नहीं छोड़ते। पाणिनि ने Punctuation नहीं लिखा, यह भी अंग्रेजी व्याकरणों की चाल है । भट्ट जी ने उसे लिखा है (१८७-१९२) । उच्चारण के भेद पाणिनि ने शिक्षा * में लिखे है, किन्तु भट्ट जी ने इस व्याकरण में लिखे हैं। (पृष्ठ ४९) शब्दोंका निरुक्त, उनका भिन्न भिन्न भाषाओं से आना, प्रभृति पाणिनीय में नहीं है तो भी भट्ट जी के व्याकरण के २१-३० पृष्ठों में निरुक्त का आनन्द आता है । पद परिचय के माने Parsing पार्जिंग और अन्वय का अर्थ (Analysis) अनालिसिस (१७०,१९३) पाणिनीय में नहीं जान पड़ते। सो भट्टजी के व्याकरण में शिक्षा है, व्याकरण है, निरुक्त है, पार्जिङ्ग है, अनेलिसिस है । तो फिर, छन्द और इतिहास के लिए पाणिनि की दुहाई देना ठीक नहीं ।

ग्रन्थ मे सात अध्याय हैं । पहले में वर्ण विचार है । छठे में वाक्य विचार और सातवें में चिन्ह विचार होने से बाकी में शब्द विचार है । दूसरे अध्याय में संस्कृत, फारसी और अरबी धातुओं का, उनसे बने शब्दों की पहिचान का, अच्छा उल्लेख है । ठेठ हिन्दी के [तत्सम और तद्भव] धातु भी खूब छाँटे हैं। तीसरे अध्याय में संज्ञाके सम्बन्ध में लिङ्ग, वचन, कारक, विभक्ति का विचार है । चौथे

* यथासौराष्ट्रिका नारी तक्रँ इत्यभिभाषते । इत्यादि ।

में धातु, क्रिया, उनके रूप और वाच्य का विचार है। पाचवें मे व्योत्पत्तिक और अव्योत्पत्तिक (सी। व्युत्पन्न और अव्युत्पन्न क्यो नहीं?) अव्यय, कृत्, तद्धित आदि का विचार है। छठे मे महावरे का भी दिग्दर्शन कराया गया है। क्या क्रम में, क्या विषयमे, क्या उदाहरणो की चुनावट में, यन्थ बहुत अच्छा बना है, और आज-तक के हिन्दी व्याकरणो के देखते पढने पढाने योग्य है।

९ पृष्ठ से 'अक्षरो के हेरफेर' के नामसे सस्कृत की सन्धिया, षत्व, णत्वके नियम दिए गए हैं। हिन्दीमे कोई सन्धि नहीं करता। सस्कृत से जुडे जुडाये पद ले लिये जाते हैं। हिन्दी वाले विवक्षा से विवत्ता नहीं बनाते। अत एव हिन्दी में सस्कृत की सन्धिया Phonetic परिवर्तन माननी चाहिए, और सिद्ध शब्द ले लेने चाहिए।

"और और भाषाओ से आये हुए और विशेषत: देशज शब्दों की व्युत्पत्ति ...... विषय कोष का है, व्याकरण का नहीं" (पृ १०) नहीं यह व्याकरण का ही विषय है। यदि कोषका अर्थ आधुनिक Dictionary हो तो व्याकरण उसके पेट में आ जाता है। पृष्ठ २० वजन बहुत अच्छे हैं, किन्तु थोडे है।

भट्टजीने एक शून्य प्रत्यय (पृ· ३५) और बुभक्कड गवइया प्रभृति में अक्कडप् और वइयाप् प्रत्यय (पृ· ४६) बनाए है। यह विलक्षणता विना प्रयोजन मालूम होती है। सस्कृत व्याकरण की तरह 'पित्व' का क्या फल माना गया? विभक्तिया पाच मानी गई है— कर्त्ता, का, से, का, में। उनके प्रयोगो का वर्णन पूरा है। वाच्य, धातु, और अव्ययो में कई नई वाते हैं। एनेलिसिज और पार्सिङ् बालको को बडे उपयोगी होगे, क्योंकि उनसे वाक्यो की गठन जल्दी समझमें आती है।

रोज़मर्रा और वाग्धाराके अध्याय कुछ वड़े होने चाहिए थे।

इन्हीं पर जीवित भाषा का व्याकरण निर्भर है । "मुहावरा मानो मनुष्य के शरीर मे कोई सुन्दर अङ्ग है और रोज मर्रे को ऐसा जानना चाहिए जैसे अङ्गों का तारतम्य मनुष्यके शरीर में" (पृ० १८४)

भाष्यकारने लिखा है कि जैसे घड़ेकी जरूरत पड़ने पर कुम्हार के यहां जाना होता है, वैसे वैयाकरण को यह कोई नहीं कहता कि हमें शब्द बना दीजिए हमें उनका प्रयोग करना है । साधारण व्यवहार का मार्ग दिखाने ही भर के लिये व्याकरण की आवश्यकता है, और हिन्दी की वर्तमान दशा में भट्टजी का व्याकरण प्रायः इस काम के लिए योग्य है । मत भेद तो सदा ही रहते है ।

भट्ट जी इसका मूल्य ॥) बतलाते है, किन्तु वे कहते है कि पाठ्यपुस्तक होने पर इसका मूल्य कम भी हो सकता है । हम इस पुस्तक का मङ्गल चाहते हैं ।
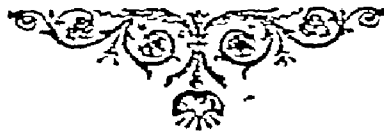
विज्ञापन ।

प० महावीरप्रसाद द्विवेदी को कौन नहीं जानता? वह हिन्दी के बड़े भारी कवि हैं। उनकी कविता में जो शब्द का अलङ्कार का, भाव का निभाव होता है वह और जगह मिलना मुश्किल है। उनके कोई ३० काव्यों का संग्रह हमने 'काव्यमञ्जूषा" नाम से छपाया है। टाइप, कागज, सब कुछ बहुत बढ़िया है। कविता के प्रेमियों को ऐसा मौका बहुत बिरला मिलता है जब वे अच्छे कवि की अच्छी कविता का अच्छा संग्रह पा सकें। अब उन को मौका है उन्हें अपनी २ रुचि के अनुसार बहुत बढ़िया कविता मिल सकती है। उन्हें चूकना नहीं चाहिए और झटपट ॥) भेजकर एक प्रति खरीद लेनी चाहिए।

पुस्तक मिलने का पता—

मेसर्स जैन वैद्य एण्ड को।

जयपुर।

जयपुर एजेन्सी।

यदि आपको जयपुर की प्रसिद्ध दस्तकारी की चीजें मगानी हो तो उचित है कि और जगह व्यर्थ अधिक व्यय न करके हमारे यहा से अच्छी चीजें मगवाले। दाम उचित लगेगा, चीज ऐसी मिलेगी कि जिस से जयपुर की कारीगरी का नमूना जाना जाय। सागानेरी छींटें, पत्थर मकराने और पीतल की मूर्त्तियां और बरतन, लकड़ी का काम, सोने की मीनाकारी प्रभृति सब चीजें उचित मूल्य पर भेजी जा सकती है। यदि आप यहा से मगवायेंगे तो हम विश्वास दिला सकते है कि आप धोखा न खायेंगे और सदा के लिए

गाहक हो जायेंगे । जयपुर के सुन्दर दृश्यो के सुन्दर चित्र अलभ्य और ऐतिहासिक चित्र और फोटो, हाथ की बनाई बढ़िया तसवीरे आपकी आज्ञानुसार भेजी जा सकती है । एक बार मगाइए तो । हमारे यहा के चित्र प्राय. इङ्गलेण्ड भी जाया करते है और सुप्रसिद्ध सचित्र पत्रों ने उनकी अच्छी क़दर की है ॥

मेसर्स जैन वैद्य एण्ड को,
जौहरी बाज़ार जयपुर ।

समालोचक में विज्ञापन की दर ।

पहली बार प्रति पङ्क्ति	=)		
छः बार के लिए	~)	छपे विज्ञापन की बटाई	५)
वर्ष भर के लिए एक पेज २०)	आधा पेज १२)	¼ पेज	८)

चौथाई पेज से कम का विज्ञापन नहीं लिया जायगा ।

असली पान का मसाला !!!

कथ्था, चूना, सुपारी, इलायची कोई चीज़ की जरूरत नही पान पर जरासा मसाला डालकर खाने से सब चीज़ो का स्वाद आता है मुह लाल सुर्ख होता है दाम ।) दर्जन का ३।) थोक लेने से और भी किफायत ।

सैकड़ो अजीब चीजो से भराहुवा हमारा बडा सूचीपत्र जरूर देखना–बेदाम भेजा जाता है ॥

पता—जसमाईन इन्डिया एजन्सी
कालवा देवी रोड बम्बई

नोटिस

यहा चूरू मे मोदा अफीम नीलाम का पटने का पेटी तेज़ीमन्दी अखर दडे का होता है । अगर किसी को कराना हो तो हम को लिख आढत लेकर फायदे से करदेगे ।

तार चिट्ठी भेजने का पता-तेजपाल लोहिया,
मु० चुरुज़िला बीकानेर

समालोचक

भाग२] मासिक पुस्तक [संख्या २३,२४

वार्षिक मूल्य १।।)] जून, जुलाई १९०४ [यह संख्या ।=)

विषय

प्रोप्राइटर और प्रकाशक ।

मिश्र जैन वैद्य, जौहरी बाज़ार, जयपुर ।

PRINTED AT THE SIDHESWAR PRESS BENARES

समालोचक

२ भाग | जून, जुलाई १९०४ | २३, २४ संख्या

पद ।

यह सुनिए विनय दया करि गिरिवरधारी ।
हम आइ शरण अब दृढ़ करि गह्यो तिहारी ॥

* * * *

मोहि बहुत दिवस जगमें भटकत ही बीते ।
बिन बात बजावत गाल सदा ही रीते ॥
पै लह्यो न कोऊ अपुने साँचे मीते ।
दुख भोगत बीते सब दिन जितेक जीते ॥
भटकत भटकत सुनि नाथ विरह तुव भारी ।
हम आइ शरण अब दृढ़ करि गह्यो तिहारी ॥

* * * *

पितु मातु बंधु दारा सुत संपत सेते ।
दुख सुख प्रवाह अनेक सदाही खेते ॥
सबहीन टटोले रहे आपुने जेते ।
तब अंत आइ हम अबहिं कछुक यह चेते ।
तुम बिना और सबही हैं मिथ्याचारी ॥
हम आइ शरण अब दृढ़ करि गह्यो तिहारी ॥

* * * *

अपनी अपनी दिसि सबही खैंचि बुलावैं ।
सबही निज निज करतूतन हमें लुभावैं ॥
सुख सम्पति में सब सगे बनैं बलि जावैं ।
दुख परै सबै मुख मोरि तुरत बिलगावैं ॥
तब तुमही एक विश्वास नाथ दुखहारी ।
हम आइ शरण अब दृढ़ करि गह्यो तिहारी ॥

*   *   *   *

सब मोहित से ह्वै तुमको रहे भुलाई ।
तुव माया की सिरपर घटा रही है छाई ॥
बिनु कृपा तुह्मारे कछु नाहिं परत लखाई ।
माया मद छके रहैं सबै बौराई ॥
अब राखि लेहु हे नाथ ! विघ्न सब टारी ।
हम आइ शरण अब दृढ करि गह्यो तिहारी ॥

*   *   *   *

करि कृपा प्रेमरस अपुनो हमें छकाओ ।
मोहि देइ अभयपद अपुनो करि अपुनाओ ॥
बहु भटक चुके अब हमें न प्रभु भटकाओ ।
जन जानि आपुनो अब पिय हृदय लगाओ ॥
तुव राधाकृष्णसुदास जाइ बलिहारी ।
हम आइ शरण अव दृढ़ करि गह्यो तिहारी ॥

श्रीराधाकृष्णदास ।

*   *   *   *

अत्र, तत्र, सर्वत्र।

जब ऋषि मरने लगे, तब मनुष्यों ने देवताओं से पूछा "हमारा ऋषि कौन होगा?" देवताओं ने उनको तर्क ऋषि दिया।

निरुक्त १३।१।१२

सहयोगि साहित्य—बङ्गमहिला के तीव्र तथा सत्य लेखों पर जिन हिन्दी के पत्रों ने हल्ला मचाया है उनकी योग्यता का अच्छा परिचय मिल गया है। मनुष्यों के कामों के हिसाब में स्वार्थ का इतना हिस्सा होता है कि वही मनुष्य जो समालोचना का अगुआ बनता था, और समालोचना की चर्चा से आकाश पताल को एक करता था, वही, केवल इस लिये कि जैसे वह औरों को झूठ अपशब्द कहता था, वैसे कोई दूसरा भी उसे कुछ सच्ची बात सुना सकता है, कहता है कि समालोचना की अब हिन्दीमें जरूरत ही नहीं। औरों की अवस्था पर कहने वाले स्वयं अपना मुंह तो दर्पण में देखें कि वे स्वयं भी जरद्गव नहीं हैं। जिन के हाथ कीच में सने हुए हैं उन्हीं ने अपने हाथों को शुद्ध बताने का दावा किया है, श्रीवेङ्कटेश्वरसमाचार के से निष्पक्षपात दर्शक ने अपना मत स्पष्ट और सत्य प्रकाश किया है। किन्तु उन हठी और सत्यभीरु लेखकोंको हम क्या कहैं, जिन ने कदर्य कुत्सित और जघन्य आक्रमणों से, बङ्गमहिलाके पूज्य स्त्रीत्व पर गर्हित आक्रमण किए हैं और दाढ़ीमें तिनके की कहावत को चरितार्थ किय

है। कहाँ हैं वे पुराने लोग जो कहते हैं कि स्त्रियोंका हमारे यहाँ आदर है?वे इन मर्यादारक्षक सम्पादकों की Chivalry देखकर प्रसन्न हों। इस दुःखदायक और उद्वेगजनक लेखप्रणाली से बड़ा खेदतो यह है कि अपने हृदय को खोज कर,अनुतापपूर्वक अपने अपराध स्वीकार करनेके स्थानमें वे गालियों के मुंह आए है किन्तु समालोचक जब सत्य कह रहा है, तो वह कभी इन गालियों से डरनेवाला नहीं है। बङ्गभाषा में चोरी की और अश्लील पुस्तके हैं, तो किस तर्क से वे हिन्दी में भी होनी चाहिए? एक पीरे मुर्शद हमारा हाथ चूमने चले थे कि किसीने उनकी आंख फोड़दी। ऐसे मौके पर एक ग्रामीण उपाय है कि वे अढ़ाई कदम उलटे पैरो चलें और अपनी समिति से मिले। हमें अपना मरीज़ कहने को कई आगे बढते हैं, किन्तु समालोचक की तपस्या यों नहीं च्युत होती। सरस्वती अपना रोचकता रखती है किन्तु धर्म के विषय में वेवेंके कोटेकी शोभा पाती है। जब सरस्वती में माइकेल मधुसूदनदत्त का जीवनचरित निकला था तब एक महाशयने कहा था कि सरस्वती कृस्तान बनने का उपदेश करती है। ठीक ऐसीही उदारता और दूरदर्शिता प्रयाग समाचार 'दत्त' के इतिहासकी आलोचना में दिखा रहाहै। हितवार्ता के चित्र केवल स्याही के पुंज होते हैं और उसकी भाषा नहीं सुधरती। बङ्गवासी अभीतक नहीं सुधरा। भारतमित्र लोकप्रिय होरहा है। वैश्योपकारक और मित्रने अच्छी उन्नति की है राजपूत जी का जोश ठण्डा होगया है मोहिनी नामकी भूखी है। सुदर्शन के उठने की आशानहीं, आनन्द कादम्बिनी ने वर्ष पूरा किया, किन्तु पौने दो वर्ष में हैं। काशी संस्कृत यूनिवर्सिटी का काम उदारता से

चलना चाहिए। इन्दौर और पञ्जाब में नागरीप्रचार के लिए उपदेशक जानेके पहले, "कः कालः कानि मित्राणि," सोच लेना चाहिए। हम—पत्रको समय पर न निकाल सकनेकी लज्जाको हम अबके मिटाने का उद्योग करेंगे। केवल समालोचना साहित्य का पेट नहीं भरती इससे और और सर्वोत्तम लेखों को भी स्थान दिया जाता है। उच्च साहित्य की कमी से चाहे वहां समालोचना का अवकाश न हो, किन्तु उपन्यास Parasites के उच्चाटन की बड़ी आवश्यकता है। इस वर्ष इन लेखोंके लिए लेखकों को इस प्रकार उपहार दिए गए।

सो हऽम्	एक सोनेकी अंगूठी।
खेल भी शिक्षा है	एक बनारसी रेशमी थान।
व्यय	लेखकी १५० प्रति।
लाखा फूलाणी	लेखकी २० प्रति।
हि	लेखकी ३५ प्रति।
हिन्दी के ग्रन्थकार	एक सांगानेरी साड़ी।
भारत वर्षके इतिहास, की समालोचना	लेखकी ७५ प्रति।

समालोचक के ग्राहकों की संख्या कम हैं, बहुतही कम है। उनके भरोसे और मनुष्य पत्र निकालने का साहस नहीं करता। पौने से अधिक ग्राहक जहां वी पी लोटावै वहां क्या आशा हो सक्ती है? तथापि मातृ भाषाकी सेवा के आग्रह से और विद्वानों के परितोषके लिए सम्पादक और प्रकाशक समालोचक को यथावत् चलानेमें उद्यत होते हैं। जगदीश्वर से प्रार्थना है कि आगामिवर्ष भी अपने गुरु कर्तव्यके योग्य शक्ति सम्पादकों को मिलै और जान्सन साहबके

पवित्र आसन को भूषित नहीं तो दूषित करने का मौका तो न मिले। अन्त में सहयोगियों और सुयोग्य लेखकों से निवेदन है कि वे इस नौका को मझधार छोड़कर प्रकाशक को दुःखित न करें। गतवर्ष कर्तव्य के आवेगमें, सत्य के पक्षमें, वा मनुष्यके स्वाभाविक रागद्वेषसे, यदि किसी को ज्ञात वा अज्ञात कुछ अनुचित कहा गया हो, तो वे मनुष्य जानकर क्षमा करें और आगामी वर्ष के लिए समालोचक को आशीर्वाद देवें।

संगच्छध्वं संवदध्वं सं वो मनांसिनजायताम्।
देवा भागं यथा पूर्वे संजानाना उपासते॥

समानो मन्त्रः सामितिः समानी समानं मनः सह चित्त मेषाम्। समानं मन्त्रमभि मन्त्रये वः समाने न वोहविषा जुहोमि॥

समानी व अकूतिः समाना हृदयानि वः।
समानमस्तु वो मनो यथा वः सुसहासति॥

ॐ शांतिः शांतिः शांतिः॥

* * *

व्यंगार्थ कौमुदी

श्रीमहाराजा सवाई प्रतापसिंह कृत नहीं है

व्यंगार्थ कौमुदी को बहुधा कवि कोविद जयपुर के महाराजा सवाई प्रतापसिंह जी की बनाई मानते हैं और राजकोट काठियावाड़ की छपी हुई प्रति के टाइटिल पेज में भी यही लिखा है, वरन प्रस्तावना में महाराजा का बादशाही खिताब राजराजेन्द्र भी नामके साथ चढ़ाया है जिससे पढ़ने वालों को उक्त महाराजा के कर्ता होने में संदेह नहीं रहता, परन्तु इतिहास वेत्ता और व लोग कि जिनको महाराजा के रचे हुए ग्रन्थों के देखने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है इस ग्रन्थ को राजराजेन्द्र महाराजा श्री सवाई प्रतापसिंह जयपुरनरेश का बनाया नहीं स्वीकार कर सकते, चाहे कोई कितनाही वाद विवाद टाइटिल, प्रस्तावना, और समाप्ति में उनका नाम लिखा हुआ देखकर, क्योंन करे। हां वादी यह शंका कर सकता है कि टाइटिल, प्रस्तावना और समाप्ति को जाने दीजिये जो बहुधा दूसरे पुरुषों के लिखे होते हैं पर मूल ग्रन्थ में तो जगह जगह कर्ता का नाम 'प्रताप' मिलता हैं फिर कैसे यह महाराजा प्रतापसिंह की बनाई नहीं है ?

इस शंका का समाधान पुस्तक को विचार पूर्वक देखने पर नीचे लिखे प्रमाणों से हो सकता है।

१ प्रथम तो व्यङ्गार्थ कौमुदी कर्त्ता ने अपना नाम " प्रताप सुकवि " मङ्गला चरण में लिखा है जैसे—

॥ दोहा ॥

करि कविजनसों बीनती, सुकवि प्रताप सहेत।
किय व्यंगारथ कौमुदी, व्यंग जानवे हेत ॥

इस दोहे से इस ग्रन्थ का कर्त्ता कवि प्रताप कोई साधारण पुरुष पाया जाता है महाराजा प्रतापसिंहजी प्रतीत नहीं होते जो कवियों को विनती करने की जगह आज्ञा कर सकते थे।

२ ग्रन्थकी समाप्ति संवत १८८२ में हुई है जो इस अन्तिम दोहे में कही गई है।

संवत ससि वसु वसु सुद्वै, गिनि असाढ़ को मास।
किय बिंगारथ कौमुदी, सुकवि प्रताप प्रकास ॥

और महाराजा प्रतापसिंहजी संवत १८६० में धाम प्राप्त हो गये थे फिर २२ वर्ष पीछे इस ग्रन्थ को बनाने को कहां से आये जबकि उनके पोते महाराजा श्री सवाई जयसिंहजी तीसरे, जयपुर में राज कर रहे थे। छापने वाले को राजपुताने का इतिहास मालूम नहीं था जिससे ऐसी भूल टाइटिल और प्रस्तावना में हो गई है।

(३) राजराजेन्द्र महाराजाधिराज श्री सवाई प्रतापसिंहजी कवि अवश्य थे परन्तु कविता में अपना नाम नहीं धरते थे हमने जितने ग्रन्थ, फुटकर कविता, राग, रागिनियां तथा रेखते, उनके बनाये देखे हैं किसी में भी प्रताप वा सुकवि प्रताप नहीं है। नाम

की जगह "ब्रजनिधि" की छाप है * और कविसमाज में भी वे ब्रजनिधि ही कहे जाते है (१) यथा

नागर गौरव इश्क मधि, राग बहादुर राज।
ब्रजनिधि गौरवअर्थ विच, रस गौरव रसराज॥

इन प्रमाणों से यह ग्रन्थ महाराजा सवाई प्रतापसिंह ब्रजनिधि रचित सिद्ध नहीं होता। प्रताप नामके किसी अन्य कवि का बनाया हुआ है जो संवत १८८६ में विद्यमान था। यह कौन था? सो बहुत सी खोजना करने पर कवि कीर्ति कौमुदी की सूची में बुन्देलखण्ड के अन्तर्गत चरखारी निवासी प्रतापसाह बंदी जन के रचे हुये ग्रन्थोंमे व्यंगार्थ कौमुदी का नाम निकलने से विदित हुआ कि इस ग्रन्थ के रचयिता उक्त कवि थे जिनका समय उस सूची में संवत १८६० लिखा है पर इस ग्रन्थ से उनका जीवितकाल संवत १८८२ के कुछ पीछे तक जाना जाता है। उन्होंने इसके सिवाय ये तीन ग्रन्थ और भी बनाए थे—

१ काव्य विलास २ भाषा भूषणकी टीका ३ बलभद्र कृत नख शिख की टीका

देवीप्रसाद
मुन्सिफ जोधपुर

---

* इस दोहे में पांच राजों के गुण कहे हैं १ नागर कवि महाराजा सावत सिंहजी उपनाम नागरी दास २ महाराजा बहादुर सिंहजी ३ महाराजा राज सिंहजी ४ व्रज निधि महाराजा सवाई प्रताप सिंहजी ५ रस राज महाराजा मान सिंहजी— नं० १-२-३ तो कृष्णगढ के राजा थे और नं० ४ जयपुर के और नं० ५ जोधपुर के

(१) 'करी भरथरी शतकपर भाषा भली प्रताप' दोहा जो शतक त्रयके अनुवाद के अन्त में है, सिद्ध कर सकता है कि सवाई राजकविकी छाप प्रताप भी थी॥ (सं सं)

सवा सौ वर्ष पहिले

अन्नका भाव

मिस्टर जे०रेजिनल्ड हैण्ड लेटडिपुटी कलेक्टर शाहावाद ने सन १८८६ई०में आरा के सरकारी दफ्तर के बहुत से पुराने कागजों को जांचकर एक ग्रन्थ Early English Administration in Bihar 1781-82 (विहार में नवीन अंग्रेजी राज्यप्रबन्ध सन १७८१-१७८२) नामक वनाया है और सन१८९४ में उसे बङ्गाल गवर्न्मेन्टने छपवा कर दाम१) रु० रक्खा था। इस ग्रन्थ के देखने से उस समय की देश की स्थिति तथा गवर्न्मेन्टके प्रवन्धों की शैली जान पड़ती है। ग्रन्थ बड़ा कौतूहल जनक है। उसमेंसे लेकर उस समय के थोड़े से अंग्रेज अफसरों के मासिक वेतन की सूची और अन्नका भाव पाठकों के चित्तविनोदार्थ यहां प्रकाशित किए जाते हैं।

रेवेन्यू चीफ आफिस वाले साहवों का मासिक वेतन।

मिष्टर ग्रुक—रेवेन्यूचीफ १२००) बंगले के लिये	३००)
मिष्टर रास—सीनियर ऐसिस्टैन्ट	५००)
मिष्टर वर्ड्सवर्थ—जूनियर ऐसिस्टैन्ट .	४००)
मिष्टर ब्राउन—थर्ड ,,	३००)
सिविलसार्जन ३००) वङ्गलेके लिये	१५०)

मिष्टर वाकर और मि. मेकेनजी ओपियम इन्सपेक्टर ३००)३००)

सं० १७८२ में अन्नका भाव।

नमक समुद्री २१-) से २=) मन		अरहर उत्तम	८४—४
,, वङ्गाल कार॥) से २१-)मन		,, मध्यम	८९—४
चावल वासमती पुराना		दालअरहर उत्तम	५९—८
	३४ सेर १२ छटांक	,, मध्यम	६१—२
,, ,, मध्यम ३५——१२		केसारी उत्तम	१७९—४
,, नया उत्तम ३५——८		,, मध्यम	१५४—८

चावल वासमतीमध्यम	४४—८
,, अतव पुराना उत्तम	५०—०
,, ,, मध्यम	५१—०
,, नया उत्तम	५२—८
,, ,, मध्यम	५४—८
,, सेला उत्तम पुराना	६३—८
,, ,, मध्यम	६५—८
,, उत्तम नया	६६—८
,, ,, मध्यम	६७—८
,, लाल उत्तम	६८—८
,, ,, मध्यम	६९—८
,, ,, निकृष्ट	७२—४
Paddy धान पुरानी *उत्तम	११५—४
,, ,, मध्यम	११७ ४
,, नई उत्तम	१२४—८
,, ,, मध्यम	१२९—८
गेहुं पुराना उत्तम	५५—८
,, ,, मध्यम	५७—०
,, नया उत्तम	५९—८
,, ,, मध्यम	६४—८
जव उत्तम	१२४—८
,, ,, मध्यम	१३०—८
मकई	१३३—४
भुट्टा	१०९—८

दालकेसारी	१५९—४
काबुलीमटर उत्तम	११९—४
,, मध्यम	१३१—८
चना उत्तम	७२—४
,, मध्यम	७९—४
काली मूंग उत्तम	५९—८
,, मध्यम	६१—८
मसूर	१२०—०
दाल	९४—८
तीसी	१००—०
सरसो उत्तम	४९—१२
,, मध्यम	५२—४
रेंड़ी	७८—४
तिल	५९—१२
पोसता	५०—०
कुरथी	१०७—८
कोदोचावल	८९—८
कुट्टू	७९—०
भिन्डी	६५—०
सांवा चावल	१११—०
सांवा	१६९—०
महुआ उत्तम	१२९—८
,, मध्यम	१३९—०

श्री राधाकृष्णदास

---

* इस हिसाब मे ९० रुपये भर का अकबरी सेरही समझना चाहिए (स सं)

† राजस्वमन्त्री के बजट में प्राति वर्ष बचत बढने पर भी दीन प्रजा के व्यवहार में कुछ सस्तापन नही आता, इससे बिचारों को कहना पडता हैं कि "हे सुक्षम बरुण! जलमे बैठने परभी तुम्हारे स्तोता को प्यास मार रही है, दयाकरो, दयाकरो। (स० स)

हमारी आलमारी।

पूनामें हलचल।

"पूनामें हलचल" इस नाम के उपन्यास को काशीके श्रीयुत बाबू गंगाप्रसादजी गुप्तने लिखा है और वहीं के उपन्यासके व्यवसायी श्रीयुत बाबू विश्वेश्वरप्रसादजी वर्म्मा ने इसे प्रकाशित किया है। वही इसे ।=) में बेचते हैं।

इसके लेखक उक्त गुप्तजी ने हमको सूचित किया है कि आज कल इस पुस्तक का तीसरा संस्करण छप रहा है। यदि आप अपनी सम्मति शीघ्र प्रकाशित करदें तो हम उसे तृतीय संस्करण के साथ छापेंगे।

उक्त गुप्तजी ने हमारे पास अपनी उक्त पुस्तक भेज कर हमें उस पर अपनी सम्मति प्रकाशित करने के योग्य जान तदर्थ आग्रह किया, एतदर्थ हम उक्त गुप्तजी को धन्यवाद देते हैं; और गुप्तजी की इस पुस्तक का इतना अधिक आदर देख कर हम उन्हें बधाई देते है। हमें आशा है कि उत्तरोत्तर गुप्तजी को इस दिशा में इसी प्रकार यश और श्री की प्राप्ति होती रहेगी।

इस पुस्तक की आलोचना हिन्दी के प्राय: सभी गण्यमान्य समाचार पत्रों द्वारा हो चुकी है और सब पत्रों के विद्वान सम्पादकों ने इस उपन्यास को अच्छा कहा है। हमारी सम्मति भी उन लोगोंसे भिन्न नहीं है। पर हमारी समझ में, इस उपन्यास में जोजो त्रुटी बोध होती हैं, उन्हें हम नीचे प्रकाशित करते हैं। भरोसा है कि यदि वह उक्त गुप्तजी को यथार्थ जान पड़े तो वह तदनुसार इस उपन्यास के तृतीय संस्करण को सुधार लें।

(१) इस उपन्यास के ३/४ से अधिक भाग में इसके नायक नायिका के पूर्व्वानुराग का वर्णन है और शेष में युद्धादि प्रसङ्गों का वर्णन है। वर्णन के अनुसार यदि इस उपन्यास का नामाभिधान किया जाता तो अच्छा होता। क्योंकि ग्रंथ का नाम ऐसा होना चाहिये कि जिसके कर्णगत होते ही ग्रन्थ के विषय का यथार्थ ज्ञान हो सके। "पूनामें हलचल" इस नामके श्रवणगत होते ही यह अनुमान करना पड़ता है

कि इस ग्रन्थ में देश विप्लव तथा राज्यक्रांति आदि के अतिरिक्त अन्य विषय का वर्णन नहीं होगा। पर ग्रन्थ को देखने से अनुमान ठीक नहीं निकलता। जान पड़ता है गुप्तजी ने इतिहास प्रिय लोगों का चित्त आकृष्ट करने के अभिप्राय से ही अपने इस प्रणय-प्रधान उपन्यास का नाम इस प्रकार रक्खा है।

(२)गुप्तजीने अपने इस उपन्यासकी सृष्टि मराठीके किसी ग्रंथ के आधार से की है। यदि गुप्तजी अपने उपन्यास के पात्रों के नाम भी हिन्दुस्तानी लोगोंके सदृश रखते तो अच्छा होता, ऐसा करना यदि उन्हें अभीष्ट नहीं था तो दाक्षिणात्य नामही शुद्ध रीतिसे लिखते। पर न जाने आपने ऐसा क्यों नहीं किया। नीचे हम गुप्त जी के दिये हुए नामों के समीप मराठी के शुद्ध नाम देते हैं:—

पृष्ठ	गुप्तजी द्वारा दिए हुए नाम	मराठी के शुद्ध नाम
२६	कृष्णपत	कृष्णाजी पंत
२६	रामभोली	रमा
७४	विष्णुराव	विष्णु पंत

ध्यान रहे कि दाक्षिणी लोगों में मराठों का नाम विष्णु बहुत कम रखा जाता है। यह नाम प्रायः ब्राह्मणों का ही होता है और आदरार्थ इस नामके अंतमें "पंत" जोड़ा जाता है "राव" कभी नहीं जोड़ा जाता। गुप्तजी "विष्णुराव" के स्थानमें अपने पात्र का नाम यदि "खंडेराव" रख देते तो वह इतना भदेस नहीं होता।

(३) गुप्तजी कमला को कमलसिंह बनाने के पश्चात यदि उसका कमल सिंह के नाम से ही पाठकों को परिचय दिलाते तो और भी अच्छा होता। पृष्ठ ३४ में साधु के साथ बात चीत करते समय उपन्यास में जो कमला नाम लिखा गया है बहुत बुरा जान पड़ता है। और साथ ही ग्रथकार की असावधानी प्रदर्शित करता है।

(४) पृष्ठ ३० में लिखा है "युवक ने इतना कह कर पासकी खड़ी सुन्दरी लड़की को पकड़ कर गले से लगा लिया और बार बार उसके गुलाबी गालोंको चूमने लगा। लड़की ने भी प्रेम से उसके गले में बाँह डाल दी" यहां "लड़की" के स्थान में "युवती" शब्द का प्रयोग बहुत ही ठीक होता। क्योंकि लड़की शब्द बाल्यावस्था का द्योतक है।

उसी पृष्ठमें आगे चल कर लिखा है ।

" और चम चम चमकती तथा चक्षुओं में चकाचौंध डालती हुई चपला (बिजली) तीर की तरह झपटती हुई आकाशकी ओर निकल गई "। यहां " निकल गई " के स्थानमें यदि चंपत हो गई लिखा जाता तो वह और भी शोभाप्रद होता ।

पृष्ठ ४० में लिखा है:—

" शिवाजी०। किससे कह दिया था ।

बाजिराव०। श्रीमान्! यह जितने आदमी खड़े हैं सब कहते हैं कि माधवराव ने यही कहाथा जो मैंने आपसे बयान किया है । इस वाक्य में शिवाजी को एक बार " श्रीमान् सम्बोधन करके साथही दूसरी बार उन्हें ' आपसे " कहना शिष्टजन-प्रथानुमोदित नहीं जान पड़ता। दूसरी बार और जितनी बार कहना पड़े राजा लोगों के लिये " श्रीमान् " " कृपानाथ " वा अन्य इसी अर्थ के व्यंजक सम्बोधन उचित जान पड़ते है।

(५) नीचे लीखे हुए वाक्यों में सर्व नाम का लोप यदि न किया जाता तो अच्छा होता:—

अ० पृ०	शु०
२६ इतने में कृष्णपतका पंडा भी आगया और अपने यजमानों को वैठ जाने के लिये कहा ।	इतने में कृष्णपत का पंडा भी आगया और उसने अपने यजमानों को वैठ जाने को कहा ।
पृष्ठ ३० युवकने आइने में मुँह देखा और मुस्कुरा कर कहनेलगा।	युवकने आइने में मुंह देखा और वह मुस्कुरा कर कहने लगा ।
पृष्ठ ४०, वह उकताकर भाभी जी के पास आई और आतेही पूछा ।	वह उकता कर भाभीजी के पास आई और उसने आतेही पूछा ।

इस उपन्यास में ऐसे स्थल और भी हैं पर विस्तार के भयसे उन्हें हम यहां नहीं लिखते ।

(६) हिन्दी के लेखक लोग प्रायः एक बार " मैं " का प्रयोग उस के स्थान में फिर ' हम ' का प्रयोग करते हैं। आज दिन हिन्दी के लेखकों में ऐसे बहुतही थोड़े लोग पाये जाते हैं जो इसका अधिक विचार रखते हों। इस प्रकार के अविचार से भाषा में जो असाधुता हो जाती है, उसे

स्पष्ट करने के लिये इस उपन्यास से हम नीचे लिखा हुआ वाक्यांश उद्धृत करते हैं।पृष्ठ२४में लिखाहै:-

"+++ कोई प्रेमी अपने होशमें रहा हो तो उसे मालूम भी हो कि नियम क्या है और हम क्या कर रहे हैं वह तो चार आंख होते ही प्रेमके जाल और 'इश्क' की जंजीर मे जकड़ लिये जाते हैं।

यहां 'रहाहो' और 'उस' एक वचन में प्रयुक्त किये गये हैं। भाषा प्रणाली में इस प्रकार की असंबद्धता आ जाने से वह उच्चश्रेणी की नहीं मानी जा सकती। ग्रन्थकार को उचित है कि वह अपने ग्रन्थ की भाषा को ऐसे दोषों से बचा लेवें।

(७) कोई भी भाषा तभी उन्नत होती है जब उस का कोश अपर भाषा के उपयुक्त शब्दों से अलंकृत कियाजाता है और अन्यान्य भाषाओं की भावप्रदर्शन प्रथाओं का अपनी भाषा में प्रचार किया जाता है। पर ऐसा करती बार इस बात का विशेष ध्यान रखना चाहिये कि अपनी भाषा की वर्तमान उत्तमता बिगड़ने न पावे। इस उपन्यास में संस्कृत के शब्दों के साथ उर्दू फारसी के शब्द मिलाये गये है पर वह विना कारण मिलाये गये है। क्योंकि वैसी खिचड़ी न करने पर भी ग्रंथकार विना ऋण लिये अपनी भाषा के शब्दोंसे ही अपने भावको व्यक्त कर सकते थे। एक दो उदाहरण नीचे दिये जाते हैं।

पृष्ठ ११ में लिखाहै:—

यद्यपि वह बहादुर था लेकिन मरहठों की चाल से बहुत परीशान (परेशान) था यहां पर "यद्यपि, लेकिन" और परेशान" शब्दों का मेल बहुत ही बेमेलहै। यही वाक्य यदि यों लिखा जाता है तो क्या हानिथी?

यद्यपि वह शूर था तथापि मरहठों की चालसे बहुत दुखी था। इसी प्रकार पृष्ठ २१ में "नाजुक समय" की खिचड़ी भी कर्णप्रिय नहीं जान पड़ती।

(८) आज कल हम देखते हैं कि प्राय. हिन्दी के लेखक लोग अपने लेखों तथा ग्रंथोंमें न जाने क्यों अंगरेजी के शब्दों का प्रयोग हठात् किए चले जाते हैं। हमारे हठात् कहने का अभिप्राय यहहै कि अर्थव्यञ्जक शब्दों के भाषा में विद्यमान रहने पर भी उन बापुरों के स्थानों में अंगरेजी हीके शब्दों को स्थान दियाजाता है।

इस बात को हम अच्छी नहीं समझते। क्या "प्राइवेट" "कम्प" 'हीरो' और "फुटनोट" आदि के अर्थ को प्रदर्शित करने वाले शब्द हिन्दी कोश में नहीं है? हैं सब कुछ, पर उनके स्वत्व पर लेखक गणोंकी कृपा दृष्टि ही नहीं होती। हमारी इस सूचना पर, हमे भरोसा है, कि आधुनिक विज्ञ लेखक अवश्य विचार करेंगे, और भाविष्यतमें उक्त जैसे स्थलों पर वह लोग हिन्दी शब्दो को अपकृत नहीं करेंगे।

इस उपन्यास के पृष्ठ ५१ में जो 'हीरो" शब्द प्रयुक्त किया गया है उसके स्थान में यदि गुप्तजी अब तृतीय संस्करण में "नायक" लिख दें तो हम समझते हैं कि हिन्दी उनकी बहुत कृतज्ञ होगी। ऐसाही बर्ताव उन्हें 'कंप' आदि शब्दों के स्थान में भी करना चाहिए।

(९) आजकल हिन्दी के ग्रंथों का प्रकाशित करने का अधिकार प्राय. ऐसेही लोगों के हाथ में है जो ग्रन्थ लेखक के यथार्थ परिश्रम का और उनके ग्रन्थकी शुद्धाशुद्धता का ठीक ठीक अनुमान नहीं कर सकते, किन्तु किसी प्रकार ग्रन्थको छाप डालनाही अपना अभीष्ट समझते है। ग्रन्थ प्रकाशकों की इस उपक्षा से ग्रन्थों को जो हानि पहुंचती है उसे ग्रन्थ लेखक गणही जान सकते है। इस उपन्यास की जो प्रति हमारे पास भेजी गई है उसे ग्रन्थकार ने यथा शक्ति बहुत कुछ शुद्ध करके हमारे पास भेजा है; पर तिस परभी उसमें अक्षर संकलन की बहुतसी त्रुटी बनी हुई हैं। ग्रन्थ प्रकाशक लोग जिस प्रकार ग्रन्थको बेंच कर उससे लाभ उठानेकी चिंता किया करते हैं; उन्हें उचित है कि उसी प्रकार वह ग्रन्थ को शुद्ध छाप कर लेखक के परिश्रम की रक्षा की भी चिन्ता किया करें।

(१०) पृष्ठ १५ में छपे हुए 'बैठे पहरा देरहेथे" और।

पृष्ट ८३ में छपे हुए "बैलों की लगाम" आदि कोभी शुद्ध कर देना उचित जान पडता है। क्योंकि पहरा खड़े खड़े दिया जाताहै बैठ कर नहीं दिया जाता वैसेही लगाम घोड़ों को दीजाती है, बैलों को नहीं दी जाती॥ बैल जिस रस्सी से बांधेजाते हैं उसे रास (नथनी) कहते हैं। पृष्ट ६५ में चतुराई के स्थान में "चाल" शब्द और भी अच्छा होता।

(११) हम भरोसा करते हैं कि गुप्तजी हमारी इस सम्मति को "दूषणोल्लास" न समझ कर इसे हमारी ईर्ष्यादिरहित एवं शुद्ध हार्दिक सम्मति समझेंगे और इसके साथ वह ठीक वैसाही बर्ताव करेंगे जैसा होनहार एवं सत्यप्रिय ग्रन्थकार को करना समुचित है।

टिपुरनी
१२-१-०४ } गंगाप्रसाद अग्निहोत्री

अन्य देशों मे दान अपने को बिक्री रूपी वस्त्र में छिपाने का प्रयत्न करते हैं परन्तु हिन्दू धर्मशास्त्र में बिक्रियां दान का रूप ग्रहण करके रक्खा चाहती थीं; जिस से स्पष्ट है कि हमारे यहा दान देना बहुत प्रचलित था और है। हमारे शास्त्रकार लिखते हैं कि पिता पुत्र की इच्छा के प्रतिकूल पैत्रिक स्थावर सम्पत्ति को साधारणतः पृथक् नही कर सकता परन्तु अकाल के समय और विशेषतः पुण्यार्थ कर सकता है।

फिर क्या कारण है कि अन्य देशो का दान उन्नतिकारी होता है परन्तु हमारा देश इतना दानी होने पर भी अधोगति को प्राप्त है? इसी प्रश्न का उत्तर देना इस लेख का एक मात्र उद्देश्य है।

महात्मा भर्तृहरि ने क्या ही सत्य कहा है:—
"विवेकभ्रष्टानां भवति विनिपातः शतमुखः"

अर्थात् विवेकच्युत लोगों का सौ सौ भांति अधःपतन होता है। अब यह प्रश्न उठता है कि वह कौनसा विवेक है कि जिस से हम लोग च्युत हो गए है? नीति शास्त्र ने हमें एक अनमोल उपदेश दिया है "कः कालः? कानि मित्राणि? को देशः? कौ व्ययागमौ?। को वाहं? काच मे शक्ति? रिति चिन्त्यं मुहुर्मुहुः॥" अर्थात् कैसा समय उपस्थित है? हमारे मित्र कौन है? देश कैसा है? आयव्यय कैसा है? हम कौन है? हमारी कितनी शक्ति है? इन सब बातो का बार बार विचार करना चाहिए सो

" मुहुर्मुहुः " की कील कहे हम इन प्रश्नों पर कभी भी विचार नहीं करते बस यही हमारी विवेकभ्रष्टता है। हमारे पूर्वपुरुष संसार में अद्वितीय होने पर भी अपनी योग्यता के इतने अभिमानी न थे जितने आज हम होरहे हैं। हम ऐसा कहने को तो शेर हैं कि हम वही हैं जिनसे समस्त नरलोक ने सभ्यता, गणित, दर्शन, धर्म इत्यादि सीखा परन्तु हम यह नहीं सोचते कि जिन से अन्य जातियों ने ये गुण सीखे वे कैसे पुरुष थे और हम कैसे हैं। विजातीय सत्यप्रिय महानुभावों को देखिए कि वे किस स्पष्टता से आप की कृतज्ञता स्वीकार करते और आप के गुण ग्रहण करलेते हैं पर आप उन्हीं के कथनों का आधार लेकर कह बैठते हैं कि संसार की विद्या मात्र हमारे ही यहाँ की चेरी है! जबतक आप किसी का गुण स्वीकार न कीजिएगा तबतक उसका ग्रहण क्या कीजिएगा?

अभी थोड़े दिन हुए सुप्रसिद्ध डाक्टर ग्रियर्सन ने विलायत में महात्मा तुलसीदास जी पर एक व्याख्यान दिया जिसमें उन्होंने गोस्वामीजी की बड़ी प्रशंसा की, बस इसी के आधार पर हमारे यहां के कुछ समाचारपत्र फूलगए और अंग्रेज़ी पठित भारतवासियों को फटकारें बतलाने लगे कि जहां विदेशी लोग हमारे कवियों की प्रशंसा करते हैं वहां हमारे यहां के नवयुवक विदेशी भाषाओं के कंकड़ पत्थर बटोरने में पड़े रहते हैं!!! भला इससे भी बढ़कर मूर्खता की कोई बात कही जा सकती है? यदि डाक्टर ग्रियर्सन भी आप ही जैसे संकीर्णहृदय होते तो वे

तुलसीदास जी की कविता को भी कंकड़ पत्थर कहने के बदले उसकी प्रशंसा काहे को करते ? सो ठाकुर महोदय की उदारता का अनुकरण करने का परामर्श देने की अपेक्षा सम्पादक जी बिना कुछ जाने सूझे ही यह डंका पीटने लगे कि केवल हमारी भाषा में तो ग्रन्थरत्न हैं और विदेशी भाषाओं में सिर्फ कंकड़ पत्थर ! वास्तव में विदेशी भाषाओं में भी अनेक ग्रन्थरत्न वर्तमान हैं पर हम में उनके परखने की योग्यता मात्र होनी चाहिए।

अब हमारा पूर्व समय नहीं रहा। उस समय हमारे पूर्वपुरुषगण समस्त पदार्थ अपने हेतु स्वयं बनालेते थे पर हम विजातीय कार्यकर्त्ताओं की बनाई हुई पुस्तकें काम में लाते हैं। एक चमार तक केवल बीस बाईस रुपया वार्षिक आय के होते भी वस्त्र विदेशियों के बनाए पहनता है अर्थात् उस स्वल्पआय में से भी कुछ न कुछ ऐसे विदेशियों को देता है जिन में से अधिकांश लोगों की आय उस से बीस गुनी है। कहांतक कहें समस्त भारतवर्षनिवासी एक दूसरे की बात तक नहीं समझ सकते !

"मित्राणि" केवल मनुष्य ही नहीं होते वरन सद्गुण भी मित्र एवं दुर्गुण शत्रु कहे जा सकते हैं हम अपनी कुरीतियों को हृदय में स्थान देते हैं पर कुरीतियां उत्थापित करने से ऐसा डरते हैं कि मानो कोई उठा कर हमें खा हीलेगा।

" को देशः " का भी हम विचार नहीं करते। अवध के नवाब अमजदअली शाह आदि ने अपने सन्तानों की वृत्ति के बारे में निश्चित करने के निमित्त सरकार अंग्रेज

के यहां कई कोटि मुद्रा जमा करके उनके लाभार्थ "वसीका" स्थापित किया। वे समझते होंगे कि निश्चिन्त होने के कारण उन में क्रमशः मनमानी उन्नति कर सकेंगे परन्तु उस का परिणाम उलटा हुआ लखनऊ के नवाब नामधारी * महाशयों की निरुद्यमता और विचारशून्यता सब पर प्रकट है। इन महाशयों को सिवाय वसीका वसूल कर लेने के और कुछ काम ही नहीं है! इसी प्रकार हमारे देश ने हम को नवाब बना डाला। इस में प्रत्येक प्रकार की वस्तु बड़ी सुगमता से उत्पन्न होती है और यहां का जल वायु भी बहुत उत्तम है। हर प्रकार की वनोषधियां बिना हमारे किसी यत्न के प्रस्तुत हैं मणिगण, स्वर्ण, रजत, आदि के अनेक आकर वर्तमान हैं श्री गंगाजी का सा जल समस्त पृथिवी के जलों से श्रेष्ठतर त्रितापनाश कर रहा है, गगन-भेदी उच्च हिमाचल की विशाल चोटियां दक्षिणीय वायु प्रवाह द्वारा आए हुए मेघों का सन्मान करके निजाश्रित देश को अफरीका के बालूमय सहरा हो जाने से बचाकर सब प्रकार के धान्य का भंडार बना रही हैं और जलयान बनाने योग्य अनेक देवदारु भी उत्पन्न करके पर्वतराज मानो यह उपदेश दे रहे हैं कि इन मेघों की सहायता से सब प्रकार की नैसर्गिक वस्तुएं उत्पन्न कर लो और कुछ

---

* लखनऊ के सभी नव्वाब कहलाने वालों की पदवी सरकार स्वीकृत नहीं करती, जहांतक हमें ज्ञात है केवल एक महाशय की पदवी सरकार मानती है और ये महाशय किसी अंश में भी निन्द्य नहीं कहे जासकते।

अपना भी परिश्रम मिला कर मेरे देवदारुनिर्मित पोतों द्वारा पृथिवीमण्डल के समस्त देशों मे अपना व्यापार विस्तृत करो। फिर वही गिरिराज मेघों द्वारा जलदान देने से सन्तुष्ट न होकर अनेकानेक नदियों से हमें सर्वधान्य-उपजाऊ जल प्रदान करता है और रहने के लिये उसने हमें एक ऐसा स्थान दिया है कि जिस के विषय में उर्फ़ी ने लिखा है—

"हर सोख़्ता जाने कि बकश्मीर दर आयद।
गर मुर्ग़ कबाबस्त कि बा बालो पर आयद॥"

प्राय. प्रत्येक देश की ऋतु का आनन्द हम घर बैठे लूटते हैं पर ऐसी एक भी ऋतु नहीं कि जिस में हम काम न कर सकें। इन्ही प्राकृतिक सुविधाओं के कारण हम नवाबों की भांति आलसी हो गये हैं।

इंगलैंड में बहुमूल्य धातुओं की कानों के स्थान कोयले और लोहे के आकर हैं और वहाँ ऐसा घोर शीत होता है कि प्रायः दो मास कोई भी काम करना कठिन हो जाता है। हालैंडदेश समुद्र से निम्नतर भूमि पर स्थित है और वहां के निवासियों को बड़ी २ भीतें बनाकर जलनिधि को अलग रखना पड़ता है यदि यह भीतें लेशमात्र भी दसक जायें तो समुद्र गहरा कर सारे देश को अपने विशाल उदर में धारण करले मानो वह देश कभी था ही नहीं। देश का जल बह बह कर इन्ही दृढ भीतों के किनारे एकत्रित होता है और वहां से पम्पों द्वारा सागर में उलच दिया जाता है। जापान में (जो क्षेत्रफल में मद्रास के बराबर

है) प्रतिवर्ष ५०० से अधिक भूकम्प होते हैं और प्रति २० वर्ष एक न एक ऐसा विषय हालाडोला आजाता है कि उससे देशको बहुत बड़ी हानि सहन करनी पड़ती है फिर समस्त देश ज्वालामुखी पहाड़ों से परिपूर्ण हैं इनमें से अधिक श अवश्यही अग्नि वमन नहीं किया करते परन्तु ३२ पहाड़ ऐसे हैं जो इस समय सदा आग बरसाया करते हैं। सन् १८३७ और सन् १८७४ में दो नवीन पहाड़ पावकोद्गार करने लगे और पहले पहिल सहस्रो मनुष्यों और सैकड़ो ग्रामों का सर्वनाश कर डाला, परन्तु इन्हीं उत्कट देशो के निवासियो ने प्राकृतिक कठिनाइयों से युद्ध करते करते ऐसी वीरता और दृढ़ता सम्पादित कर ली है कि विजातीय शत्रुओं पर जो हमारे ऐसे नव्वाब साहब हुए विजय पा लेना उ हैं बाएं हाथ का खेल समझ पड़ता है।

हमारे पूर्वपुरुष हमारी भांति नव्वाब न थे वे तिब्बत और मध्य एशिया से आए थे और बहुत काल पर्यंत उन्होंने अपनी नैसर्गिक कार्यदक्षता के प्रताप से इस अवाञ्छनीय दशा को बचाया। इसी कारण उन में जाति भेद का ऐसा बड़ा विचार न था। यदि हम आर्यसमाजियो का मत ग्रहण कर वेदो मे ब्राह्मण एव उपनिषदो को नरकृत मान केवल संहिता को वास्तविक वेद बतलावे तो यह भी मानना पड़ेगा कि वैदिक काल मे जातिभेद जन्म से नहीं वरन कर्म से होता था, परन्तु यदि ब्राह्मण और उपनिषद् भी वेद ही माने जावें तो भी यह प्रकट है कि उस समय जाति में इतनी कड़ाई न थी। विश्वामित्र, ययाति

वंशोद्भव कोई महानुभाव क्षत्रिय से ब्राह्मण हो क्षत्रियों की लड़कियां तो ब्राह्मणों को बराबर बे व्याही जाती थीं ही बरन दो एक ब्राह्मणों की कन्यी (जैसे देवयानी शकुन्तला इत्यादि) क्षत्रियों की बन चुकी हैं। जब उन पूर्वजों की स्वाभाविक कार्यदक्षता कुछ घट चली शायद तभी से उन्होंने इस नव्यवस्था को स्थिर रखने के अभिप्राय से जाति में इतनी कड़ाई करदी। अब द्रव्योपार्जन का भार वैश्यों और शूद्रों पर पड़ा, क्षत्रिय रक्षा में प्रवृत्त हुए और ब्राह्मण केवल बुद्धि से काम लेनेलगे और उन्होंने देशहितैषी बातों में अपना जीवन समर्पण किया। शिष्यों को विद्या पढ़ाना, उत्तमोत्तम पुस्तकें रचना, भूले भटके राजा महाराजों को मार्ग पर लाना इत्यादि इत्यादि उनके सभी परोपकारी काम थे। इस भांति एक प्रकार विभाजित कार्यप्रकरण (division of labour) की प्रणाली स्थापित हुई। अर्थशास्त्र में इस प्रणाली से अनेकों लाभों का होना लिखा है पर लाभ तभीतक हो सकता है जबतक प्रत्येक मनुष्य को अपना मन माना काम करने की स्वतंत्रता हो, जो बात जातिभेद से नहीं हो सकती। अस्तु, उसी समय ब्राह्मणों को दान देना अत्यन्त श्लाघ्य गिना जाने लगा क्योंकि उस समय विप्रों को दान देना सभी प्रकार देशोपकार करना था। पर इसी के साथ यह भी कहा जाता था कि कुपात्र को दान देने वाला पाप का भागी होता है। जिन कारणों से उस समय ब्राह्मणों को दान देना उचित था उन्हीं कारणों से अब वह अनुचित है। इन ब्राह्मणों

ने अब अपना कर्त्तव्य पालन करना छोड़ दिया जिससे हमें दान देना दो हानियां पहुंचाता है। एक तो उतना धन वृथा नष्ट होता है और दूसरे हम (ब्राह्मण) लोग आलसी होकर परिश्रम शून्य हो जाते हैं। कान्यकुब्ज ब्राह्मणों मे कात्यायनगोत्रोद्भव मिश्रों ने मिश्र चिन्तामणि जी के समय से (जो कदाचित् संवत् १६०० के लगभग हुए होंगे) दान लेना एक दम छोड़ दिया और इसी हेतु इस समय वे लोग कान्यकुब्जों में प्रायः सबसे अधिक व्यवसायी और धनवान् है। हम अभिमानपूर्वक कहते हैं कि हम भी इन्हीं महानुभाव मिश्र चिन्तामणि जी के वंश में हैं।

धीरे धीरे हमारी विभाजित कार्य प्रकरण की प्रथा लोगो की बपौती होकर हानिकारक होगई। भूदेवजी बुद्धि वाले देशोपकारी काम एवं वनवास दोनो को तिलाञ्जलि दे "बामन लक्खू तौ भिक्खू" की किंवदन्ती को चरितार्थ कररहे है। क्षत्रियगण रक्षा करने का बल खो बैठे और अब छोटे २ जिमीदार बनकर देश की उपजाऊ शक्ति को कुछ भी लाभ पहुंचाए बिना और बेचारे किसानों पर एक बोझा बनकर केवल हाहा ठीठी बुलबुल बटेर आदि में अपना समय नष्ट करते हैं (गोरखपुर के ज़िले में हमने एक अंग्रेज़ का इलाका देखा जिनका नाम ब्रिजमन साहब था इस समय उनके जामाता मेजर होल्डूमवर्थ सी आई. ई उनके स्थानापन्न है इन महाशय के इलाके मे नहरों का ऐसा सुन्दर प्रबन्ध किया गया है कि जिससे घोर अकाल में भी उन के यहां उत्तम पैदावार होती है सुनते हैं कि इन

नहरों के बनवाने में क्रिशमन साहब ने प्रायः १२ लाख रुप-या व्यय किया था पर यह ऐसा सुव्यय था कि जिससे उन्हें पूरा लाभ होता है और उनके किसान भी बड़े सुखी हैं परन्तु भा-रतवासियों से ऐसी सुव्यवस्था बहुत कम देखी जाती है) वणि-क् महाशय बड़े बड़े व्यापारों और मिलों के चलाने की योग्य-ता उपार्जन किये बिना बहुधा दलाली ही के सहारे काल बिताते हैं फिर वे लोग भी स्वयं व्यवसाय न कर अब घृणित दल्लाली बहुत करने लगे हैं। यहां जैसे कपड़ों की मांग है उनके नमूने विदेश भेजकर यहां का कार नष्ट करने वाले जितने पाये जायँगे उनके दशमांश भी ऐसे लोग नहीं जो स्वयं वैसे नमूने स्वदेश ही में तैयार कराने का प्रयत्न करें।

जब "कौ व्ययागसौ" पर हम विचार करते हैं तो खेदकी सीमा नहीं रहती। व्यय में उसकी केवल मात्रा ही का विचार न करना चाहिये वरन यह भी सोचना चाहिये कि वह किस प्रकार का है। जिन देशों की हम से बीस गुनी अ-धिक आय है वे भी अपना धन ऐसी अनुपयोगी वरो हानि-कारक रीति पर नहीं उड़ाते। सुव्यय और आय में कहांतक हम समझते हैं कारण कार्य्य का सम्बन्ध है अर्थात् आय व्यय ही के कारण होती है। यदि कोई मनुष्य प्रतिदिन सहस्र मुद्रा उपार्जन करे परन्तु व्यय कुछ भी न करे तो वह अवश्य भूखों मर जाय और उसकी समस्त उपार्जक श-क्ति नष्ट हो जाय। यदि वह केवल)॥ के चने चबाकर का-लक्षेप करे तौभी उस का शरीर बलहीन होकर थोड़े ही दिनों में उसे काल का ग्रास बना डाले, पर यदि वह अपनी

आय का एक बड़ा भाग किसी विद्यालय अथवा कलाभवन के निर्माण करने में लगावे तो उस महात्मा के व्यय से देश की उपजाऊ शक्ति को बड़ा लाभ पहुंचे। यदि यही मनुष्य अपना वित्त व्यर्थ नष्ट कर देता अथवा उसे भूमि में गाड़ें र-खता या किसी एक आदमी को दान कर देता कि वा पुत्र-हीन होने पर भी किसी दत्तक पुत्र को सौंप देता तो देश की उपजाऊ शक्ति को क्या लाभ पहुंचता? यदि जापान के डेमियो लोग अपने राज्याधिकार का व्यय न करते या करके भी किसी भिक्षुक को सर्वदान कर देते तो जापान आज इस उन्नतावस्था में किस प्रकार होता? अब हमारे देश की आय ऐसी नहीं है कि हम उसे व्यर्थ खातों में व्यय करें। उस की दशा ऐसी शोचनीय है कि यदि हम लोग सुव्यय का प्रबन्ध न करेंगे तो देश की आय और उसी के साथ हम लोगों की न जाने क्या गति होगी।

अब केवल "को बाऽहं काच मे शक्ति" पर विचार क-रना शेष है। इसमें सन्देह नहीं कि हम वही हैं जो एक समय समस्त पृथ्वीतल पर अद्वितीय थे। पर इस समय हम प्रायः सभी जातियों से निकृष्टतर हैं। अब हम यही हैं जिन्हें आस्ट्रेलिया एवं विमर्दित साउथ अफरीका निवासी कुलियों तक में भरती करना नहीं चाहते! और फिरभी हम उन्हीं देशशत्रुओं के बनाये पदार्थ मोल लेकर उनके उस घृणित आचरण के पुरस्कारार्थ उन्हें बहुतसा द्रव्य लाभ के स्वरूप में देते हैं। हम लोगों को उचित है कि एकदम इन देशों की बनी वस्तु मात्र का मोल लेना बन्द

कर हम लोगों की आंखें खोल दें। पर यहां तो अविद्या का अन्धकार फैला हुआ ठहरा। कदाचित् एक हजार मनुष्यो में एक भी यह जानता ही न होगा कि हम लोगों के साथ इस देशों के निवासी ऐसा असभ्य अथवा पशुवत् व्यवहार कर रहे हैं। संसार की वस्तु मात्र का बरतना तो हम खूब जानते हैं। हटली व पामर के बिसकुट, डिवर की ह्विस्की, हवाना सिगार, राजर्स के चाकू कैंची इत्यादि, हिंक्स के लालटेन, जोहन फेबर की पेन्सिलें, डासन के जूते, मिचल के निब, पिरी एन्ड सन्स के कागज, जोन्स ब्रदर्स के ट्रैवेलिंग ट्रंक (लोहे वाले बक्स), केलनर के भोज्यपदार्थ, एली ब्रदर्स के कारतूस, इङ्गलिश लीवर घड़ियां, इरून के क्रिकेट पोलो आदि के सामान, रोज़ के हारमोनियम, पियानो इत्यादि, हैमिल्टन के आभूषण, लारेन्स व मेओ की ऐनकें, लिपटन की चाय, बी टाइमपीस, पियर्स सोप इत्यादि २ सभी पदार्थ हमें आवश्यक और सभ्यता के आधार तो बहुत समझ पड़ते हैं परन्तु उनका बनाना कभी ध्यान में भी नहीं आता। वैसी बढ़िया न सही उनसे कुछ घटकर ही बनाओ और वे घटिया पदार्थ ही कुछ दिन काम में लाओ तब देखो बढ़िया से बढ़िया वस्तुएं इसी देश में बनने लगती हैं कि नहीं। मऊ, मुबारकपुर, लुधियाना, मुर्शिदाबाद, भागलपुर, कनानोर, कश्मीर, बनारस, लखनऊ इत्यादि स्थानो के बने कपड़े यथासाध्य धारण करो फिर देखो क्रमशः कपड़े के व्यापार में इस देश की कैसी उन्नति होती है। पर नहीं यहां तो महा अकिंचन होने पर भी हमलोग

प्रतिवर्ष कई करोड़ मुद्रा विदेशियों को उनकी अनेक व स्तुएं मोललेकर भेंट करते हैं !

कुछ लोग यह समझ लेते हैं कि भाई हम तो एक ठहरे, अकेले हमारे कुछ करने से क्या हो सकता है। यह भारी भूल है जो थोड़ा ही विचारने पर स्पष्टतया मालूम हो जायगी "दाना दाना रास और टट्टू टट्टू लश्कर" के सिवाय यह भी तो है कि "खरबूजे को देखकर खरबूजा रंग पकड़ता है"—आपको देखकर बीस आदमी और उन बीस को देख और बहुतसे लोग स्वदेशी वस्तु बरतने ही लगेंगे। आप अकेले अवश्य है पर योंतो सभी लोग एकही एक हैं। फिर समुदाय क्या है ?

इन बातो से विदित है कि व्यय के नियम पर हम लोगों को पूर्ण ध्यान देना चाहिये। अतः अब हम व्यय के मुख्य विभागों पर विचार करते हैं॥

व्यय दो प्रकार के होते हैं (१) वह कि जिससे देश की उपजाऊ शक्ति बढ़ती है यथा—यदि हम स्वदेश का बना हुआ कपड़ा मोललें तो हमारे द्रव्य का व्यय अवश्य हो पर उससे हमारे ही देश के कारीगरो को लाभ हो, अतः ऐसा होने से ऐसे मनुष्यो को लाभ हो जो कि आलसी नहीं हैं वरन जो अपनी जीविका देशव्यापार की उन्नति करके उपलब्ध करते है फिर स्वदेशी वस्तु बरतने में कोई विशेष हानि भी नहीं और यदि थोड़ीसी हानि हुई भी तो थाली का घी थाली ही में रहा कुछ हमारी मुद्रा सात समुद्र पार तो

न गई ? उससे ऐसे लोगों को तो लाभ न हुआ जो हमारा इन शब्दों से सत्कार करते हैं:—"यहसु फ्तखोरे , मक्कार, घृणापात्र, अर्धसभ्य, एशियाई लोग " । " एक काली और पतली वस्तु जिसे सफाई से कोई सम्बन्ध नहीं और जिस का नाम लोग घृणित हिन्दू कहते है " । । "मै अपने अन्तःकरण से हिन्दुओं को कोसता हूं मलिन कुली लोग जिनकी जिह्वापर सदैव झुठाई का वास है और जिन के सब काम दगाबाजी के हैं " ! ! ! *

धिक्कार है इन लोगो को जो ऐसो की बनाई वस्तुएँ मोल लेकर उन्हें गालियो के उपलक्ष मे भला चगा लाभ पहुंचाते है । सरकार अग्रेज के रामराज्य में भी यदि हम ऐसेही बने रहे तो कभी सुधारकी आशा क्या हो सकती है ? (२) प्रकार का व्यय वह है कि जिससे देश की उपजाऊ शक्ति को हानि पहुचती हैं । यथा (क) चीन वासी अफीम मोल लेते है । इससे उनका व्यय होता है और उससे लाभ ऐसे मनुष्यो को होता है जो एक हानिकारक वस्तु उत्पन्न करते हैं । फिर अफीम खाने से चीनी लोगो की कार्यदक्षता को धक्का पहुंचता है और इस भाति समस्त चीन देश की द्रव्योत्पादक शक्ति की न्यूनता होती है । (ख) यदि हमने कोई विदेशनिर्मित वस्तु मोल लिया

* "These parasites, wily, wretched, semi-barbarous Asiatics,.. a thing black and lean and a long way from clean which they call the accursed Hindu... I heartily cuss the Hindu, squalid coolies with truthless tongues and artful ways"

तो स्वदेश का द्रव्य अन्य देश को गया इससे हमारी देशी द्रव्योत्पादन शक्ति को लाभ नहीं हुआ पर उस विदेश के व्यापारियों ने कुछ अपने परिश्रम का हमसे पुरस्कार पाया और कुछ लाभ उठाया क्योंकि जिन दामों पर वस्तु-विशेष तैयार होती है उन्हीं दामों पर वह कदापि नहीं बिकती। सो यह लाभ तो केवल हमारी मूर्खता से विदेश गया जिसके प्रतीकार में हमने कुछ भी न पाया। फिर विदेशी कारीगरों के परिश्रम का पुरस्कार देने में भी हमने स्वदेशी कार्यकर्ताओं के साथ अन्याय किया, क्योंकि जब हमारा एक भाई बेकारी के मारे नरक की यंत्रणा भोग रहा है तब हम उसे छोड़ ऐसे विदेशियों से काम लेकर जो हमीं से कई गुना अधिक धनवान् और सुखी हैं, घोर अन्याय और पाप के भागी हुए। (ग) यदि हमने किसी मुफ्तखोर को दान दिया तो हमारे व्यय से एक ऐसे मनुष्य को लाभ पहुंचा जो देशी व्यापार की कुछ भी सहायता नहीं करता और जिसका जीवन देश को हानिकारक होने के अतिरिक्त किसी प्रकार लाभदायक नहीं। यदि हम उसे दान न देते तो वह उदरपालनार्थ कोई न कोई व्यापार अवश्य करता जिससे देश को लाभ पहुंचती। अतः ऐसे दान से भी देश की उपजाऊ शक्ति घटती है।

इन दोनों प्रकार के व्ययों के अतिरिक्त एक तीसरे प्रकार का व्यय है कि जिससे देश को न कोई विशेष लाभ ही होता है और न हानि ही। इस के विषय में हमें कुछ विस्तार करने की आवश्यकता नहीं।

प्रथम प्रकार का खर्च सुव्यय और दूसरे प्रकार का अपव्यय है ।

द्रव्य को गाड़ रखने अथवा अन्यप्रकार से उसे व्यापार में न लगाने को भी हम अपव्यय कहते हैं । क्योंकि उसके व्याज की तो हानि होती ही है वरन देश उतनी मुद्राओं को काम में भी नहीं ला सकता । मुद्रा बनाने का केवल इ-तनाही प्रयोजन है कि उससे व्यापार सुगम हो । यद्यपि अर्थशास्त्र का यह एक बड़ाही सरल सिद्धान्त है तथापि उस शास्त्र से अनभिज्ञ पाठकों के लाभार्थ हम इसे कुछ विस्तारपूर्वक लिखते हैं ।

यदि मुद्रा न होते तो जब किसी को कुछ मोल लेना होता तो वह जो वस्तु उस के पास होती उसी से मोल क-रता । मान लीजिए कि किसी लोहार को एक टोपी चाहिए वह एक निज कृत खुरपी लेकर बाजार को चला कि उस से टोपी मोल ले आवे, एक दरज़ी हाट में टोपी बेचरहा है । लोहार उस की दूकान पर जाकर खुरपी देकर टोपी मोल लेना चाहता है परन्तु दरज़ी को खुरपी दरकार नहीं वह गेहूं लेना चाहता है । अतः उस लोहार और दरज़ी का सौदा नहीं हो सकता । उसी हाट में एक किसान गेहू बेंच रहा है । अब दरजी उसके पास जाकर टोपी के बदले गेहूं लेना चाहता है परन्तु कृषिकार को टोपी की आव-श्यकता नहीं वह एक खुरपी लेना चाहता है । इस विचा-र से वह लोहार के पास गेहूं लेकर जाता है और उन्हें दे-कर खुरपी लेना चाहता है पर लोहारराम गेहूं चाहते न-

ही वे तो टोपी की धुन में हैं सो वे गेहूं लेकर अपनी खुर-
पी काहे को बेचने लगे ? अत. खुरपी, टोपी और गेहूं ती-
नोंही पदार्थ बाजार में प्रस्तुत होने पर भी उन के मालि-
कों के बीच आपस में सौदा होना बड़ा कठिन है क्योंकि
बीच में कोई ऐसी वस्तु (मुद्रा) नहीं है कि जिस से या-
वत् पदार्थ खरीदे जा सकते हों। आप कहेंगे कि वे मिल-
कर सौदा क्यों नहीं करलेते ? इस का उत्तर यह है कि
हाट में तीन ही मनुष्य तो हैं नहीं कि वे चट एकत्रित हो-
जाय। फिर यदि बहुत ढूंढे ढाढ़े वे सब मिल भी गए तो
तीनों पदार्थों का मूल्य एक नहीं सौदा कैसे हो ? यदि खु-
रपी लेकर किसान ने लोहार को एक सेर गेहूं दिए और उ-
नका सौदा होगया तो लोहार और दरजी मे गड़बड़ मची
क्योंकि दरजी अपनी टोपी के बदले डेढ़ सेर गेहूं चाहता है
अथवा मानलिया कि लोहार को एक ऐसा दरजी मिलगया
कि जो खुरपी लेकर टोपी बेचना चाहता है तो भी सौदा
होना कठिन है क्योंकि खुरपी और टोपी के दाम बराबर
नहीं। अत. इस दशा में सौदा तभी हो सकता है जब दो
मनुष्य ऐसे पदार्थ बेचते हैं कि जिन की एक दूसरे को
आवश्यकता है और उस पर भी इन दोनों पदार्थों का मू-
ल्य एक ही होना चाहिए। इसी को अर्थशास्त्र मे Double
coincidence in Barter (अदला बदल मे दोहरा संयोग) क-
हते हैं। इस का होना ऐसा कठिन है कि मुद्रा बनाए बिना
काम नहीं चलता। परन्तु इस में हानि यह है कि जितनी
बहुमूल्य धातु का मुद्रा बनाया जाता है वह धातु मानो
व्यर्थसी होजाती है क्योंकि इससे वह उन कामोंके अयोग्य

हो जाती है जिनपर उसकी बहुमूल्यता निर्भर है। यथा स्वर्ण इस हेतु बहुमूल्य है कि उसकी बनी हुई वस्तु में चमक बहुत सुन्दर होती है, उस पर मोरचा नहीं लगता, उस में बढ़ने की बड़ी शक्ति है अर्थात् थोड़े से सोने से कई गज़ लम्बा तार खींचा जा सकता है अथवा बहुत लम्बा चौड़ा पत्र बन सकता है, उसे कोई एक द्रावक गला नहीं सकता और वह नाइट्रिकएसिड और हाइड्रोक्लोरिकाएसिड के मिलाने से ही गल सकता है, उस में रक्खा हुआ खाद्य पदार्थ बिगड़ता नहीं, उस के पात्र द्वारा विषमिश्रित खाने की भी परीक्षा हो जाती है, वह कई दवाओं में बड़ा गुणकारी है, उस के आभूषण बहुत सुन्दर बनते हैं इत्यादि २ उस में अनेक गुण हैं कि जिन के कारण वह बहुमूल्य होता है। परन्तु ऐसे मूल्यवान् पदार्थ (स्वर्ण) का सिक्का बना कर हम उसे उन लाभों के पहुंचाने से वंचित रखते हैं कि जिन के कारण वह ऐसा बहुमूल्य है, यही हाल चान्दी का है क्योंकि उस के भी बहुमूल्य होने के अनेक कारण हैं। परन्तु इनका मुद्रा इसी हेतु बनाया जाता है कि विना मुद्रा के काम ही नहीं चल सकता। इस से स्पष्ट है कि प्रत्येक देश में कम से कम इतने मुद्रा जो काम चलाने के लिए अल होसकें बनाने चाहिए। मुद्रा यदि शीघ्रता पूर्वक अपने स्वामी बदलता रहे तो समझना चाहिए कि उसने अपने कर्तव्यपालन में त्रुटि नहीं की। जितना ही व्यापार जहां होगा वहां उसी हिसाब से मुद्रा की आवश्यकता होगी। मानलीजिए कि अयोध्या में इतना व्यापार

होता है कि एक लाख रजतमुद्रा द्वारा वह भलीभांति चल सकता है पर यदि वही मुद्रा द्विगुणित शीघ्रता से हाथ बदलने लगे तो वह व्यापार केवल ५० हजार मुद्रा से चल सकता है और शेष ५० हजार मुद्राओं में लगी हुई रजत अपने उन कार्यों में लगाई जा सकती है कि जिनके लिए वह बहुमूल्य है और यों देश को ५० हजार मुद्रा की रजत काम में लाने का लाभ बिना किसी मनुष्य की हानि के हो, परन्तु यदि कोई मनुष्य ५० हजार मुद्रा लेकर पृथिवी में गाड़ रक्खे तो इतने मुद्रा अपना कर्त्तव्य पालन में नितान्त असमर्थ होजावें और उतने नवीन मुद्रा बनने की आवश्यकता उपस्थित होजाय, या कम से कम देश को उतने मुद्राओं में लगे हुए रजत का उन बातों में लगाना अवश्य ही रुक जाय कि जिनके कारण चांदी ऐसी मूल्यवान् वस्तु है। अतः उतनी रजत को जो लाभकारी कामों में लगी थी अथवा लग सकती थी व्यर्थ को मुद्रा का स्वरूप धारण कर अपने कर्तव्यपालन में असमर्थ रहना पड़े। एतावता उस सम्पत्ति गाड़ने वाले पुरुष ने अपने ब्याज की हानि की और देश को उतनी चांदी काम में लाने से वंचित रक्खा। सो द्रव्य को गाड़ रखना स्वार्थ एवं देशहितैषिता दोनों ही के विरुद्ध है। हम कई लोगों को जानते हैं कि जिन्होंने नव्वाबी समय के छोटी गोली वाले रुपये गाड़ रक्खे जिस से उक्त दो हानियों के अतिरिक्त उन्हें एक तीसरी बहुत भारी हानि यह पहुं-

चांदी केवल १००) की रहगई। अब वे लोग अपनी भूल पर खूब पश्चात्ताप करते हैं पर तोभी रजत के भाव बढ़ने की कोई सम्भावना न होने पर भी वे लोग उस चांदी को अब भी काम में नहीं लाते।

इस स्थान पर यह भी कह देना अनुचित न होगा कि बैंकों के नोट बरतने से उतने मुद्राओं के स्थान पर केवल कागज़ से कार्यसाधन हो जाता है। यह एक बड़ी ही उत्तम रीति है क्योंकि इससे वही मुद्रा दो काम देकर देश को दोहरा लाभ पहुंचाता है। एक तो वह नोट का झूठा रूप धारण कर व्यापार को चलाता है और दूसरे स्वयं किसी अन्यदेश को जाकर स्वदेश को ब्याज दिलाता है अथवा स्वयं रजत या स्वर्ण के स्वरूप में रहकर कार्यों का साधन करता है कि जिन के हेतु ये धातु बहुमूल्य हैं। इसी हेतु जब किसी व्यक्ति ने यह कहा था कि "मुद्रा सड़कों के समान है जो खेतों से थोड़ी सी भूमि लेकर उन की कुल पैदावार बाजार लेजाकर उसे मनुष्यजाति का हितकारी बनाती हैं" * तब एक दूसरे ने कहा कि "नोट

---

* "थोड़ी सी भूमि लेकर" का यह अभिप्राय है कि यदि वह भूमि सड़क में न लगी होती तो उस में भी कुछ अन्न उत्पन्न होता। इसी प्रकार यदि वह रजत मुद्राओं के स्वरूप में न होती तो वह उन कामों में लगती जिन पर उस की बहुमूल्यता निर्भर है—"पैदावार बाजार लेजाने" से यह तात्पर्य है कि जिस प्रकार बिना सड़कों के खेतों का अनाज हाट तक पहुंचने में बड़ी कठिनई हो वैसे ही बिना मुद्रा के व्यापार चलना अति दुस्तर है।

बैलून (अर्थात् वायुयान) के समान हैं जो सड़क के हेतु उतनी भी भूमि न लेकर देशजनित धान्य को आकाश मार्ग से हाट में पहुंचा देते हैं "

इन्हीं कारणों से इगलैंड में लोग द्रव्य प्रायः बैंकों ही में जमा रखते हैं। यदि कोई व्यक्ति १००० मुद्रा मासिक पाता हो तो वह पूरी तनखाह बैंक में जमा करदेगा। यदि वह कोई पदार्थ मोल लेगा तो उतने का चेक बैंक के ऊपर लिखदेगा। अब जिसने वह चेक पाया वह भी अवश्य ही किसी बैंक से हिसाब रखता होगा अतः चेक का मुद्रा वसूल न करके वह केवल उतने मुद्रा अपने हिसाब में जमा करालेगा और बैंको मे भी हिसाब जमा बाकी करलिया जायगा क्योंकि प्रायः सभी बैंक एक दूसरे से हिसाब रखते हैं। इस प्रकार सौदे का काम कागजी घोड़ों (अर्थात् चेकों) द्वारा चलता है और यों जहां पचास लाख मुद्रा भुनाने की आवश्यकता होती वहां केवल १५–२० लाख मुद्रा से ही काम चलजाता है। फिर यदि आप साढ़े तेरहआने का कोई सौदा लीजिए तो शेष ढाई आने अवश्यही फुटकर तौर पर व्यर्थ व्यय हो जायगे। इसी हेतु बहुत लोग मुद्रा भुनाने में आगा पीछा किया करते हैं और प्रायः मुद्रा भुनते ही भुनते सब पैसे आन की आन में व्यय हो जाते हैं। परन्तु यदि आपने ।।।-)।। का चेक देदिया तो न शेष ढाई आने आप के पास फुटकर बचेंगे और न वे व्यर्थ व्यय होंगे। इस भांति जहां बैंक में मुद्रा रखने से तीन कार्य साधन होते हैं (१) उतने मुद्राओं का कुछ न कुछ व्याज

जमा करने वाले को मिलता है (२) द्रव्य का काम चेकों औ-
र नोटो द्वारा चल जाता है और (३) फुटकर का अपव्यय न-
ही होता। इस रीति से जो एक चौथा कार्य साधन होता है
वह बड़ाही लाभदायक है। छोटा गांव गांव की बैंके अपना
कोष प्रान्तिक बेंको में और प्रान्तिक बैंकें लंडन बैंक में जमा कर
देती हैं सो लण्डन बैंक विलायत की बैंकों की बैंक है।
और विलायत वासियों का समस्त संसार से इतना व्यापारि-
क सम्बन्ध रहता है कि पृथिवीमण्डल लण्डन बैंक पर चेकें
मजूर कर लेता है और उस पर चेकें लिखता है। सो लण्डन
बैंक समस्त संसार की बैंक हो गई है। इस बैंक में जो इ-
तना महान् द्रव्यसमुदाय एकत्रित होता है उस के ट्रस्टियो
को अधिकार है कि उसे चाहे जिस व्यापार से लगावे।
अनेक लाभकारी व्यापारो से धन लगाने के अतिरिक्त
ट्रस्टी लोग इस द्रव्य को ऐसे २ अच्छे व्यापारियों को उ-
धार भी देते हैं जो व्यापार में बड़े प्रवीण होने पर भी
द्रव्याभाव से कोई व्यापार कुशलता से चला नहीं सकते।
इस प्रकार व्यापार की बड़ी ही उन्नति होती है और उस
के कारण देश की कुछ भी हानि नहीं होती क्योंकि सौदे
का काम नोटों और चेकों द्वारा चलता ही रहता है।

यही द्रव्य ऋण में देने का काम प्राज्य और प्रान्तिक बैंकें
भी करती हैं। अब यह प्रश्न उठता है कि जब नियमानुसार
बैंकों को मुद्रा जमा करने वालों की मांग पर उनका रुपया
लौटाना पड़ता है तो उन्हें पूरा धन तैयार रखना पड़ता
होगा और इस कारण वे कुछ भी रुपया उधार कैसे दे स-

कती होंगी ? प्रायः देखा गया है कि ऐसे नियम वाले बैंक भी अपने कोष का एक तिहाई मुद्रा मात्र प्रस्तुत रखने से सुगमता पूर्वक मांगका मुद्रा बराबर देती रहती है । अतः जितना मुद्रा उनमें जमा रहता है उसके दो तिहाईके व्याज का लाभ इन बैंको को होता है । हमारे यहां भी बैंक हैं परन्तु वे किसकी हैं ? उन का लाभ अधिकांश में किसे होता है ? हमे दुःखपूर्वक कहना पड़ता है कि विदेशियो को । केवल फैजाबाद गोरखपुर इत्यादि दो चार बैंकोका लाभ हमीं लोगो को होता है, परन्तु ऐसी बैंके विदेशी बैंको के सामने दन्तावलि में जिह्वा के समान दबी पड़ी हैं । क्या हम लोगों को बैंके खोलनी न चाहिये ? यहां तो बैंको में रुपया विशेषतः वेही लोग जमा करते हैं जो आलस के कारण कोई काम नही कर सकते केवल सूद खाकर मोटे होना और दिन रात पड़े रहना अथवा गप हांकनाही उन्हें बहुत पसन्द है । क्या ऐसा भी यहा कोई दिन आवैगा जब हम इस विषय मे विलायत की रीति का अनुकरण करना सीखलेंगे ?

हम लोग बैंकें क्यों नहीं खोलते ? हमारेही यहा विदेशियो ने इतनी रेलें बनवाई और बनवाते जाते हैं पर तब भी हमारी बनवाई एक भी क्यों नहीं ? मैनचेस्टर केजोलाहों का बनाया कपड़ा हम खूब पहिनते हैं परन्तु कानपुरही में एल्गिन मिल्स इत्यादि विदेशी मिलें देखते हुए भी बहुतसी मिलें हम ठीक २ तौर पर क्यों नही चला पाते ? हमारे धर्म कर्म आचार विचार में बरबस अनेक परिवर्तन हो रहे हैं जिनमें से कुछ लाभकारी और शेष हानिकारी हैं प-

रन्तु हम एक जातीय महासभा कर सोच विचारानन्तर कुछ दृढ़ परिवर्तन क्यों नहीं करलेते ? आस्ट्रेलिया और साउथ अफरीका निवासी हमको "काला" कहकर कुलियों तक में भरती नहीं करते बरन यहांतक कि "काले" मल्लाहों वाले धूमपोतों को आस्ट्रेलियन लोग अपने देश के निकट आने देना भी नहीं पसन्द करते परन्तु हम भी मिलकर दृढ़ता पूर्वक यह नियम क्यों नहीं करलेते कि आज से इन देशों का बनाया कोई पदार्थ हाथ से न छुवेंगे ? इन सब और ऐसे २ सहस्रों प्रश्नों का एकही उत्तर है अर्थात् कर क्या लें खाक ? हम में मिलकर कार्य करने की शक्ति (co-operative capacity) तो है ही नहीं । हम यह तो जानते ही नहीं कि समुदाय किस चिड़िया का नाम है । हन लोगों में एक प्रसिद्ध कहावत है कि "काजी दुबले शहर के अंदेशे" बस अन्त होगया ! ! अब हम शहर ही के अन्देशे को इस कारण निन्द्य समझते हैं कि समस्त शहर से एक आदमी को क्या वास्ता ? तब समस्त देश का अन्देशा कौन करैगा ? इन्ही लोग मिलकर एकही घर में उमर पार करदेते हैं और भाई भाई जुदे नहीं होते । क्या छोटे मेल से बड़े मेल की शक्ति नहीं रह जाती ? क्या कारण है कि ट्रांसवाल में संग्राम हो रहा था और समाचार आने में एक दिन का भी विलम्ब होता था तो समस्त अङ्गरेज जाति (न केवल युद्ध में गए हुए लोगों के भाई बन्धु) चिन्ता में निमग्न हो जाती थी परन्तु हमारे दस हजार भाइयों का चीन की घोर समराग्नि में पड़े रहने

का हम लोगों को पता तक न था? जनरल ह्वाइट की बन्दर पर स्वागत में इतनी भारी भीड़ हुई थी कि अनेक मनुष्य उस में दब कर मर गए * क्या इन को कर्नल सर प्रतापसिंह का वैसा ही स्वागत नहीं करना चाहिए था? माना कि इन महोदय का स्वागत भारतवर्ष के देखते अच्छी धूम धाम से हुआ था पर क्या जनरल ह्वाइट के स्वागत से किसी अंश में भी उसकी तुलना हो सकती है! चीन में केवल थोड़े से राजदूत, व्यापारी, व पादरियों के घिर जाने से समस्त यूरोप पर कैसी मुर्दनी छा गई थी कि हाय हमारे उन भाइयों की क्या गति होगी। परन्तु आप के यहां भी जब अहमदशाह अब्दाली ने दो लाख मरहटों को वैठा कर कतल करा डाला था तब भी क्या आप के सिर पर जूँ रेंगी थी? अवश्य ही अब वह असभ्यता रूपी अन्धकार भारतवर्ष व चीन को छोड़ सभी ठौर सभ्यता के प्रकाश में परिवर्तित होगया है हमारे आर्य्यावर्त्त में भी वह लंगड़ा हो गया है क्योंकि सरकार अंग्रेज ने एलेक्ट्रिक लाइट द्वारा उसे छिन्न भिन्न कर अपने पास से हटा दिया है परन्तु प्रजा मे वह भलीभांति वर्त्तमान है। इसी हेतु एक टांग टूटने पर भी काठ का पैर + लगा कर वह कूद रहा है और चीन में तो राजा प्र-

* मैफेकिङ् उद्धार में सारी विलायत पागल होगई थी (स०स०)

+ क्या अब भी सरकार को रामलीला, मुहर्रम इत्यादि के झगड़े निबटाना नहीं पड़ते? अथवा "गोहत्या" का पचड़ा इधर उधर नहीं उठ पड़ता है? यही काठ की टांग है।

जा दोनो ही को अपनाए है यहांतक कि वहां जाने वाली सभ्य जातियों पर भी अपना प्रभाव कुछ न कुछ विस्तारित कर ही देता है सुनते हैं कि अब वहा की महारानी भी उन्नति की कुछ चेष्टा कर रही हैं।

एक प्रसिद्ध किंवदन्ती सुनते थे कि " नकल रा चे अकल " परन्तु अब भारतवर्ष के सम्बन्ध में हमारा विश्वास इस की सत्यता से भी बरवश उठा जाता है क्योंकि हम लोग यूरोप व अमेरिका की बनी साधारण वस्तु देख कर भी उन की नकल नहीं कर सकते। कुछ नकली माल तैयार भी किया जाता है तो वह उत्तम प्रकार का नहीं होता क्योंकि यहां के कारीगर घटिया से घटिया माल बना लेना ही और उसे कम से कम दामो पर बेंच सकना ही बहुत अच्छा समझते हैं। ऐसा नहीं होना चाहिये। मुनासिब यह है कि " खरा माल चोखा दाम "। यूरोप व अमेरिका की बात जाने दीजिए अंग्रेज लोग हमारे सामने ही उपस्थित हैं और हम उन के अवगुण तो खूब सीख लेते हैं पर गुण नहीं। हो सकता है कि वर्ण व धर्म के भेद से ऐसा हो, पर जापान को देखिए जो हमारे ही समान काला और जिसका धर्म हमारेही धर्मका औरस सन्तान है और जो अभी सन् १८५३ ई० में ऐसा बुद्धिमान् था कि विदेशियों से स्वदेश रक्षणार्थ उसने " सूर्य्यदेवी " * की आराधना मात्र एक

* जापानी लोग " सूर्य्यदेवता " को " सूर्य्यदेवी " मानते थे। न जाने वास्तव में वह देवता है या देवी या एक जलता हुआ पिण्ड मात्र।

प्रभावशाली और समुचित उपाय समझा था ! परन्तु जापान को पूर्ण उन्नति कर लेते देख कर भी हम न चेते !! चीन दो ही धक्के उठा कर फिर सम्हल रहा है परन्तु हम हजारों धक्कें उठा कर भी नहीं सम्हलते !! भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने सच कहा है कि " जो जान बूझ कर सोता है उसे कौन जगा सकता है ? " इस में अंग्रेजों पर ही दोष देदेने से काम नही चलेगा। अंग्रेजों जैसा न्यायी राजा बड़े भाग्य से मिलता है पर यदि हम अपनी उन्नति की इस रामराज्य में भी कुछ समुचित चेष्टा न कर केवल चिल्लाया ही करते है तो अंग्रेज क्या उन्नति को हमे घोलकर पिलादे ? फिर सितारेहिन्द राजा शिवप्रसाद ने जब हिन्दुस्तानियों को " भेड़ " कहा था तब लोग इतना क्यों बिगड़े थे कि उन के जीते जी उन को प्रतिमा बनाकर उसकी दाहक्रिया की ? यदि बिगड़े थे तो कुछ उन्नति कर दिखाते। इस काम में भी तो दियासलाई बिदेशही की बत्ती लगाई होगी ! तीन पहाड़ों में दबा हुआ छोटासा स्विटजरलैंड तक तो आप के वास्ते लाख नैं बहुतसा माल बनाकर भेजताही है ! तब आप दूसरे को भेजना तो दूर रहा स्वयं अपने लिए सब चीजें क्यो नही बना लेते ? हम लोग तो केवल " तक तक " कर के बैल की पूंछ मरोड़ना जानते है और सो भी जिस प्रकार बाबा आदम के समय में होता था !

आलस्य के कारण अपना प्रबन्ध न देखना भी एक प्रकार का प्रच्छन्न अपव्यय ही है। यह हमारे यहां के

राजो, महाराजों, नव्वाबो और अन्य आलसियो के यहां बहुत प्रचलित है। इगलैंड में एक प्रसिद्ध कहावत है कि " the worst landlord can manage his estate better than the Government " अर्थात् निकृष्ट से निकृष्ट ज़िमीदार भी अपने इलाक़े का प्रबन्ध सरकार की अपेक्षा उत्तमतर कर सकता है, परन्तु यहां सरकार को लोगों के इलाके कोर्ट आफ़ वार्ड्स में लेने पड़ते हैं !

हम सुव्यय और अपव्यय के विषय में कुछ सिद्धान्त प्रकट कर चुके हैं। अब जिस प्रकार के व्यय इस देश में अधिकतः होते हैं उन की योग्यता अथवा अयोग्यता पर कुछ लिखना है। पहले हम अपव्ययो का वर्णन करेंगे।

(१) कुपात्रों को दान देना।

बूढ़े भीष्म पितामह ने कहा है कि दान सर्वपाप नष्ट करता है। परन्तु कैसा दान ? दान का मुख्य अभिप्राय स्वार्थत्याग है जो " नानानामगोत्रेभ्यो ब्राह्मणेभ्योऽहं सम्प्रददे " में नहीं हो सकता। विप्रवृन्द को पूर्वकाल हमारे यहा दान दिया जाता था परन्तु क्यो ? केवल इसी हेतु कि वे सर्वगुणसम्पन्न होने पर भी स्वार्थत्याग कर के देशोपकारार्थ प्राय समस्त विषयो पर अनेकानेक विषयो की पुस्तके रचते और अन्य देशहितैषी कार्य किया करते थे, जैसा कि इस लेख के प्रथम भाग में लिखा जा चुका है। प्रत प्रकट में तो वे दान लेते थे परन्तु वास्तव मे ससार से खाने मात्र (subsistence allowance) को लेकर वे त्याग के सदेह उदाहरण होते थे और ससारी जीव ही उलटे उनके ऋणी

रहते थे, पूना के फ़र्गुसन कालेज, दयानन्द कालेज लाहौर, एवं सेन्ट्रल हिन्दू कालेज बनारस के वे अध्यापक लोग जो सैकड़ों हजारों रुपया मासिक की योग्यता रहते भी खाने मात्र को पचास पचास साठ साठ मुद्रा महीने का वेतन लेकर काम करते हैं क्या कोई कह सकता है कि वे दान लेते हैं? ये कालेजें देखने में इन महाशयों को दान देती हैं क्योंकि दान का अर्थ देना है। अब कहिए कि इस में वास्तविक दानी और स्वार्थत्यागी ये लोग हुए कि वे कालेज? ऐसा ही दान उस समय के ब्राह्मण लेते थे। परन्तु यदि इन्हीं महाशयों की सतान भारत को लाभ पहुंचाना छोड़दे तो क्या इन कालेजों का फिर भी उन्हें द्रव्य देना उचित माना जायगा? कदाचित् इन महानुभावों के लड़कों तक को यदि कुछ खाने के लिए दिया भी जाय तो कई अंशों में यह उचित हो पर क्या पुश्तदर पुश्त नान्यबर मिस्टर गोखले, रघुनाथ पुरुषोत्तम परांजपे, डाक्टर रिचर्डसन, अथवा लाला हंसराज तक के कपूत सन्तानों को (यदि ईश्वर न करे इन में से किसी के ऐसी सन्तति हो) दान देते जाना इन कालेजों अथवा अन्य किसी मनुष्य को कुछ भी उचित कहा जा सकता है? अब ब्राह्मणों को दान देना वैसा ही अनुचित है क्योंकि वे दान के प्रत्युपकार में देश को कुछ भी लाभ नहीं पहुंचाते। देखिए आपही के नीतिकार क्या कहते हैं:—

कृते प्रत्युपकारो यो वणिग्धर्मो न साधुता।
तत्रापि ये न कुर्वन्ति पशवस्ते न मानुषाः॥

सो वर्तमान काल के दान लेने वाले ब्राह्मण भूदेव के पद से गिरकर पशु की पदवी को प्राप्त हो गए हैं। प्राचीन काल के ब्राह्मण यदि वास्तव में भिखारी होते तो वे समस्त हिन्दूजाति में अग्रगण्य कभी न हो सकते। तुलसीदास भी कहते हैं:—

" तुलसी कर पर कर करौ कर तर कर न करौ।
जादिन कर तर कर करौ तादिन मरन करौ॥

प्राचीन समय के ब्राह्मण "कर तर कर" करके उसके उपलक्ष में न जाने कितना देश का उपकार कर डालते थे पर अब हम लोग सिवा ऐसा करने के और कुछ जानतेही नहीं यही परिणाम देखकर कदाचित् तुलसीदासजी दान लेना मात्र ऐसा निन्द्य कहगए हैं। इसी कारण हम सहठ कहते हैं कि वर्तमान काल के अधिकांश दाता और दान पात्रदोनों पाप के भागी होते हैं। यह कुपात्रो का दान कितने ही रूप धारण कर हम लोगों का सत्यानाश कररहा है। उनमे से प्रधान २ यहां लिखे जाते हैं:—

(क) सबसे प्रथम हट्टे कट्टे फकीरों को दान देना है। इस रीति का आविर्भाव इस भांति हुआ कि हमारे पंचमहायज्ञों में अतिथिपूजा भी एक है। अतः गृहस्थ लोग अभ्यागत का यथासाध्य सत्कार करना अपना धर्म समझते हैं। यह बात वास्तव मे बहुत आदरणीय है परन्तु Lest one good custom should corrupt the world "अर्थात् आंखे मूंद कर किसी उत्तम से उत्तम रीति पर चलने से भी पृथ्वी का सर्वनाश होजायगा" के अनुसार इस

उत्तम रीति से यह हानि हुई कि गोसाईं, साईं, कनफटे, जोगी, दंडी, वैरागी (!), नागा, पुरविहाभिक्षुक, गद्दीवाले फकीर, मुजावर, इफाली, आदि कितनी ही ऐसी जातियां उत्पन्न होगईं कि जिनका अतिथि बनने के अतिरिक्त दूसरा काम ही नहीं। इस महायज्ञ का मुख्य अभिप्राय यह था कि यदि दैवत: कोई मनुष्य ऐसी दुर्घटना में पड़जाय कि उसे भोजन तक का डौल न लगे तो वह किसी गृही के यहां जा अतिथि बन उदरपालन करले अथवा जो मनुष्य अंध, पगु या अन्य किसी कारण काम करने के नितान्त अयोग्य होजाय वह इस प्रकार पापी पेट को भरै। फिर प्राचीन काल में ऐसे २ परोपकारी महात्मा वर्तमान थे कि उन्हें अपने लिए कोई काम करना ही कठिन था। ऐसे महानुभावों को सादर भोजन कराने से वास्तव में अतिथिपूजन के फल प्राप्त होते थे। महात्मा मैक्समुलर (मोक्षमूलर भट्ट) ने लिखा है कि " मुझे इस क्षुद्र जीविका के अर्थ भी अपने कई घंटे नित्य व्यर्थ व्यय करने पड़ते हैं "। यदि हमारे यहां की भांति अतिथिपूजन का धर्म विलायत में भी प्रचलित होता तो उपरोक्त महात्मा को ऐसा न लिखना पड़ता। परन्तु पगु एवं असमर्थ मनुष्य की कौन कहे अब तो १०० में ८० फकीर शक्तिमान् भिक्षुक (able bodied paupers) होते हैं जिनका पेशा ही भीख मांगना है। कारलाइल ने ऐसे भिक्षुकों के विषय में बहुत कुछ लिखकर अंतमें कहा है कि रविवार को और कोई काम नहीं किया जाता सो उसे ऐसे भिक्षुकों को शिकार खेल-

ने में व्यतीत करना चाहिये। पुरबियो के यहां कहाजाता है कि " भाई असुक मनुष्य के घर चार थैलियां चलती हैं (अर्थात् चार आदमी भीख मांगते है), वह क्यों न धन सम्पन्न हो ? " ऐसे फकीरों में बहुतो के पास उनके मर- ने पर चार चार सहस्र मुद्रा तक निकले हैं। एक मान्य ब्रह्मचारी जी हमसे कहते थे कि उनके ब्रह्मचर्य्य व्रत धार- ण करने के पूर्व उनके यहां साधुओं के निमित्त जो चिकि- त्सालय था उसमें एक " साधु " की चिकित्सा होती थी अन्त में वैद्य ने कहदिया कि वह अच्छा नही हो सकता अतः दो एक दिन उसे इच्छाभोजन खिलाने का प्रबन्ध हु आ। उसने पतला हलुआ मांगा और उसी के साथ एका- न्त में वह अपने पचास स्वर्ण मुद्रा खागया। उसे अपने मुद्राओं को अपने साथ लेजाना ही अच्छा लगा ! " अ- हह गहनो मोहमहिमा ! ! " बहुतसे लोगो ने उसे " प- हुंचा हुआ फ़कीर " समझकर यह धनदिया होगा ! ! ! ह- लुआ खाने के पश्चात् उस के पेट में शूल उठी और उसीसे वह मरगया। जब उसका दाह कर्म हुआ तब वह सब स्व र्ण उसके उदर से चमचमाता हुआ निकला। भला अब कहिए कि-ऐसे भिक्षुकों को दान देने से क्या पुण्य है? फिर कुछ "साधु" लोग ऐसे होते हैं कि भिक्षा द्वारा धनउपार्जित कर उसे भाग, चरस, गांजा, अफीम, चाडू, शराब, आदि में उड़ाते और ऐसे २ घृणित कार्य्य करते है कि कहते नही ब- नता। जब हमारे पूर्वपुरुष धन धान्य से सम्पन्न होकर भी ऐसा दान निन्द्य समझते थे। जो देश का किसी प्रकार हित

करना हो तो इस दरिद्रों को वैसा दान देना मूर्खता की पराकाष्ठा नहीं तो क्या है? चंदे को दान देना दो प्रकार हानि पहुंचाता है जैसा कि प्रथम भाग में लिखा जा-चुका है। यदि हम लोग विशेष स्वार्थ त्याग कर देशहितैषिता न कर सकै तब भी इतना तो अवश्य करना चाहिए कि जो दान हम करते हैं उसे इस प्रकार करें कि वह देश का उत्तम से उत्तम रीति पर हितसम्पादन करे और कम से कम हानि तो न पहुंचावे।

" वारि बरसै न तौ अंगार जनि डारैरे ! "

हट्टे कट्टे लोगों को दान देना देश और उन सबों दोनों ही को हानिकारक है। देश को इस प्रकार कि उसका उतना धन व्यर्थ नष्ट होता है और उसकी द्रव्योत्पादक शक्ति (जो उन्नति की एक मात्र जननी है) घटती है और उन भिक्षुकों की यो हानि है कि वे पुरुषार्थ के नितान्त अयोग्य होजाते हैं। आप कहेंगे कि क्या फकीरों को मरजाने दें? इसका उत्तर यही है कि ऐसे कापुरुषों, का जो देश पर केवल बोझा मात्र है मर जाना ही उत्तम है परन्तु आप देखिएगा कि वे मरैंगे भी नहीं क्योंकि भूखों मरने के पहले ही वे कुछ न कुछ काम अवश्य करने लगैंगे लखनऊ के बादशाह के यहां कुछ " अहदी " लोग हुआ करते थे जिन के भोजनाच्छादन और अन्य सभी सुविधाओं का प्रबन्ध बादशाह सलामत के यहां से होता था और उन अहदियों का एक मात्र गुण यही समझा जाता था कि चाहे वे मर जांय पर चारपाई से न उठे! फिर क्या था

जिसे देखिए वही अहदीखाने में भरती होने लगा। एक दिन हजरत सलामत ने इन की बहुत बढ़ती देख कर परीक्षार्थ आज्ञा दे दी कि अहदीखाने मे आग लगा दी जाय, ऐसा ही किया गया। सुनते है कि कोई पाच हजार आदमियो मे से केवल तीन या चार ऐसे निकले कि जिन्होने कहा "भाई चाहे जलैं और चाहे बचै हम अहदी लोग उठ कर कहा जा सकते हैं?" शेष सब के सब उठ उठ कर भागे। बादशाह ने कहा कि तीन चार मनुष्य ही सच्चे अहदी हैं। वे आग से जीते जागते निकाल लिए गए और पूर्ववत् सुख से रहने लगे, शेष बने हुए अहदियों के नाम रजिस्टर से काट दिए गए। इसी भाति यदि हमारे आजकल के समर्थ भिक्षुको को जिन का रोजगार ही भीख मागना है भिक्षा देना एक दम बन्द कर दिया जाय तो उन में से प्राय: सब के सब कुछ न कुछ काम अवश्य करने लगे, जिस से देश की पैदावार बढ जाय और जो व्यय इन "अहदियो" के छकाने में होता है वह किसी देशोपकारी काम में लगाने से देश का और भी विशेष लाभ हो क्योंकि इन सडों को न देने से लोगो की दानशीलता घट थोड़े ही जायगी?

अनुपयोगी दान का प्रत्यक्ष परिणाम यह हुआ कि हम लोगों ने ५२ लाख आलसी संडों को जीवित रक्खा और रखते है परन्तु वही हम अकाल के समय क्षुधा पीड़ित समुचित दानपात्रों का बहुत कम उदर भर सकते हैं कि जिस से कितने ही अनाथ बालक बालिका तो भूखों

मर जाते हैं और जितने पादरियों द्वारा मरने से बच कर अपना प्राणों से प्रिय धर्म को ईसाई हो बैठते हैं! सर हेनरी काटन ने एक व्याख्यान में कहा है कि भारतवर्ष में २० साल के बीच दो करोड़ मनुष्य भूख के मारे मर गए!!! भला इन असमर्थ अनाथों के प्राण बचाने में अधिक पुण्य होता कि उपरोक्त महद्दियों के छकाने में? इसी से कहते हैं कि आंखें मूंदकर दान करने से पुण्य की अपेक्षा कदाचित् पाप अधिक होता होगा।

(ख) इसी प्रकार का दान हम लोग महाब्राह्मणों को देते हैं। किसी के मरने में उनके निमित्त कुछ द्रव्य पुण्यकार्य में लगाना अवश्यही अत्यन्त श्लाघनीय है परन्तु वह द्रव्य पुण्यकार्य को छोड़ पापकार्य में तो न लगे? किसी आलसी निरुद्यम मनुष्य को दान देने से कुछ भी पुण्य नहीं हो सकता है। केवल वही द्रव्य पुण्यकार्य में लगा कहा जा सकता है जिससे या तो किसी असमर्थ वास्तविक दीन दुखिया का पेट भरे या जिस से देश के परिश्रमी लोगों को लाभ पहुंचे अथवा जिस से देशीय उपजाऊ शक्ति की वृद्धि हो। कट्टहों (महाब्राह्मणों) को दान देने से इन तीनों बातों में से एक का भी साधन नहीं होता। अतः यह पैसा इन लोगों को न देकर किसी देशोपकारी काम में मृतपुरुष के नाम से लगा देना कहीं अच्छा है।

(ग) इसी दान से मिलता हुआ श्राद्धादिकों में ब्राह्मणों को खिलाना है। श्राद्ध में ब्राह्मण ऐसे खिलाने चाहिए जो विद्वान् हों। यह विचारना कि अमुक व्यक्ति ने

५० ब्राह्मण खिलाए हैं अतः मैं १०० खिलाऊंगा अत्यन्त नि-न्द्य है। यदि एक भी सुपात्र ब्राह्मण मिल जाय तो उसी को श्रद्धापूर्वक इच्छाभोजन करा देना उचित है। "बॅमन खिवैया" करने से एक भी ब्राह्मण जिमा देना श्रेष्ठतर है। खिलाना उसे ही सफल है जिस से देशहितैषिता आदि के काम सधे। यदि भूदेवजी ने आप के यहां भोजन करके अ-पने पड़ोसी से लट्ठबाजी की और उसका धन लूटलिया तो क्या आप भी कुछ पाप के भागी न हुए? धर्मशास्त्रकारों ने मूर्ख, द्यूतप्रिय, गर्भघाती, ग्रामभृत्य, राजभृत्य, कपटी, पिशुन, क्रोधी, हलग्राही, शूद्रपुरोहित, मठपति, अडडपोपो आदि विप्रों को श्राद्ध में निमन्त्रित होने के अयोग्य लिखा है और सत्यवादी, धर्मशील, विद्यावान्, ब्रह्मचारी, शुक-र्मरत, जितेन्द्रिय, क्षमावान्, ऐसे भूदेवों को पङ्क्तिपावन कहा है। इस पर अवश्य ध्यान देना चाहिए। हमारी समझ में तो केवल ब्रह्मचारी का खिलाना श्रेष्ठ है।

(घ) घटवारियों, पण्डों और गया वालों को भी दान देना हम नितान्त व्यर्थ समझते हैं क्योंकि ये लोग भी छटे कटे भिखारियों ही की भांति है। हम समझते हैं कि हमने इतना द्रव्य देवताओं पर चढ़ा दिया परन्तु देवता तो उसे खा ही नहीं लेते उसे चखते हैं पण्डाजी। सुनते हैं कि एक प्रसिद्ध देवमन्दिर की आय किसी वकील के यहां गिरवी है सो हम लोग देवता पर जो कुछ चढ़ाते है उससे पण्डाजी महाराज का ऋण चुकता है! क्या ही आश्चर्य है कि उधार लें पण्डाजी और क़रज़ा भरें हम लोग!! विप्रव-

नाथजी के मन्दिर का मुकद्मा हाईकोर्ट नांघ कर अब प्रिवीकौंसिल जाने वाला है। वकील बैरिस्टरो मे लाखों रुपये व्यय हो चुके है अब विलायत होने पर रुपया औरभी पानी की भांति उड़ेगा। पर बाबा यह कहै कौन कि विश्वनाथजी पर कुछ चढ़ाना व्यर्थ है ? देवमन्दिरों में भेट चढ़ाने की प्रथा इस कारण पड़ी कि जिससें उनके संरक्षकों का भरण पोषण होता जाय पर उन्हें राजा बनाने की कोई आवश्यकता प्रतीत नहीं होती कि जिनके गुज़ारेदारो के डेढ़ डेढ़ सौ रुपया मासिक अदालत से बध जायं !

देवमन्दिरो की अन्य घृणित लीलाए जो यदा कदा देखने मे आजाती हैं लिखने योग्य नहीं है। सत्य है शून्य सदन में प्रेतो का अवश्य निवास रहता है। इन पडे इत्यादिको को और कोई बात का ध्यान तो होता ही नही तब उनके शून्य हृदय में घृणित विचार क्यो न प्रकट हुआ करे ? इस आचरण वाले प्रश्न को छोड़ कर भी इतने आलसियों को लड्डू पूड़ी छकाते रहना कौन से अर्थशास्त्र का अवलम्बन करना है ? हम लोगों को उचित है कि देश की द्रव्योत्पादक शक्ति को जहां तक हो सके विवर्द्धित करें और यह शक्ति तभी बढ़ सकती है कि जब अधिक से अधिक मनुष्य उचित रीति पर कार्य करें। जितने भिक्षुक, पंडे आदि हम पालते है उतना ही देश का धन नष्ट होता है। और उसके प्रत्युपकार मे इतने मनुष्य आलसी और निरुद्यम हो जाते है और देश की उपजाऊ शक्ति उतनी ही घट जाती है। बड़े शोक की बात है कि हमारी उदारता भी

भारतवर्ष को लाभ पहुंचाने के स्थान पर उसका मूलोच्छेदन कर रही है ! इसीसे तो हजार बात बनाने पर भी उस की कुछ भी उन्नति नहीं देख पड़ती। उदारता को उत्तम मार्ग पर झुकाना भी तो विलायतगमन अथवा सहभोजन किंवा विधवाविवाह की भांति नहीं कहा जा सकता कि जिस के करने से कुछ कुटुम्ब के अदूरदर्शी लोग बिरादरी से निकाल देंगे? अतः यदि अभी आप जाति और सामाजिक सुधार नहीं कर सकते तो व्ययसंशोधन तो अवश्य ही होना चाहिए।

(ङ) अब इस (कुपात्रों को दान देने वाले) विषय में हम को माफ़ीदारो, और "साधु" ज़मीदारों व तअल्लुक़दारो पर कुछ कहना शेष है। जो लोग किसी काम करने के उपलक्ष मे माफ़ी पाए हैं उन के विषय में अर्थशास्त्र के विरुद्ध कुछ नही है परन्तु जो लोग दान में माफियां पाए हुए हैं उन के विषय मे वह सबबातें पूर्णतया घटित हो जाती हैं जो कि हट्टे कट्टे भिक्षुकों पर लिखी जाचुकी है। ऐसी माफ़ी ज़ब्त करके किसी देशोपकारी काम में लगा देनी चाहिए। "साधु" जमीदार व ताल्लुक़दार होने ही न चाहिए पर यदि वे हैं तो उन्हे और भी अधिक उचित है कि अपनी आय का अधिकांश देशोपकारी कामों में लगावें। भंडारा कर देने से सिवाय झूठा नाम होने के और कुछ लाभ नही, इन भंडारों के कारण बहुत से ऐसे लोग सिर मुंडा कर संन्यासी बन जाते हैं कि जिन्हे विरक्तता तो दूर रही जिह्वालोलुपता तक को वश क-

रने का सामर्थ्य नहीं। केवल हलुवा छकने के लिए अनेक लोग "साधु" बन जाते हैं। एक महाशय ने ऐसा किया पर जब एकादशी को निर्जल व्रत रखने को उन से कहा गया तब तो वह घबराए और कहने लगे कि "जेहि कारन मैं मूंड मुड़ावा, सो दुःख मोरे आगे आवा?" सो भंडारा आदि के नियम आलसियों ही का अधिक पालन होता है। सुना गया है कि स्वदेशभक्त, विद्यारसिक, नीतिपरायण, विचारशील, सद्गुणालंकृत, महामान्यवर, श्रीमान् महाराजा सयाजीराव गायकवाड़ ने वाहियात माफियां जब्त करके उन से जो आय हो उसे लाभ दायक विषयों पर व्यय करने का दृढ़ विचार कर लिया है। वैसे ही श्रीमान् होनहार महाराजा मायसोर वास्तविक भारतभूषण, दानशील, महामान्यवर मिस्टर जे.एन्. ताता के रिसर्च वैज्ञानिक विश्वविद्यालय की पूरी सहायता करने की प्रतिज्ञा कर चुके हैं। सुप्रसिद्ध मिस्टर ताता का नाम लेते ही चित्त प्रफुल्लित हो उठता है। इन महानुभाव जी के लड़के लड़कियां, नाती, पोते ईश्वर की कृपा से अभी वर्तमान हैं। ईश्वर उन्हें चिरायु करे। पर तो भी इन्होंने अपनी सम्पत्ति का अधिकांश, जिस की मात्रा प्रायः ३० लाख रुपया है, स्वदेश हितार्थ लगा दिया। धन्य मिस्टर ताता! और धन्य उन के पिता माता!! मिस्टर ताता जाति के पारसी हैं और हम ब्राह्मण, पर उनके सद्गुणों पर हम ऐसे विमोहित हैं कि जी चाहता है उनका चरणामृत तक ग्रहण करलें। श्रद्धास्पद मिस्टर एन० एम०

वाडिया ने अपना सर्वस्व जो लगभग १½ करोड़ के होता है इसी भांति एक दूसरे कार्य के लिये दान किया है। यद्यपि जिस कार्य के लिए धन का दान हुआ है उसे हम वैसा श्लाघनीय कदापि नहीं कह सकते जैसा कि मिस्टर ताता के दान विषय को, तथापि वाडिया महाशय का भी दान देशोपकारी और बहुत आदरणीय है। जब हमारे सभी दानी इन महोदयों का अनुकरण करने लगेंगे तब भारत सौभाग्य के दिन दूर नहीं रह सकते। बने हुए साधुओं में बहुत से तो हाथियों पर चढ़े हुए गांव गांव घूम कर अपना कर वसूल करते फिरते हैं और इन धूर्त्तों को हम सहर्ष दान देते हैं पर अनाथालयों, चिकित्सालयों और अन्य उपयोगी कामों में एक पैसा भी देना हमें अखर जाता है! भला जो लोग हाथी घोड़ों पर चढ़े बात बात में "हरदम मेहरबानी"* करते फिरते हैं उन्हें कुछ देने से क्या पुण्य होगा? परन्तु नहीं! उनके पास तो पुण्य का अक्षय कोष लाख लाख झोलों से भरा है। आध आना भी उनको दिया कि स्वर्गलोक में उनके प्रेरित असंख्य प्रासादकारक हमारे लिए महल निर्मित करने में प्रवृत्त होगए! एक टके में विश्वकर्मा और मय दोनोंही हमारे बढ़ई बन सकते हैं पर वह टका ठीक स्थान पर रवाना करने के "पोस्ट आफिस" वही "हरदम मेहरबानी" जी हैं। मरने पर सुकर्म अथवा कुकर्म कोई लाभ या हानि नहीं पहुंचा सकते। केवल यही—

---

* यह एक साधुनामधारी धूर्त का तकिया क़लाम था।

टका हर्ता टका कर्ता टका मोक्षप्रदायका ।
टकाः सर्वत्र पूज्यन्ते विन टका टकटकायते ॥

परन्तु इस मे आश्चर्य की कौन सी बात है ? विद्या भवन यूरोप प्रदेश में भी तो, पोपमहाराज की स्वर्ग और नरक वाली कुंजियों § का अभी कल तक जब इतना प्रताप फैल रहा था, तब इस अविद्याच्छन्न हमारे देश मे ऐसी बाते स्वाभाविक ही समझनी चाहिएं ।

जहा एकबार भी टके में विलम्ब हुआ कि वन्ही "हरदम मेहरबानी" वितरण करने वाले स्वर्ग के एक मात्र सोपान की आखे लाल होगई मानो उन से किसी ने उलटे कुछ छीन लिया हो । धन्य है ऐसे संन्यासी और धन्य उन के भक्त ! मेलो मे हमने देखा है कि वही "पहुंचे" संन्यासी जी अपना दंड और कमडल एक किनारे रख झप से झूलनो पर जा झूलने लगते है और बैठते भी प्रायः ऐसे

§ पोप यूरोप के प्रधान पादरी है । इन के पास एक सोने की और एक लोहे की कुंजी रहती थी । लोगों का यह विश्वास था कि पोपजी चाहे जिस के लिये सोने की चाभी से स्वर्ग का अथवा लोहे की कुंजी से नरक का द्वार खोलदें और उसे बरबश वहीं जाना पड़े । इस बहाने से पोपजी बड़े २ शक्तिशाली महाराजो तक को प्रकम्पित कर अपनी मुट्ठी में रखते थे और उन से मनमाना कर वसूल करते थे परन्तु अब वहा के लोग ऐसे मूर्ख नही रहे है कि इन ढकोसलों में उलझे रहे सायस के प्रकाशने वहा यह तम मार भगाया है । पर यहा साधु नामधारी महापुरुषों, पधरावनी प्रिय गोस्वामियों और झूठे महतों से छुटकारा मिलना अभी शताब्दियों का काम है ।

मचानों पर हैं कि जिन के निकट कोई नवयौवना बैठी आखों के पटे चलाती हुई अंचल की फहरान द्वारा अपने पीन उरोजो की झपक से रसिकों का मनोमोहन कररही हो! सत्य है इस में कोई दूषण भी तो नहीं है क्योंकि त्याग का सम्बन्ध पृथ्वी से ही है भला अन्तरिक्ष में निरवलम्ब वह कैसे रुक सकता है?

भिक्षा मागने का एक यह भी ढंग है कि किसी कन्या को साथ लेलिया और लगे पुकारने कि "महाराज! कन्यादान का फल लीजिए"। टके टके पर कन्यादान का अमूल्य पुण्य गली २ बिकरहा है! धिक्कार है ऐसे दायज को। पर कुछ दुष्ट ऐसा तक करते है कि बालको को कन्याओं के वस्त्र पहना कर इस बहाने भोले लोगों को ठगते हैं।

(२) कुपात्रें के दान का तो कुछ वर्णन हो चुका। अब उन अन्य रूपो का वर्णन शेष है जिन में हमारे यहां अपव्यय अधिकतर पाया जाता है। इन में नाच, तमाशा, आतिशबाजी इत्यादि हैं। गणिकाओं का नृत्य देखना किसी अश में भी उचित नहीं। एक तो इन आजन्मकुमारिकाव्रतधारिणी अशुचि जीवो द्वारा एक अति निन्दनीय हाट स्थापित है जिस से अनेक मनुष्यों के आचरण मिट्टी में मिल जाते हैं और दूसरे इन के संसर्ग द्वारा शुद्ध सगीतशास्त्र नीच दृष्टि से देखा जाने लगा है। हमारे यहा किसी समय संगीत की इतनी प्रशसा थी कि स्वय महात्मा भर्तृहरिजी ने कहा है:—

" साहित्यसंगीतकलाविहीनः, साक्षात् पशुः पुच्छ-विषाणहीनः । तृणन्नखादन्नपि जीवमानस्तद्भागधेयं परमं पशूनाम् ॥ "

गणिकाओं के नाच से ही मिलता जुलता भांडों का तमाशा है । इन बातों में रुपया उड़ाना अत्यन्त निन्द्य है । भांडों का एक यह भी नियमसा है कि जिस के यहां ये तमाशा करते हैं उसपर भी एकआध फबती अवश्य उड़ा देते हैं । आतिशबाज़ी यदि थोड़ीसी हो तो विशेष हानि नहीं क्योंकि यह एक प्रकार का कौतूहल है परन्तु इस में भी अधिक द्रव्य फूंकना अनुचित है । श्रीमानों को विचारना चाहिए कि उन के धनाढ्य होने के कारण सारा देश तो वैसा नहीं । सो उन्हें अधिकतः धन उन कामों में व्यय करना चाहिए कि जिनसे सुयोग्य भूखे भाइयों की उदरज्वाला शांत होनेका कुछ उपाय हो और देश की द्रव्योत्पादक शक्ति बढ़े । हम लोगों को उचित है कि उत्सव के कार्यों में जितना धन लगाना चाहें उनके अनुपयोगी विषयों से कुछ काट छांटकर उस बचत को देश के किसी उपयोगी काम में लगावें । बम्बई के सुप्रसिद्ध डाक्टर सर भालचन्द्र कृष्ण आदि कतिपय देशानुरागियों ने थोड़े दिन से सुनते हैं एक फंड (कोष) खोला है जिससे सुयोग्य शिक्षार्थी शिल्प और वाणिज्य की शिक्षा पाने के लिए जापान, यूरोप और अमेरिका भेजे जावेंगे । इस फंड में कुछ सहायता करना अच्छा अथवा नाच तमाशे और आतिशबाज़ी में रुपया फूंकना ?

(३) भांग, अफीम, तम्बाकू, गांजा, मद्यादिक सेवन

करना सभी प्रकार से अत्यन्त निन्द्य है। इनके सेवन कर-ने से मनुष्य पूरा काम करने के योग्य नहीं रहजाता जिससे देश को बड़ी भारी हानि पहुंचती है।

"पोस्ती पड़े कुए मे तो वहीं चैन है" इत्यादि सैकड़ों कहावतें इन्ही लोगो के विषय मे प्रचलित है। नशेबाज लो-ग एव भाट भिक्षुक पूर्व कथित "अहदियो" के समान हैं जिनको हम लोग वृथा को पाले हैं। भेद इतनाही है कि हम लखनऊ के बादशाह से भी बढ़कर हैं और यह जानते भी नहीं कि हम इतने अहदियो को पाले हैं! मा-दक पदार्थों के उत्पन्न करने मे जितना परिश्रम व्यय किया जाता है वह यदि इन पदार्थों की माग न होती तो अव-श्य ही किसी लाभदायक काम में लगता अत: इनका सेव-न शरीर एव देश परिश्रम दोनो का हानिकर है। भाग इ-त्यादि को जो महादेवजी का नाम लेकर पान किया जाता है उसका कुछ भी ठीक प्रमाण नहीं। हम हिन्दुओं का य-ह सोचना कि विजया महादेवजी धारण करते है अत उसे पीना श्रेष्ठ है भारी भूल है। किसी प्रामाणिक पुस्तक में ऐ-सा नहीं लिखा है। जानपड़ता है कि नशाप्रिय लोगो ने यह बात इस आधार पर बनाली कि श्री महादेवजी ने हलाहल को पान किया है। पर यह मनगढ़न्त नितान्त व्यर्थ है। हलाहल पीने से महादेवजी भगेड़ी अथवा गजे-ड़ी नहीं हो सकते कि चरस की दम लगाते हुए लोग कह उठें "व भोलानाथ की!"

यहा प्रत्येक काम करने के लिए किसी देवता की आड़ लेलेनाही उचित समझाजाता है।

(४) मादक पदार्थों से मिलती जुलती मुकद्दमेबाजी और ऐसे मनुष्यों की फजूल खरची है जो किसी समय से धनवान् थे परन्तु अब दरिद्री होगए हैं। बनारस मे एक "लक्खी चबूतरा" है। उस के नामकरण का कारण यह है कि उस के लिए दो महापुरुषों मे जो अदालत हुई उस में दोनो पक्ष के एक एक लाख रुपये खर्च हुए थे। वह चबूतरा ५-६ गज़ लम्बा और १ गज़ चौड़ा है और किसी बड़े अच्छे मौके पर भी नहीं स्थित है। इसी से कहते हैं कि राज़ी नामे के काबिल मुकद्दमे पचायतो द्वारा ही निबटने चाहिएं।

जो लोग किसी समय धनसम्पन्न थे पर अब अकिंचन हो गए हैं, उन्हें उचित है कि शीघ्र ही अपना व्यय घटावें वही शान अब उन की नही निबट सकती यह बात उन के अतिरिक्त सभी मनुष्य जानते हैं। यदि वे लोग भी इस सरल बात को हृदयंगम कर सकते तो ऐसी कहावतें क्यों प्रचलित हो जाती कि "खर्च का बढ़ना सुगम और घटना अगम है," "व्यय मनुष्य को तोड़ कर टूटता है" अर्थात् जब तक मनुष्य के पास कुछ भी रहता है तब तक उस का चढ़ा हुआ व्यय नही घटता उस मनुष्य की आय चाहे जितनी घटजाय। प्रत्येक मनुष्यकी धनाढ्यता उस की वास्तविक आय पर निर्भरहै। यदि कोई उस के अनुसार व्यय नही करता वह निरा मूर्ख है। और तुलसीदास जी के कथनानुसार—

"सो बहोरि दुख पावै सिर धुनि धुनि पछिताय।

कालहि कर्महि ईश्वरहि मिथ्या दोष लगाय ॥"

ऐसे ही लोग लक्ष्मी पर अगुणज्ञता का दोष आरोपण करते है पर वास्तव में वह बड़ी ही गुणज्ञा है और निर्गुणी के हाथ लगते ही उस से छुटकारा पाने के हेतु प्रयत्न करने लगती है।

(४) ऊपर उन अपव्ययों का उल्लेख किया गया है कि जिनसे देश की उपजाऊ शक्ति घटती है। अब उन का वर्णन किया जाता है कि जिनसे कोई विशेष हानि तो नही है परन्तु कुछ लाभ भी नहीं। इनका होना न होना देश की द्रव्योत्पादक शक्ति पर कोई विशेष प्रभाव नहीं डालता परन्तु तो भी हमें उचित है कि ऐसी आर्थिक द्-रिद्रता की अवस्था में द्रव्य को हानिकारक ही नही वरन अलाभकारी कामें। में भी न नष्ट करें।

(क) प्रथमतः हम गुरुओ और गुरुद्वारो के सम्बन्ध में अपने विचार प्रकट करते हैं। हम नही कह सकते कि इस वि-षय को इस भाग में रखना कहां तक समर्थनीय है। यह व्यय दो प्रकार का होता है एक उचित दूसरा अनुचित। जिस प्रकार राजस धर्म के बहुधा दो स्वरूप हुआ करते है एक तामस की ओर झुकता हुआ और द्वितीय सात्विक की ओर। गुरुओं पर कुछ खर्च तो सुव्यय है और कुछ अपव्यय, अतः इसको या तो तृतीय भाग में रखना उचित समझ पड़ता है या पचम में परन्तु हमने इसे यहां यह समझ कर रक्खा है कि जब दोनों भाग इसे अपनी २ ओर आह्वान कर रहे हैं तो "विधि चु-म्बक बीच को लोहो भयो मन जाय सके न इते न उतै" के

अनुसार इसे टांगातोचन की आपत्ति से रक्षणार्थ मध्य ही में स्थान दे देने से झगड़े का निबटेरा जान पड़ता है।

यह बात सर्वमान्य है कि कोई धर्महीन जाति जातीय होड़ में बाज़ी नहीं ले जा सकती, अतः प्रत्येक जाति को सच्चे धर्मोपदेशको की आवश्यकता है। अब यह प्रश्न होता है कि हमारे गुरु लोग अपना कर्त्तव्य पालन करते हैं या नहीं ? इस के उत्तर में हां और नहीं दोनो कहना पड़ेगा। श्री स्वामी रामकृष्ण, विरजानन्द, नानक, दयानन्द और विवेकानन्द भी गुरु ही थे। ऐसे गुरुओं का जितना सन्मान हो थोड़ा है। परन्तु अत्यन्त शोकपूर्वक हमे यह भी लिखना पड़ता है कि बहुत से गुरु ऐसे भी होते हैं जो अपनी पदवी से इतना च्युत हैं कि उन्हें गोरू (अर्थात् पशु) कहना भी अपने कथन में अधिकोपमा दूषण लगाना है क्योंकि वृषभादि पशु तो भला चारा खाकर प्रत्युपकार में सवार का काम भी करते है परन्तु ये नराधम इतनी पूजा पाकर भी अपने शिष्यो का लाभ तो कुछ नहीं करते वरन उलटे उन्हें धर्मविषयक भी अनेक हानिया पहुंचाते हैं। एक बार न जाने किन गुप्त रहस्यों से भरा हुआ समस्त धर्म शास्त्रों का निचोड़, पचीस पीढ़ी पवित्र करने वाला, मन्त्र कान में फूकते ही शिष्य के लोक और परलोक दोनो बन गये! फिर क्या है उसकी सात पीढ़ी पर गुरुजी और उन के सन्तानो का आधिपत्य अगद् के पैर की भांति दृढ़ और ध्रुव के समान अचल होगया। गुरुजी के उपदेशों से उनमें प्रधान यह है कि "भैया देखो जो मैं करूं सो न करो

पर जो मै कहूं सो करो" । न जाने ऐसे गुरुवर के उपदेश शिष्य पर कहां तक प्रभाव डाल सकते है। गुरुजी तो पधरावनी करावें और शिष्य को एकपत्नीव्रत सिखावें। स्वयं तो एक टट्टू पर लद छाडेथेर शिष्यो से टके वसूल करते फिरते है और उपदेश देते हैं स्वार्थत्याग और उदारताका

यूनान के सुप्रसिद्ध दर्शनशास्त्रज्ञ साक्रेटीज को देखिए। यद्यपि अगुणज्ञ मूर्ख यूनानियो ने उस के उपदेशो के प्रत्युपकार में उसे प्राणदण्ड दिया पर उस के उपदेशो को वे लोग प्राणदण्ड न देसके। उनके परिश्रम के प्रत्यक्ष फल उसके शिष्य प्लेटो और तच्छिष्य अरिस्टाटल (अरस्तू) हुए जिन्होने न्याय, नीति, गणित, दर्शन, वैद्यक, ज्योतिष और अर्थशास्त्रादि प्रायः सभी प्रसिद्ध शास्त्रों मे उत्तम २ सिद्धान्त निकाले और जिन के नाम आजतक पृथिवी मण्डल पर प्रसिद्ध होरहे हैं। हमारे यहां इतने उत्तमोत्तम गुरु हो गए हैं कि जिन की नामावली तक लिखना एक कठिन कार्य्य है पर इस समय वैसे गुरु बहुत कम पाए जाते हैं। साराश यह है कि कोई जाति उन्नति तभी कर सकती है जब उस में निरुद्यम पुरुषो की सख्या बहुत कम हो। निरुद्यमता देश के बलरूपी रुधिर को जोंक की भांति पीलेती है। यदि पयरूपी बढ़े हुए धन ही को पीती तो सहन भी हो सकती थी पर "पियै रुधिर पय ना पियै लगी पयोधर जोंक।"

यदि संसार मे किसी के उदरज्वाला न होती और योंही बिना कुछ खाए पिए लोग जीवित रह सकते तो मूषक मार्जार, लवा श्येन, मृग शार्दूल में नैसर्गिक शत्रुता न होती,

कोई मनुष्य किसी का आज्ञावर्ती न होता और न सुखपूर्वक जूते खाकर भी सेवारूपी श्वानवृत्ति में कोई कुछ विशेष गुण देखता। सारी सभ्यता भी मिट्टी में मिल जाती और तख्त ताऊस व मोती मस्जिद किसी के देखने में न आतीं और न भूमण्डल के सप्त आश्चर्य (Seven wonders of the world) संसार को चकित करते। पृथ्वी का सारा व्यवहार पेट ही के सहारे चलता है। अतः जितने मनुष्यों की उदरचिन्ता का हम हरण करलेते हैं उतने ही आदमियों को आलसी बनाने की उत्तेजना देकर हम संसार परिचालन के नियमों का विरोध करते हैं। ऐसी अवस्था में उन्नति का होना अत्यन्त कठिन है। अतः जो मनुष्य असमर्थ नहीं उन्हें अपने २ उदरपालन का उपाय करने देना चाहिए और उन्हें मुफ्त में कुछ देकर आलसी बना देना दया नहीं बरन देश का मूलोच्छेदन करना समझिए।

(ख) हमारे यहां शिवालय, ठाकुरद्वारे आदि बनवाने की रीति बहुत प्रचलित है। हम इस की निन्दा नहीं करते क्योंकि ऐसे मन्दिरों से हमारे चित्त में अपने मतानुसार धर्म का कम से कम स्मरण आही जाता है। यदि कहीं किसी काम को जाते हों और मार्ग में कोई देवमंदिर पड़ जाय तो यदि दर्शन करने न जायगे तो भी एक बार शीश झुका ही देंगे। प्रतिमापूजन की योग्यता या अयोग्यता पर यहां लिखने की आवश्यकता नहीं यहां इतना ही देखना है कि बहुत से लोग प्रतिमापूजन करते हैं (और हम भी उन में से एक हैं) पर इस बात पर ध्यान रख कर

भी हम अवश्य कहेंगे कि इस धर्मकार्य्य से देश को कुछ भी प्रत्यक्ष लाभ नहीं। अनेकों धर्मकार्य्य ऐसे हैं कि जिनसे देश को पूरा लाभ पहुंचता है। क्या द्रव्यव्यय द्वारा विद्यादान से भी बढ़कर कोई धर्मकार्य्य सम्पादित हो सकता है? देवालयों के बनने से न तो किसी वि देशीय व्यापार की उन्नति होती है और न देश ही की द्रव्योत्पादक शक्ति बढ़ती है। धर्म के लिए एक दो देवालय एक नगर में बस है। दस, बीस, पचास मन्दिरों की एक ही स्थान में कोई आवश्यकता नहीं। जहां दो देवालय हों और उनमें से एक गिरा जाता हो वहां एक तीसरा मन्दिर बनवाने की अपेक्षा दूसरे का जीर्णोद्धार करा देना ही बहुत अच्छा है। देवालय तो देवालय ही हैं फिर एक को गिर पड़ने देना और द्वितीय को नए सिरे से बनवाने में पूरा धन व्यय करना किस नीति का अवलम्बन करना है? यदि कहिए कि मरम्मत कराने वाले का वैसा नाम नहीं होता जैसा कि मन्दिर बनवाने वाले का तो हम कहेंगे कि धर्मकार्य और नाम से क्या सम्बन्ध? गिरते हुए मन्दिर के जीर्णोद्धार करा देने से पूजन का धर्मकार्य तो चलता ही रहेगा अब रहा नाम सो किसी अन्य देशोपकारी कार्य्य में शेष द्रव्य लगाकर खूब नाम भी लूट सकते हैं और स्वदेश की उत्पादक शक्ति भी बढ़ा सकते है। छात्रालय बनवाने, विद्याप्रचार में व्यय करने, शिल्प, वाणिज्य, कलाकौशल की उन्नति करने, इत्यादि २ कामों से क्या कम नाम होता है? एक प्राचीन कहावत है कि "साधो भूखे भगति न हो

है" सो पहले देश का पेट भरने का प्रयत्न करिए। यदि आपने इतने देवालय बनवा दिए कि जिन में कोई पूजा करने वाला तक नहीं मिलता तो "काशी के कंकर शिवशंकर समान हैं" वाली कहावत ही तो सिद्ध हुई? ऐसी दशा में कबीर दासजी की निम्नलिखित कहावत ही की सत्यता तो प्रकट हुई कि:—

"अपने हाथे करैं थापना, अजया का सिरु काटी। सो पूजा घर लैगो माली, मूरति कुत्तन चाटी॥ दुनियां झूमड़ि झामड़ि अटकी॥"

फिर बड़े भारी देवालयों के बनवाने से भी कोई विशेष लाभ नहीं। पूजन का काम जैसे एक असाधारण देवालय में हो सकता है वैसेही छोटे मे। केवल नाम के लिये बहुत बड़े२ देवालय बनवाने में धन नष्ट करना अर्थशास्त्र के बिलकुल प्रतिकूल है। यदि श्री वृन्दावन जी में रंगजी के मन्दिर के स्थान एक साधारण मन्दिर होता जिसकी लागत एक या दो लक्ष मुद्रा होती और शेष ५७—६८ लक्ष मुद्रा विद्या व शिल्प की उन्नति में लगा दिया गया होता जिससे सैकड़ो उद्योगी लोग लाभ उठाकर भारत के पढ़े लिखे लोगों की संख्या प्रति सैकड़े १० के स्थान २५ कर देते और देश की उपजाऊ शक्ति विवर्द्धित कर देते तो आज कैसे आनन्द का समय होता? तब सेठ लक्ष्मीचन्दजी का लक्ष्मीवान् होना सारे देश को अवश्य लाभ पहुंचाता और इससे उनका नाम ऐसा होता कि जिसकी सीमा नहीं। रंगजी के मन्दिर को केवल उस प्रान्त के निवासी, यात्रीलोग और

थोड़े से अन्य जन जानते हैं परन्तु सौ दोसौ वर्ष पीछे मि-स्टर ताता, सरदार दयालसिंह, सर सैयद अहमद, मिस्टर वाडिया आदिक के पवित्र नाम कहा तक फैल जायंगे इस का पाठक स्वय अनुमान करलें। अभी इतने ही दिनो में इन महापुरुषों का कितना नाम होगया है। कदाचित् यही देखकर कि देवालयों के निर्माण होने में इतना धन व्यर्थ नष्ट होता है भारतवर्षीय लूथर स्वामी दयानन्दजी ने प्रतिमापूजनमात्र को निन्द्य ठहराया हो? देवालयो की अपेक्षा धर्मशालाओं का बनवाना हम उत्तम तर मानते हैं।

(ग) तृतीय प्रकार का व्यय जो इस स्थान पर लिखने योग्य है वह हानिकारक ग्रन्थो के रचयिताओं को पुरस्कार देना है। शृङ्गाररसपूर्ण पुस्तकें हमारे यहा बहुत आदर पाती हैं पर वास्तविक लाभदायक ग्रंथों का कोई पूछने वाला नहीं। हमारे यहा कोई उत्तम इतिहास ग्रन्थ प्रस्तुत नहीं तथापि भारतमित्र प्रकाशित राजतरङ्गिणी के प्रथमभाग का अनुवाद कोई हाथ से नहीं छूता जिससे शेष ग्रन्थ का अनुवाद कदाचित् प्रकाशित ही न हो सके! क्या भारतमित्र के सम्पादक महाशय उसे उपहार, ग्रन्थ नहीं स्थिर कर सकते? पृथ्वीराज रासे। को प्रकाशित करने का अबतक किसी को साहस न हुआ बरबस काशी नागरीप्रचारणीसभा को यह भार लेना पड़ा पर उसके ग्राहको की संख्या अत्यन्त असन्तोषजनक है। क्षत्रियो की कीर्त्ति का स्तम्भस्वरूप टाडराजस्थान का सुनते हैं किसी वि-

द्वान् ने आधे से अधिक हिन्दी मे अनुवाद कर डाला है पर उसे भी कोई प्रकाशित करने वाला नहीं देख पड़ता। नायकाभेद, नखशिख, अलङ्कार इत्यादि की आवश्यकता से अधिक पुस्तके वर्त्तमान हैं सो उनके बनाने व छपवाने मे समय व द्रव्य नष्ट करना अब भूल की बात है। लाभकारी ग्रन्थो के कर्त्ताओ को पुरस्कार देना और उनके ग्रन्थो को प्रकाशित करना अब अत्यन्त आवश्यक है। जिस प्रकार के ग्रन्थों की अब आवश्यकता है वह हमने अपनी " हिन्दी काव्य (आलोचना) * " और " हिन्दी अपील § " में लिखा है।

(च) अब उत्तराधिकारियो के विषय मे कुछ कहकर इस भाग को हम समाप्त करते है। इङ्गलैड और अन्य सभ्य देशो मे यह नियम है कि प्रत्येक मनुष्य मरते समय अपनी सम्पत्ति के भविष्य उपभोग के विषय में अपनी अंतिम इच्छा प्रकाशार्थ कोई वसीयत अवश्य करता है। इस में प्रायः वह अपनी सम्पत्ति का मुख्यांश अपने पुत्र, पौत्र, स्त्री, भाई, कन्या आदि को देजाता है परन्तु कुछ न कुछ स्वदेश के लाभदायक किसी काम में अवश्य लगाता है और कतिपय महानुभाव तो ऐसे उदारचेता होते है कि अपनी सम्पत्ति का अधिकांश वे देशोपकारी कामों में ही लगादेते है और कुटुम्बियों को बहुत कम देते हैं। इस नियम के कारण बहुतसा धन देश के हितकारी कार्य्यों में लग ही

---

* सरस्वती भाग १ संख्या १२ देखिए।

§ नागरीहितैषिणीसभा, जौनपुर द्वारा प्रकाशित।

जाता है। यह प्रणाली पूर्णतया अनुकरणीय है क्योंकि प्रत्येक मनुष्य पर उस के देश का भी कुछ न कुछ स्वत्व अवश्य होता है। फिर जब किसी के कोई पुत्र अथवा निकट का सम्बन्धी नहीं है तब दूरवाले को अपना सर्वस्व दे-जाना अथवा कोई कृत्रिम पुत्र (दत्तक अर्थात् गोद बैठाया हुआ) बनालेना सर्वथा अनुचित है। दत्तक पुत्र प्रायः "तृप्यन्तामिदं जलं तस्मै स्वधा तस्मै स्वधा तस्मै स्वधा" करने और "नाम स्थिर रखने" के लिए लोग बनाते हैं इस में निवेदन यह है कि जो महात्मा देशोपकारी कार्यों मे अपनी सम्पदा लगा देगा उसे जलदान से कहीं बढ़कर तृप्ति योंही होती रहेगी। यदि नाम की कहिए तो एक बहुत ठीक ग्रामीण कहावत है कि "हाथी जाय गाव गाव। जेहि का हाथी तेहि का नाव॥" वह पुत्र उसी का बना रहेगा जिसने उसे जन्म दिया। और फिर दत्तक पुत्र अथवा औरस पुत्र से भी नाम ही किस बात का * ? यह कि अमुक मनुष्य अमुक का पुत्र है ? तो इससे क्या ! और यदि बीस पचास साल नाम यों स्थिर भी रहा तो क्या ? क्या दानवीर आगरा कालेज संस्थापक पं० गंगाधर शास्त्री पट्टवर्द्धन, अथवा कायस्थकुलभास्कर मु० कालीप्रसाद, या प-

---

* ऋग्वेद मे दत्तक लेने का खण्डन है, देखो—"परिषद्यं ह्यरणस्य रेक्णो नित्यस्य रायः पतयः स्याम । न शेषो अग्ने अन्यजातमस्त्यचेतानस्य मा पथो वि दुक्षः ॥ न हि ग्रभायारणः सुशेवो अन्योदर्यो मनसा मन्तवा उ । अधा चिदोकः पुनरित्स एत्या नो वाज्यभीषाळेतु नव्यः ॥ (स० स०)

पचप्या, किंवा मिस्टर ताता आदि के पवित्र नाम सैकड़ों हज़ारों वर्ष पर्यन्त स्थिर न रहैंगे? न जानैं जयनारायण या बाडली कौन थे परन्तु जयनारायण कालेज और बाडलियन पुस्तकालय के कारण उन के नाम सभी लोग जानते है और उनकी ओर सभों की पूज्यबुद्धि उत्पन्न होती है परन्तु यदि इन्हीं लोगों ने एक एक दत्तक पुत्र लेलिया होता और उन्हें ये अपना सर्वस्व दे गए होते तो आज उन्हें कौन जानता ? और उनका क्या नाम होता ? राजा हरिश्चन्द्र, बलि, कर्ण इत्यादि का पवित्र नाम आज इसकारण जगत्प्रसिद्ध है कि वे बड़े भारी दानी थे अथवा इसलिए कि उनके पुत्र थे ? अतः गोद बिठला कर किसी को अपनी सम्पत्ति दे जाना और देश को उस के लाभ से वंचित रखना बड़ी मूर्खता की बात है ।

सुप्रसिद्ध सीसिल रोड्स साहब मरते समय तीन करोड़ मुद्रा केवल दक्षिण अफ़रीका के विद्यार्थियो के लाभार्थ वसीयत करगए। उनके कोई पुत्र न था परन्तु उन्हें पुत्र की कभी परवा हुईही नहीं, यहांतक कि उन्होने अपना विवाह ही नहीं किया । कुछ एकही आदमी पर नहीं, विलायत और अमेरिका मे देशोपकारी दान की रीतिही ऐसी है कि जिससे वहां करोड़ों रुपया प्रतिवर्ष ऐसे कामों में लगजाता है। तभी तो वे देश ऐसी उन्नतदशा को प्राप्त हैं ! जाना गया है कि सन् १९०१ ईसवी में अमेरिका प्रदेश में १५०००) से ऊपर वाले देशोपकारी दानो का जोड़ १८ करोड़ मुद्रा होता है !!! जहां इतनाइ मुद्रा एक एक वर्ष में

देशोन्नति के कामों में लगजाय वहा के लोगों का भाग्य चमकेगा या हम नामधर्मों का ? जो दुनिया में पैदा होकर झूठ सांच कह, छल फरफन्द कर, सिवा अपने पापी पेट के भरने अथवा दान के नाम पर भी महा अनुचित एवं अनुपयोगी और हानिकारक दान करने के और कुछ जानते ही नहीं! भला वैसे पुरुषसिंहों के सामने हम लोग क्या व्यवसाय कर सकते हैं? जब वे लोग इन विचारो मे लगे रहते हैं कि हिन्दुस्तान की चीनी की बाजार अपने हाथ में लाना (capture करना) चाहिए और अमुक देश की अमुक हाट दबा लेना चाहिए तहा हम लोग इन झगड़ों मे मरे जाते हैं कि "हमारा कुल तुम से ऊँचा है", "हम उस के हाथ का जल तक न ग्रहण करेंगे" इत्यादि इत्यादि। इसी का नाम एका और सद्बुद्धि है? फिर हम लोग दानी बनने का भी बहुत दम भरते हैं पर इस बात का विचार कितने मनुष्यों ने किया है कि गत दुर्भिक्ष में अमेरिका ने हमें कितना दान दिया? वहा के एक पत्र "क्रिश्चियन हेरल्ड" द्वारा (जिस के ग्राहकों की सख्या लगभग २॥ लाख के है) चौदह लक्ष मुद्रा भारतीय अकाल पीड़ितो के लाभार्थ आए थे।

एंड्रू कारनेगी का नाम हमारे अनेक पाठकों ने सुना होगा। इस महात्मा ने अमेरिका में एक विशद कलाभवन बनवाने का दृढ़ सकल्प करलिया है कि जिस में शिल्प की प्रथमश्रेणी की शिक्षा दी जायगी और अन्यान्य उपयोगी काम होंगे। इस में एक लाख से ऊपर मनुष्यो के शिक्षा

पाने का स्थान रहेगा। और कारनेगी महाशय इस में साढ़े उनचास करोड़ मुद्रा लगावेंगे!!' इस पर विशेष टिप्पणी लिखना व्यर्थ है, पाठक स्वयं विचारलें कि इस से देश का कितना लाभ होगा।

हमारा देश कृषिप्रधान है तो भी देखिए कि जर्मनी धीरे धीरे हमारी ईख की खेती बरबस उठाये देती है! हजारों कोस पर सात समुद्र पार वह चीनी बना कर यहां भेजती और उसे इतने सस्ते भाव पर बेंचती है कि हम यहीं ठौर की ठौर चीनी बनाकर उस भाव नहीं बेंच सकते क्योंकि उस में हमें परता ठीक न बैठ कर उलटा घाटा उठाना पड़े। जर्मनी में जैसे यह चीनी बनने लगी है उसका व्यौरा भी विचित्र है। वहां वालों को भय हुआ कि हमारी सेना की वीरता घटती जाती है। इस की जांच के लिए एक कमीशन बैठाया गया और उस की रिपोर्ट से ज्ञात हुआ कि सैनिकों को चीनी की समुचित मात्रा न मिलने ही के कारण उनकी शूरता कम पड़ती जाती है। देश में उतनी चीनी तैयार नहीं होती थी और विदेश से मंगाना भला जर्मन लोग कैसे सहन कर सकते थे? वैज्ञानिकों से कहा गया कि चीनी बनाने की कोई नई और सहज रीति निकाली जाय। उन लोगों ने अनेक पदार्थों की परीक्षा कर यह सिद्ध किया कि चुकन्दर (बीटरूट) से अच्छी चीनी बन सकती है और उसकी पैदावार बढ़ाना अत्यन्त सहज है। यह जर्मनी में उपजता भी बहुतायत से है। अब जर्मन लोग इसकी चीनी बनाने लगे और वह सैनिकों को

खिलाई जाने लगी जिस से उनकी वीरता पुनः जैसी की तैसी जागृत हो उठी। धीरे धीरे यह चीनी वहां बहुत अधिकता से बनने और विदेशों तक को भेजी जाने लगी यहां तक कि आज कल जर्मनी में २१ लाख टन (अर्थात् लगभग पौने छः करोड़ मन) चीनी प्रतिवर्ष तैयार होती है जिस में ७॥ लाख टन वहीं खा डाली जाती और शेष १३॥ लाख टन अन्य देशों को भेज दी जाती है। इस से करोड़ों रुपये का लाभ जर्मनी को होता है और इस चीनी का प्रचार दिनोदिन इतना बढ़ता जाता है कि कदाचित् कुछ दिनों मे ईख की चीनी एक दम बनना ही बन्द हो जाय! जर्मनी को देख २ कर अन्य देश भी ऐसी चीनी बना बना कर भारतवर्ष को चालान करते जाते और यहां का पैसा लूटते जाते हैं पर हम लोग इस बात पर कुछ भी ध्यान नहीं देते कि स्वदेशी चीनीको कैसे बचावें और विदेशी को मार भगावें! हमारे यहां तो सेना की वीरता घटते देखकर यही कह दिया जाता कि "भाई हम लोगों का भाग्य ही अब मन्द होता जाता है!!" पर जर्मन लोग अपना भाग्य आप ही बना लेते और उसे मन्द होने ही नहीं देते।

(५) इस लेख में जहां देखिये यह लिखा है कि उत्तम कामों में द्रव्य लगाना उचित है। अब यह प्रश्न उठता है कि उत्तम काम कौन है? इसके उत्तर का मूल यही है कि जिन कार्यों से देश की द्रव्योत्पादक शक्ति बढ़े वे ही उत्तम काम हैं। ऐसे कामों की सूची लिखदेना बहुत कठिन है। जो मनुष्य जिस विषय का ज्ञाता है वही कह

सकता है कि इस विषय में द्रव्य किस रूप में लगाया जाय पर कतिपय प्रधान विषयों पर कुछ कुछ लिखते हैं:—

(क) सब से प्रधान विषय खेती है, क्योंकि सौ में ७५ से भी ज्यादा मनुष्यों का गुजर खेती ही पर निर्भर है। और यों तो प्रच्छन्न अथवा प्रकाश रीति पर खेती से सरोकार रखने वाले मनुष्यों की संख्या इस देश में और भी अधिक होगी। सरकारी कर्मचारी, जमींदार, साफ़ीदार, बनिये, वकील, साहूकार, लुहार, बढ़ई, मोची आदि सभी लोग किसानों ही के बाहुबल, बैलों की जीवट और पृथ्वी की उर्वराशक्ति पर जीते हैं। अतः सबसे अधिक हमें इसी ओर ध्यान देना चाहिये। एक सुप्रसिद्ध व्यक्ति ने कहा है कि यहां जिस प्रकार मनुजी के समय में खेती होती थी वैसे ही अब भी होती है (अर्थात् उसमें किसी प्रकार की उन्नति नहीं हुई है) कुफ़ीतुल मजारईन नामक एक पत्र भी कृषि विद्या की उन्नति के लिये निकलता है परन्तु उससे लाभ उठाने का कोई प्रयत्न नहीं करता। कितने ही कृषिसम्बन्धी यन्त्र बनाये गये हैं पर उन्हें भी कोई काम में नहीं लाता। खाद बनाने की अनेक युक्तियां निकाली हैं पर हमारे किसान लोग उन्हें जानते ही नहीं, अतः कृषि पाठशालाओं के स्थापित होने की बहुत बड़ी आवश्यकता है जिससे किसानों के लड़कों को इन सब बातों का ज्ञान हो जाय। उचित रीति पर खेती करने से प्रति बीघा अब से कई गुना पैदावार अधिक उपज सकती है और बड़ा लाभ हो सकता है पर उन रीतियों को कोई जानता ही नहीं।

(ख) उपव्यापार का द्वितीय प्रधान विषय जो अन्य देशों से सर्वोच्च स्थान पर स्थित है और जिसे दुर्भाग्य वश हमारे यहां निकृष्टता से कोई स्थान मिलता है शिल्प और वाणिज्य है हमारे यहां इन की जड़ ही मन्द दशा है। और इन की उन्नति करना भारतवासियों का सर्वप्रधान कर्तव्य है। बड़े शोक का विषय है कि हम कपड़ा तक पहिने जब मैनचेस्टर के बने, चाकू, कैंची इत्यादि शेफील्ड के मांगें, दियासलाई के लिए स्विटज़रलैण्ड का मुंह ताकें, कागज़, कलम, दवात, कपड़ा, छाता, ताला, जूता, टोपी, मोज़ा इत्यादि सभी आवश्यक पदार्थों के लिए विदेशीय शिल्पियों के सहारे पड़े रहें। हा ठीक है "कपड़े भी पहनें जब कि कोई और सिलादे। अपना को हाथ पैर हिलाना नहीं अच्छा ॥" इङ्गलैण्ड, फ्रांस, जर्मनी यूनाइटेड स्टेट्स (अमेरिका), हालैण्ड, बेलजियम में तो प्रति मनुष्य ४००) की वार्षिकआय भोग करे और हमारे अभागे देश मे केवल १७) से २०) साल की। पर तो भी अमीर हमी हैं!! और हम कपड़े तभी पहनें और घर में चिराग तक तभी जलावें जब कि ५००) वार्षिक आय वाला हमारा नौकर सिलादे और तेल, तेल और बत्ती तक हमारे लिए भेजदे!!! जो मनुष्य डेढ़ दो रुपया मासिक आय होने पर भी ४०) मासिक वेतन वाला नौकर रक्खे उस के घर की सभी पूंजी अवश्य कुछ ही काल में स्वाहा हो जायगी और उस के शरीर में अस्थिपञ्जर मात्र छोड़ और रही क्या सकता है? पर ऐसी

वृथा से भी तो हम नहीं सम्हलते । सत्य है " जेहि विधना दारुण दुख देई । तेहि की मति पहिले हरि लेई ॥ " हम लोगों को उचित है कि एक दम सचेत हो कर अपने शिल्पवाणिज्य की उन्नति करें और कोरे राजकीय आन्दोलन ही में अपने कर्तव्य की इतिश्री न मानलें । कांग्रेस वाले इतने दिनों के पश्चात् अब कुछ इस ओर भी ध्यान देने लगे हैं । यदि उनके उद्योग से शिल्प वाणिज्य की कुछ उन्नति हुई तो हम अहोभाग्य मानेंगे पर सम्प्रति इतना तो शीघ्र ही करदेना चाहिए (और सुनते हैं कि इस का प्रबन्ध हो भी रहा है) कि एक बृहद् सूची हिन्दी, बंगला, मराठी, उर्दू और अंग्रेज़ी में प्रकाशित हो जाय जिस में जो जो वस्तु जहां जहां बनते और मिल सकते हों उनका पूरा वर्णन हो । ऐसा होते ही हमें पूर्ण आशा है कि विचारवान् मात्र जहांतक सम्भव होगा स्वदेशीय पदार्थों के बरतने की शपथसी कर लेंगे और उन्हें देखकर सर्वसाधारण भी ऐसा ही करने लगेंगे और योंही शिल्पवाणिज्य की उन्नति क्रमशः होही जायगी । एवमस्तु ।

उपज तीन प्रकार की होती है क्षीयमाण उपज (Diminishing returns), स्थिर उपज (Constant returns) और वर्द्धमान उपज (Increasing returns) " क्षीयमाण उपज" का यह तात्पर्य है कि नियमित सीमा के उपरान्त जितने ही अधिक मुद्रा किसी पदार्थ के उपज में लगाए जांय उतनाही उपज का परता प्रति मुद्रा कम पड़े । मान लो कि किसी खेत के जोतने, उसमें खाद डालने और

उसे समथर करने बीजे सीचने, निकाने, बचाने, काटने, माड़ने आदि में ५०) लगाने से उसमें ५० मन गेहूं उत्पन्न होते हैं अर्थात् प्रति मुद्रा १ मन गेहूं हाथ लगते हैं। इस मामले मे यदि पूर्वोक्त " नियमित सीमा " पहुंचगई है और फिर भी उस खेत के जोतने आदि में हम ५०) के स्थान में ८०) लगाकर विशेष " तरद्दुद " करें तो हमें (यदि अन्य उपभाऊ दशाएँ वैसीही रहीं) उस खेत से ८० मन के स्थान सम्भवतः केवल ६० मन गेहूं हाथ लगेंगे जिससे प्रति मुद्रा १ मन के ठौर केवल ३० सेर उपज रहजायगी। यदि हम उसी खेत में १००) लगादें तो शायद हमें प्रति मुद्रा केवल २४—२५ सेर गेहू प्राप्त हों। इससे यह स्पष्ट होगया कि उक्त नियमित सीमा के बाद खेत पर अधिक व्यय करने से उपज कुछ अवश्य बढ़ जाती है पर उसका परता प्रति मुद्रा कम होता जाता है।

"स्थिर उपज" का यह अभिप्राय है कि चाहे जितना न्यूनाधिक व्यय किसी कार्य विशेष पर किया जाय पर उपज का परता प्रति मुद्रा वही रहै। यथा यदि ५०) की लागत में हाथ से १०० चित्र बनाए जा सकते हों तो ८०) में १६० और १००) में २००) वैसेही चित्र तैयार होंगे जिस से उपज का परता प्रति मुद्रा एक ही रहेगा।

"वर्द्धमान उपज" उसे कहते हैं कि जिसमें जितना ही अधिक द्रव्य लगाया जाय प्रति मुद्रा उसनीही अधिक उपज हस्तगत हो। यदि किसी ८ पृष्ठ वाली पुस्तक की हम १००० प्रतियां छपवावें और हमारे ८) छपाई और कागज

से लगें तो दो सहस्र प्रतियां छपवाने से १६) के स्थान पर कदाचित् केवल १२) में काम निकल जाय और ४०००) प्रतियों के मुद्रित कराने से ४७) या २०) के ठौर शायद १८ या २० मुद्रा मात्र लगें। अत. प्रथमवार प्रति मुद्रा १२५ प्रतियां पड़ीं, द्वितीय दशा में १६६ ६ प्रतियां और तृतीय में २३१.७ या २५७ प्रतियां—जिनसे प्रति मुद्रा उपज का परता बढ़ता जाता है।

इस तीसरे प्रकार की उपज मिलों और कलों द्वारा उत्पादित प्रत्येक वस्तु से होती है, यथा कपड़े बुनने में तोपबन्दूक इत्यादि बनाने में, पेनसिल, कागज, खिलौना, शीशे, आलात इत्यादि में। परन्तु खेती में क्षीयमाण उपज होती है। यह भी नियम हमारी दरिद्रता का एक कारण है। हम क्षीयमाण उपज वाली धान्य (अर्थात् अनाज) उत्पन्न करते और उससे विदेशियों के वर्द्धमान उपज वाले पदार्थ मोल लेते हैं। जितनी अधिक जन संख्या इस देश में बढ़ती जाती है हमें पृथ्वी से उतनी ही अधिक उपज लेनी पड़ती है और ऐसा करने में उपज का परता प्रति मुद्रा बराबर घटता जाता है। इसके अतिरिक्त हमें बहुतसा अनाज विदेशियों के निमित्त उत्पन्न करना पड़ता है। हममें और विदेशियों में जितना व्यापार बढ़ता जाता है उतनी ही हमारी हानि होती है और विदेशियों का उतना ही लाभ। अतः इस देश में शिल्प वाणिज्य की उन्नति करना हमारा प्रथम कर्त्तव्य है और जितना दान अनुचित रीति पर होता है उसे बन्द और लगाने का प्रबन्ध

करना चाहिये स्वयं भगवद् वेद पुकार पुकार कर आज्ञा देते हैं कि नित्य प्रति नवीन नवीन विद्याओं को सीखो, अपनी शिल्पविद्या की उन्नति करो, अग्नि और जल द्वारा विमानादि बनाओ और सुखी रहो।

आप कह सकते है कि अमेरिका भी तो कृषि प्रधान देश है फिर उसने हमारी भांति दरिद्रता क्यों नहीं? इसका उत्तर यह है कि अभी उस देश में पूर्वोक्त नियमित सीमा नहीं पहुंची है और उस सीमा के पूर्व भूमि से भी वर्तमान उपज होती है फिर वहां खेती वैज्ञानिक रीति से की जाती है और कृषिकार्यों के अतिरिक्त वहां अनेक मिलें और कार्यालय भी वर्त्तमान है वहां के लोग कोरी खेती ही पर नहीं बसर करते।

हमारे यहां आजकल तीन ही पेशे विशेषतः देखने में आते हैं एक नौकरी दूसरी विकालत और तीसरी खेती हमी लोग उपहास पूर्वक कहते है अंगरेज़ी पढ़े बाबुओं को सिवाय विकालत या सेवा के और कोई कार्य करना आता ही नहीं। हमें ऐसा कहने के प्रथम यह भी सोचना चाहिये कि उन बेचारों को किसी नवीन कार्यों की कुछ भी शिक्षा दी गई है कि वे उसे करही ले! हम लोगों ने कौनसे व्यापार सिखाने का स्कूल खोला है जिसमें वे नहीं पढ़ते? अभी नवयुवकों के जापान भेजने को एक सज्जन ने छात्र वृत्तियां स्थापित की और दो युवक जापान को रवाना भी होगये व्यापार भी सीखने वे लोग जब विदेशों को जाना चाहते हैं तब हमी लोग उन्हें उलटा बिरादरी से निकाल देने को

धमकारी हैं ! अन्य देशो में बिरादरीके लोग उन्नति करने को प्रोत्साहित करते है परन्तु हमारी बिरादरी प्रत्येक मनुष्य को बलात् उन्नति के बदले अवनति की ओर खींच रही है ! वरन यों कहना चाहिए कि तल से तलातल को घुसेड़े देती है । हम लोगो को उचित है कि धनहीन होनहार नवयुवको को अनेक दस्तकारियां व व्यापार सीखने के लिए विदेश भेजने के अर्थ धन एकत्रित करें । जैसा कि हम ऊपर लिख आए है बम्बई के सुप्रसिद्ध सर भाल चन्द्रकृष्ण इत्यादि अनेक महानुभावो ने एक ऐसा फंड खोला है जिस में हम लोगो को पूर्ण सहायता देनी चाहिए । विना विदेश गए बड़े २ व्यापारो, मिलो और कारयालयो के चलाने की योग्यता नही प्राप्त हो सकती । केवल सिद्धान्तो के जान लेने से कोई मनुष्य ऐसे कारखाने नही चला सकता । इस योग्यता के लिए उनके प्रबन्ध को अपने नेत्रो से देखने की आवश्यकता है ।

महाराजा सयाजी राव गायकवाड़ ने एक विद्वान् कर्मचारी को गत पेरिस प्रदर्शिनी में इस हेतु भेजा था कि वे महाशय इस बात पर विचार करें कि कौन कौन विदेश निर्मित वस्तु यहां भी बन सकती हैं । वास्तव में महाराज बहादुर की जितनी प्रशंसा की जाय थोड़ी है । यदि सभी श्रीमान् व्यापारोन्नति की ओर इन महानुभाव का चतुर्थांश भी ध्यान अथवा दान देते तो क्या यहां का व्यापार इस हीनदशा में कभी रह सकता था ? बड़े शोक की बात तो यह है कि इन एक मात्र इतने विचारशील और देशहितेच्छु

महाराज ही को हमारे पुरानी लकीर के फ़क़ीर धर्महीन और बुरा बतलाने में लज्जित नहीं होते। हम लोगों को उचित है कि उन महाशय की रिपोर्ट पर जिन्हें दूरदर्शी महाराज ने पेरिस भेजा था विशेष ध्यान दें।

अतः कृषि और शिल्प, वाणिज्य पर हम लोगों को पूरा ध्यान दे कर इन की खूब उन्नति करना चाहिए।

(ग) हमारी दरिद्रता का सब से बड़ा कारण यह है कि हम प्रति वर्ष करोड़ों मुद्रा विदेशियों को उन के बनाए हुए विविध पदार्थ मोल लेकर भेंट करते हैं जिस से हमारा देश धनहीन होता जाता है। आय के लेखे में हमारे यहां प्रत्येक मनुष्य की वार्षिक आमदनी १७) से ३०) तक कूती जाती है। इतनी स्वल्प आय वाला कोई देश पृथिवी मण्डल पर नहीं है। तब इस से बढ़ कर और क्या मूर्खता हो सकती है कि हम फिर भी विदेश निर्मित पदार्थ मोल लें? यह विचारना नितान्त भ्रममूलक है कि यदि हम विदेशी पदार्थ एक दम लेना बन्द करदें तो विदेशी लोग हमें कलें इत्यादि जो यहां नहीं बन सकती हैं और जिनसे इस देश में वे पदार्थ बनाए जा सकते हैं न देंगे और इस तरह स्वदेश में कोई भी वस्तु बनही न सकेगी! बात यह है कि जहां हम लोगों में इतनी दृढ़ प्रतिज्ञता और स्वदेशानुराग आगया कि हम विदेशी माल लेना एकदम बन्द करदें तब काम पूरा होजायगा। यदि विदेशी लोग हमें कलें न देंगे तो कुछ दिन सभी आवश्यक पदार्थ हाथों से ही तैयार होंगे और फिर क्रमशः यहीं कलें भी

बनने लगेंगी। फिर ऐसा एकदम हो भी नहीं सकता कि समस्त पृथिवी मण्डल के देश हम से इतना विरोध करने लगेंगे कि कोई देश हमें कहीं देखेगा नहीं। वे विदेशी जो हमीं से प्रतिवर्ष इतना धन लेते हैं, हम से तीसगुना अधिक धनवान् हैं। संसार का एक नियम है कि धनवान् मनुष्य धनहीन लोगों से काम लेते हैं और उन्हें उस की मज़दूरी देते हैं पर हम लोग दरिद्र होकर भी धनसम्पन्न जातियों से काम लेकर उन्हें द्रव्य देते हैं। तब हम लोगों को यदि कोई बालक की पदवी दे तो क्या अनुचित? यथा-

"गुरुलाघवमर्थानामारम्भे कर्म्मणां फलम् ॥
दोषं वा यो न जानाति स बाल इति होच्यते ॥

तब बताइए कि एक मनुष्य नहीं समस्त भारत सन्तान कबतक लड़के बने रहेंगे? हमारे ही भाई कार्य्य के अभाव से भूखों मर रहे हैं। आज यहा अकाल पड़ता है तो कल वहा। भारत के सब प्रान्तों से एक दम दुष्काल कभी उठता ही नहीं। और क्या कहैं अनहोनी प्रत्यक्ष आ खड़ी हुई और मालवा गुजरात तक में बराबर लोग अकाल से पीड़ित हो रहे हैं। परन्तु हम को क्या? हम तब भी आंखें मूंदे विदेशियों से काम ले रहे हैं। स्वदेशी सौदागरों को हम ने ऐसी ऐसी नोटिसैं प्रकाशित कराते अकसर देखा है कि अमुक माल "हमने खास विलायत सैं मगवाया है।

अहा ! विलायती कारीगरों को धन्य है कि जिन्होंने ऐसा माल तैयार किया । " हा शोक ! इन मूर्ख सौदागरों को ऐसे विज्ञापन प्रकाशित करते कुछ भी लज्जा नहीं आती!! आवै कहां से ? स्वदेशहित और स्वदेशाभिमान तो इन लोगों में रही न गया ! ! ! तभी तो इस देवभूमि की यह दुर्गति है ! यह सत्य है कि अब हमारा देश वह सब पदार्थ नहीं उत्पन्न करता कि जिस से अमीर गरीब सभी सुखपूर्वक अपना काम चला सकैं पर तोभी उस में अभी अनेक उत्तम पदार्थ बनते हैं और हम उन्हैं मोललेकर देशीकारीगरों को बिलकुल प्रोत्साहित नहीं करते । ढाका, मऊ, लुधियाना कनानोर, मुर्शिदाबाद, टांडा, अहमदाबाद, जालधर, मुरादाबाद, मेरठ, लखनऊ, बनारस, दिल्ली, कानपुर, कश्मीर आदि अनेक स्थानों से कपड़ा, बरतन इत्यादि अनेक पदार्थ बनते हैं पर उन्हें " नई रोशनी के भक्तों " को छोड़ पुराने ढरैंवाले लोग बहुत कम काम में लाते हैं ! हम लोगों को चाहिए कि कांग्रेस द्वारा प्रकाशित होनेवाली देशी पदार्थोंकी सूची के तैयार होजाने पर जहांतक होसकै देशीय वस्तुओं का बरतना प्रारम्भ करदें । जो मनुष्य देशी वस्तु होते भी विदेशी चीजें काम में लावे वह अवश्य ही स्वदेश शत्रु है । अब हमैं कुछ कार्य्य करना चाहिए । बातैं बनाते और मनोरथ करते बहुत दिन होगए । अब बैठे २ काम नहीं चलेगा ।

"उद्यमेन हि सिध्यन्ति कार्य्याणि न मनोरथैः ।
नहि सुप्तस्य सिंहस्य प्रविशन्ति मुखे मृगाः" ॥

पुनः—

"कादर मन कर एक अधारा ॥
दैव दैव आलसी पुकारा ॥"

जब तुलसीदासजी ऐसे महात्मा का यह वचन है तो इसे कौन खण्डन करसकता है ? क्योंकि वह पूर्णतया सत्य भी है ।

श्यामविहारी मिश्र
और
शुकदेवविहारी मिश्र ।
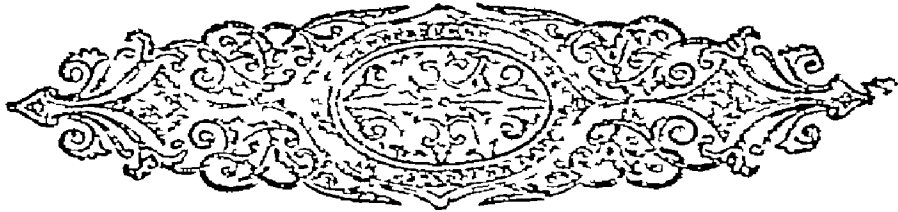
प्रेरितपत्र ।

प्रिय सम्पादक महाशय, नमस्कार;

श्री वेङ्कटेश्वर समाचार कहता है कि डाक्टर गणेशप्रसाद को जाति से च्युत करना, कायस्थों की सच्ची जातीयता का, सच्चे स्वधर्म प्रेम का काम हैं। सम्पादक की जातीयता और धर्मनिष्ठा की परिभाषा जैसी श्लाघ्य है उससे मालूम होता है कि यदि कायस्थ लोग (कुछ पत्र सम्पादकों के साथ) बम्बई में जहाज से उतरतेही डाक्टर साहब को समुद्र में ढकेल देते तो उनके लिए भगवान बैकुण्ठनाथ अपना आसन छोड़ कर भाग जाते।

ब्रह्महत्या वा भ्रूण हत्या करके, गुरुपत्नी वा विधवागमन कर और न मालुम क्या क्या पैशाचिक दुराचार करके मनुष्यजाति में रह सकता है। काले पानी में अपराधी हो, रह कर, लौट कर भी जाति में मिलता है। इनके सिवाय दुराचारी दाम्भिकों के रोब के रौरव में डूबा समाज यह नहीं पूछता कि "उनके मुंह में कै दांत है" डाक्टर गणेशप्रसाद ने क्या पाप किया है? उनका कोई दोष है तो यही है कि उनने इस कृतघ्न देश में जन्म लिया, और जर्मन पण्डितों में काली कायस्थ जाति का नाम किया। इस पाप पर पाप यह है कि उसे अभी अपने को भारत वासी कहने की लत है वह इस क्षुद्र जाति और नीच देश को "तं देशं परिवर्जयेत्" नहीं कहता। इस पाप का यह प्रति फल है।

जिस कायस्थ जाति में कोई मजलिस और भोजें खुल्लमखुल्ला मद्यपान वा मांसभोजन के विना प्राय नहीं होता सुना जाता, जो सुधारकों में आगे बढ़ती थी उसमें यह बुढ़ियापुराण के रस्मों से लिपटना कैसा मालूम देता है। या वे भी इन वेतुके सम्पादकों की तरह आनन्द से गद्‌ गद हो रहे है?